अध्यात्म का विज्ञान

– शून्यो –

अध्यात्म का विज्ञान

शून्यो

Copyright : 2017

Registration No. : L-64918/2017

इस ई-बुक के सभी अधिकार सुरक्षित हैं। महत्वपूर्ण लेखों और समीक्षाओं में प्रकाशित इस पुस्तक के छोटे उद्धरणों को छोड़कर, इस पुस्तक का कोई भी अंश, बिना प्रकाशक की अनुमति के दोबारा प्रकाशित नहीं किया जा सकता।

वेबसाइट : shunyo.in

ई-मेल : info@shunyo.in

प्रकाशक : डॉ० किसलय गौड़

कोतवाली रोड

देवरिया - 274001

उत्तर प्रदेश

फोन नं० : 05568-225488

विज्ञान अर्थात् प्रकृति के नियमों को समझना और उसकी व्याख्या करना। व्याख्या इसलिए ताकि, सभ्यता प्रकृति से सम्बन्धित अपनी जानकारी में वृद्धि कर सके। इस जानकारी का उपयोग सभ्यता विकास में, जीवन को सरल बनाने में, समस्याओं से लड़ने व उनका समाधान ढूँढने में और भविष्य से सम्बन्धित अपनी योजनाएँ बनाने में कर सकती है। 'पदार्थ, मन और अध्यात्म' ये है मनुष्य की व्यक्तिगत, बाहर से भीतर की ओर यात्रा।

भौतिक, रसायन, गणित और जीवविज्ञान के माध्यम से, मनुष्य पदार्थ के सम्बन्ध में अपनी समझ विकसित करता है। मनोविज्ञान के माध्यम से, वह मन के रहस्यों की परतें खोलने में व्यस्त है। अध्यात्म से सम्बन्धित विज्ञान, आपको अध्यात्म के बारे में अपनी समझ बढ़ाने, खुद को और जीवन को समझने में, आपकी सहायता करता है। विज्ञान कारण तक पहुँचकर उसका निवारण ढूँढता है। आपसे सम्बन्धित सभी रहस्यों का निवारण भी, आपके अपने कारण में छिपा है। पदार्थ का विज्ञान बुद्धि से, तो अध्यात्म का विज्ञान शुद्ध-बुद्धि से प्राप्त होता है। तत्वदर्शी, आन्तरिक रूपान्तरण की प्रक्रिया से गुजरकर दुनियाँ को, इसके विज्ञान के बारे में बताता है। जहाँ पदार्थ का विज्ञान अनुभव से प्राप्त होता है, वहीं अध्यात्म का विज्ञान अनुभूति से।

अध्यात्म का विज्ञान सूक्ष्मता का विज्ञान है। प्रकृति के नियमों का प्रभाव सभी प्राणियों पर एक समान पड़ता है। ठीक उसी प्रकार, अध्यात्म के विज्ञान पर चलकर व्यक्ति उन सूत्रों को सिद्ध कर सकता है, जो सूत्र हजारों सालों से तत्वदर्शी सिद्ध करते आए हैं।

यह पुस्तक दो भागों में विभक्त है, जिसका पहला आधा भाग 'अध्यात्म' की तो दूसरा आधा भाग उससे सम्बन्धित 'विज्ञान' की बात करता है। अध्यात्म की विज्ञान के नियमों के आधार पर व्याख्या प्रस्तुत करता है।

अध्यात्म का विज्ञान

आनन्द

वर्तमान में स्थित हो जाना ही आनन्द में स्थित हो जाना है क्योंकि यह क्षण अतीत और भविष्य से मुक्त हैं और यदि यह अतीत और भविष्य से मुक्त है तो न दु:ख ही इसे छू सकता है और न ही सुख। इस एक क्षण में तो आनन्द का ही राज्य है। इस क्षण में ही आनन्द की उपस्थिति है। वर्तमान में स्थित हो जाना ही, आनन्द की अवस्था में स्थित हो जाना है। फिर न अतीत के दुख और न ही भविष्य का संशय कुछ भी नहीं, सिर्फ और सिर्फ वर्तमान।

प्रकृति का मूल तत्व ही आनन्द है। आपने कभी भूमि को, जिसने फसल को पैदा किया, उसे स्वयं पर धारण करे रखा, उसे बढ़ने में और पकने में मदद की। उस फसल के कट जाने पर दुखी होते देखा है? वह मृदा कभी दुखी नहीं होती, वह फिर से नवजीवन के सृजन में लग जाती है। पेड़-पौधे आँधी में भी उतने ही आनन्द में झूमते हैं।

भले ही झूमनें की परिणति उनके गिरने में हो, परन्तु आख़िरी क्षण तक वे आनन्द का त्याग नहीं करते। त्याग आनन्द का हो भी नहीं सकता क्योंकि आनन्द कोई गुण नहीं, यह एक स्वभाव है। न मृदा ही फसलों के कटने का शोक मनाती है क्योंकि शोक मनाना उसके स्वभाव में है ही नहीं। वह तो सिर्फ नवजीवन का सृजन कर सकती है व पूर्ण मनोयोग से लालन-पालन कर सकती है। यही है उसका स्वभाव।

जब तक फसल मृदा में रहती है, मृदा उसे पूर्ण पोषण जल, स्थान प्रदान करती है परन्तु वह ये भी जानती है कि उचित समय पर यह फसल पक जायेगी और एक नयी फसल आयेगी। अत: इसमें शोक करने की कोई भी बात नहीं। जब तक फसल उसके साथ रहेगी, वह पूर्ण रूप से प्रेम में ही आबद्ध है।

वह उसे पूर्ण प्रेम देगी परन्तु उस फसल के पकने पर जब किसान उसे काट ले जायेगा, तो कोई शोक नहीं। अब नई फसल आने की बारी है, नये शरीर आयेंगे और वही क्रम फिर से चलेगा। यही है प्रकृति का स्वभाव, यही है आनन्द का स्वभाव, मनुष्य को सिर्फ यही एक बात समझ लेनी है।

वाह्य व आंतरिक जगत में अंतर

वाह्य जगत

- कामनाओं पर आधारित जीवन।
- स्वभाव व गुणों के आधार पर कर्मों का निष्पादन।
- अस्तित्व अर्थात् शरीर।
- विचारों से चलित।
- मन से नियन्त्रित।
- शरीर पर कार्य।
- विद्याओं की महत्ता।
- विचारों का प्रवाह बाहर से भीतर।
- सुख और दु:ख का व्यापार।
- संबंधों की महत्ता।
- उत्तेजना के उतार चढ़ाव।
- द्रव्यमय यज्ञ द्वारा संपादित।
- प्रेम की बाहरी दुनिया में तलाश।
- उर्जा का विखराव।
- ऊर्जा या तो व्यर्थ अथवा अवशोषित।
- जीवन नामक–अवसर से अनभिज्ञ।
- क्या खोज रहा हूँ? कुछ ज्ञात नहीं।
- चिंता क्रोध, व्यग्रता व लोभ से ग्रसित।
- माया से ओतप्रोत।
- अगले जन्म मे ले जाने हेतु कर्मफल के बंधन।
- कर्ता।
- प्रकृति के विपरीत।
- परतंत्र, आबद्ध जीवन।

आंतरिक जगत

- कामनाओं का सर्वथा अभाव।
- गुणों के विसर्जन का स्थान।
- शरीर यंत्र, आत्मा ही शाश्वत।
- विचारों का अभाव।
- आत्मा द्वारा मार्ग दर्शन।
- चेतना पर कार्य।
- ज्ञान की महत्ता।
- ज्ञान का प्रवाह भीतर से बाहर।
- शांति व आनंद का क्षेत्र।
- एकान्त ही विकल्प।
- आनंद का सतत् प्रवाह।
- द्रव्यहीन यज्ञ।
- प्रेम का स्रोत अंदर ही उपलब्ध।
- उर्जा एक दिशा में घनीभूत।
- उर्जा का सकारात्मक उपयोग।
- जीवन नामक अवसर का सदुपयोग।
- आत्म साक्षात्कार की संभावना।
- भावनाओं की आवश्यकता व उपयोग नहीं।
- सत्य का संसर्ग।
- अगले चरण (अगली कक्षा) में जानें की संभावना।
- साक्षी।
- प्रकृति की दिशा में।
- स्वतंत्रता (कर्म को क्रिया रूप में करने के कारण)।

धर्म व अध्यात्म में भेद

- धर्म एक संस्कार है और आध्यात्म संस्कारों से दूरी।
- धर्म शरीर को पहचान देता है और आध्यात्म सत्य को पहचान।
- धर्म नाम का खेल है और आध्यात्म नाम को मिटाने का।
- धर्म अहंकार का उपनयन संस्कार है, आध्यात्म अहंकार का श्राद्ध।
- धर्म में श्रद्धा प्राप्त होती है और आध्यात्म में अनुभूतियाँ।
- धर्म के बारे में समाज बताता है और आध्यात्म के बारे में आत्मा।
- धर्म बाहर से प्राप्त होता है और आध्यात्म भीतर से।
- धर्म द्रव्यमय यज्ञ है और आध्यात्म द्रव्यहीन यज्ञ।
- धर्म शरीरों के लिये है और आध्यात्म चेतना के लिये।
- धर्म विचारों व शब्दों की समझ है, आध्यात्म विचारों से दूरी।
- धर्म भीड़ है, आध्यात्म एकांत।
- धर्म शोर है, आध्यात्म मौन।
- धर्म भावना है, आध्यात्म शून्य।
- धर्म गुण है, आध्यात्म गुणों से दूरी।
- धर्म साँस रहने तक है, आध्यात्म सत्य रहने तक।

अहंकार

अहंकार का तात्पर्य है व्यक्ति का मस्तिष्क के नियंत्रण में होना। जब व्यक्ति या मस्तिष्क को यह महसूस हो कि मै यह शरीर हूँ, इसकी रक्षा की जानी चाहिए, इसकी भी एक एकात्मकता है, इसका भी कोई सम्मान है, इसकी भी कुछ आवश्यकतायें हैं, इसकी भी कुछ क्रियायें हैं। ये इंगित करता है कि मनुष्य अभी बौद्धिक स्तर पर है। अत: बुद्धि इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विभिन्न प्रकार के उपाय करती है। मस्तिष्क विचारों के रूप में संदेशो को प्रेषित कर उन्हें पूर्ण करने की पृष्ठ भूमि तैयार करता है। मनुष्य जब तक इन विचारों पर चलता रहता है। उसे यही प्रतीत होता रहता है कि जो कुछ भी है यह शरीर है। सबसे पहले यह शरीर, उसके बाद कुछ और यदि कभी आवश्यकता होगी तो इसकी ही रक्षा सबसे पहले करनी होगी। इसके आत्मसम्मान को ठेस नहीं पहुँचनी चाहिए क्योंकि इसका सम्मान, मेरा आत्मसम्मान है। इसका अपमान मेरा अपमान होगा और उस दशा में मुझे कुछ प्रतिक्रियायें आवश्यक देनी होंगी, सर्वप्रथम यही है और मैं यही हूँ– इसी उधेड़बुन में व्यक्ति जीवन भर लगा रहता है।

इस शरीर और इसके द्वारा स्थापित सम्बन्धों के दायरे में सिमट कर, यह जानकर कि जो कुछ भी है, दृष्टि के सामने है। इस प्रकार वह वाह्य जगत में पूर्णत: ओत-प्रोत रहते हुए सत्य से दूर रहता है और इस शरीर के मोह में फँसकर ही वह सुख की ओर भागता है, क्योंकि शरीर सिर्फ सुख और दुख को ही पहचान सकता है। उसका क्षेत्र सुख और दुख तक ही सीमित है, वह सुखों की तलाश करता रहता है। सम्मान में, विभिन्न विद्याओं की प्राप्ति में, धन में, सम्पत्ति में और इस क्रम में उन सुखों से जुड़े हुए दुख को आकर्षित कर लेता है क्योंकि सुख कभी अकेला नहीं आता। यह उस सिक्के के समान है जिसके दोनों पक्ष विपरीत होंगे। यदि सुख आया है तो दुख अवश्य होगा। जो चीज सुख प्रदान करती है, वही दुख भी प्रदान करती है। इस प्रकार सुख और दुख के मोह में बँधा हुआ यह शरीर विभिन्न कर्मों से जीवात्मा को बाँधता चला जाता है। इन्हीं कर्मों के द्वारा किसी अनित्य शरीर और इसके सम्बन्धों के मोह पाश में बँधा हुआ, वह वृद्धता की ओर अग्रसर हो जाता है परन्तु सत्य को तब भी नहीं पहचान पाता और अन्त में शरीर त्याग कर सिर्फ इस उधेड़बुन में लगा रहता है कि एक नया शरीर प्राप्त

हो और वो विचार जिनकी पूर्ति न हो पायी, उन विचारों को पूर्ण कर लिया जाये।

अहंकार वास्तव में असत्य के आवरण मे उलझे रहना ही है। अहं अर्थात् मैं स्वयं और जब तक कि ये ज्ञात न हो कि मैं का कोई अस्तित्व ही नहीं तब तक यह उधेड़बुन चलती ही रहेगी। इलेक्ट्रान अति ऊर्जा से भरा अपने केन्द्र से सबसे दूर की कक्षाओं में स्थित रहेगा तो काम, क्रोध, लोभ और मोह ये सभी शरीर और उसकी कामनाओं से जुड़े हुए रहेंगे, तो यदि धर्म ने कहा कि काम, क्रोध, लोभ, और मोह से दूर रहो तो उसके कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि शरीर और इसके छद्म आवरण से, इस झूठे विचार से स्वयं को अलग कर लो कि तुम ये शरीर हो क्योंकि तुम्हारा अस्तित्व आज से ३०-४० साल पहले था ही नहीं और आगे आने वाले इतने ही सालों में नहीं रहेगा। यदि तुम सत्य हो तो तुम विलुप्त क्यों हो गये? आप विलुप्त तो हो गये और इस तरह विलुप्त हुए कि दुबारा पाने की कोई संभावना भी नहीं। अनित्यता कभी सत्य से सम्बन्धित नहीं हो सकती।

इस छद्म अहंकार ने मानवता को कई युद्धों में ढकेला तथा विश्व युद्ध लड़े गए। तानाशाहों का साम्राज्य, उनके क्रियाकलाप, सभी अहंकार से पीड़ित थे और उनकी समाप्ति पर उनका साम्राज्य भी विलुप्त हो गया और अहंकार जो एक समय हिलोरें लेता था, आज कहीं उसका नामो-निशान नहीं। परन्तु बुद्ध वहीं के वही, चैतन्य महाप्रभु वहीं के वहीं, कबीर वहीं के वहीं, क्राइस्ट अभी भी वहीं के वहीं, गुरूनानक देव वहीं के वहीं, कृष्ण अपने नटखट स्वरूप में वहीं के वहीं। अहंकारों का प्रदर्शन, उनके स्वरूप और उनके परिणाम हमने देख लिये। इस पूरे इतिहास ने देख लिया और उनसे अब भी कुछ भी नहीं सीखा। हिटलर से लेकर चंगेज खान तक इसी अहंकार ने मानव जाति का बहुत विनाश किया तथा इसका कुछ फल न मिला। मिली तो सिर्फ बदबू! मिली तो सिर्फ कुरूपता! मिला तो सिर्फ अधंकार! जागृत पुरूषों ने सिर्फ इसलिए कहा कि जागो इस नींद से जागो। देखो जो तुम्हारे चारो तरफ संदेश बिखरे हैं। बस उन्हें देखकर उन्हें समझ लेने की आवश्यकता है कि तुम कौन हो? शायद यह वक्त है कि इस अहंकार को कहीं पीछे छोड़ो इसकी परिणति, इसके परिणाम की तरफ देखो और प्रारम्भ करो एक यात्रा स्वयं को पाने की, स्वयं को खोजने की। क्योंकि तुम, यदि यह शरीर नही हो तो तुम कौन हो और तुम क्यों हो? यदि धरती पर तुम्हारी उपस्थिति है तो क्यों

है? इसी बात को खोज लेने की आवश्यकता है। इसी बात को जान लेने की आवश्यकता है क्योंकि यह एक प्रश्न तुम्हारे लिए अनन्त के द्वार खोल सकता है।

अहंकार अर्थात् चेतना का पूर्ण रूप से शरीर के प्रति अवलंबित होना। यह मानना कि जो भी है, वह मेरा यह शरीर, मेरा अस्तित्व, मेरी उपस्थिति, यह मैं जो दिखाई देता हूँ, यही वास्तविकता है। जो भी मुझे करना है, जो भी मेरा कर्म है जो भी मैने किया, वह इसी के लिये है।

मैंने जीवन में जो भी संबंध बनाए, जो भी संबंध मुझे जन्म से प्राप्त हुए और जिनको भी मैंने जन्म दिया, मेरी क्रियाशीलता, मेरा उत्तरदायित्व व मेरी सोच सिर्फ इनके लिये है। जो भी मैने अर्जित किया, जो भी मैने संचित किया, जो भी मैंने डिग्रियाँ प्राप्त की, जो भी संपत्तियाँ मैने बनाई, जो भी सम्मान कमाया, अपना एक स्थान बनाया, वह 'मैंने' जो यह शरीर है, इसी ने तो किया।

देखो कितना कुछ किया मैंने, कितनी मेहनत की, दिन को दिन व रात को रात न समझा। बुरे दिन देखे, उलाहना सुनी, फाकामस्ती देखी तब जाकर यह अर्जित किया मैंने। कहाँ से कहाँ आ गया? धूल से शुरू की थी, अब जाकर फूलों की सेज तक पहुँचा हूँ और क्या समाज के लिये नहीं किया मैंने? आए दिन चन्दे देता रहता हूँ। कितनीं बार तो लोगों की सहायता की मैंने। अब समाज को मुझे समझना चाहिये, समाजिक योगदान के लिये मुझे सम्मानित करना चाहिये। कब ये समझेंगे मुझे? ईसा, मीरा, सुकरात को तो मरने के बाद समझा, तो क्या मुझे भी मेरे जाने के बाद ही समझेंगे ?

यह ठीक उसी प्रकार है, जैसे नारियल यह समझे कि- 'मैं कितना सख्त हूँ और कितना कड़ा। कोई तोड़ कर तो देखे, अपना हाथ ही तोड़ बैठेगा। मुझसे रस्सियाँ बनाई जा सकती हैं, ईंधन, चारकोल, चटाई, कितने काम का हूँ मैं और सबसे मजबूत तो मेरा यह खोल।'

लेकिन इस खोल को ही सबसे पहले तोड़ा जाता है और उससे पहले उसके रेशें खींचकर अलग कर दिये जाते हैं। जिस पर अभिमान हो, सबसे पहले उसे ही गिरा दिया जाता है, तोड़ दिया जाता है और भीतर सबसे पहले मिलता है, नारियल का पानी, जो पथरी को गलाता है, ऐंठन को रोकता है, पाचन तंत्र को सुदृढ़ करता है, बुढ़ापे को रोकता है, खून का बहाव सामान्य करता है, ऊर्जा देता है,

हड्डियाँ मजबूत करता है। जो एंटी वायरल व ४० से ज्यादा गुणों से भरपूर है।

नारियल का पानी इस धरा पर पीने लायक शायद सबसे अच्छा पेय है, उसका किसी से कोई विरोध नहीं। जो भी उस तक पहुँच सके, उसे पाने का अधिकारी है। वह सहजता से उपलब्ध है, जो सबसे ज्यादा गुणों से भरा है। वह कहता है, जैसे भी चाहो मेरा उपयोग कर लो क्योंकि मेरा जन्मदाता 'वह पेड़', जिस पर मैं लगा था, उसने मुझे जन्म ही इसीलिये दिया कि एक दिन कोई मेरा उपयोग कर ले, क्यूँकि आप मुझ तक पहुँच गए तो मैं आपके लिये ही हूँ। मुझे ग्रहण कर मुझे सार्थकता प्रदान कीजिये। नारियल का खोल अहंकार का व नारियल पानी अहंकार शून्यता का सुंदर उदाहरण है।

यह शरीर भी नारियल के समान है। जिसका सबसे गुणी भाग केन्द्र में होता है और अहंकार शून्य होना ही उसका सबसे विशिष्ट गुण है।

अहंकार उस परावर्तक की भाँति है, जो अंदर के प्रकाश को बाहर आने नहीं देता और बाहर के जीव को भीतर झाँकने नहीं देता।

अहंकार रूपी परावर्तक की सतह पर होते है—

- संस्कार।
- विशिष्ट विचारधारा।
- सोच।
- वासना।
- कामनाओं की परतें।

इस परत से मुक्त होने का उपाय शून्यता—

- विचार शून्य।
- विचार धारा शून्य।
- पक्षपात शून्य।
- मोह शून्य।
- लोभ शून्य।
- बल शून्य।

शून्यता का अर्थ, सभी के लिये समान रूप से उपलब्ध हो जाना।

न राग में न विराग में, न पक्ष में न विपक्ष में।

न सुख में न दुख में, न पास में न दूर में।

दर्पण से परावर्तक की परतें मिटनी शुरू होने पर प्रकाश की झलक प्राप्त होनी प्रारम्भ हो जाती है और यह प्रकाश ही जीव में जिज्ञासा पैदा करना प्रारम्भ करता है। यह जिज्ञासा विभिन्न प्रकार से उपस्थित हो सकती है। सतत् जिज्ञासा परावर्तक की परतों पर कार्य करती रहती है व उन्हें पतला करती जाती है।

मन का आभासी जाल

मन बड़े ही रहस्यमय व चुपचाप तरीके से अपना काम करता है। वह चेतना को यह विश्वास दिला देता है कि वह जो भी कह रहा है या सोच रहा है, वह उसका ही है और यही वह महत्वपूर्ण कार्य है, जो जीवन में उसे करने हैं।

मन कभी चेतना को इतनी स्वतंत्रता नहीं देता कि वह जीवन के पार का कुछ सोचे। वह चेतना को शरीर की परिधि से बाँध देता है। वह भविष्य के बारे में संशय पैदा करता है ताकि वर्तमान को भुलाया जा सके। व्यक्ति भविष्य व उसकी तैयारियों में व्यस्त रह यथार्थ भूल जाए अथवा याद ही न कर पाए।

वह अतीत के कष्टों से चेतना को बाँध देता है। मन यह निश्चित करता है कि अतीत को भुलाया न जा सके।

वह अतीत का उपयोग वर्तमान को भुलाए रखने में करता है। मन का पूरा का पूरा विरोध वर्तमान से है।

कृष्ण कहते हैं- जीवन यदि है, तो वर्तमान में है। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं। मन कहता है- अतीत को भूलो मत, नहीं तो तुम भविष्य को बिगाड़ लोगे। कैसे भूल सकते हो तुम अतीत को जिसने तुम्हें सुख के क्षण दिए, कितने कष्ट झेले तुमने अतीत में। कितने दुखी हुए तुम। भूल जाओगे इन सबको तो भूल जाओ! इस प्रकार भविष्य में कभी मुझे न कहना, यदि तुम्हें फिर कष्ट झेलने पड़े। या तो तैयारी करो भविष्य की। धन संचित करो। संपत्ति बनाओ। धन होगा तो महत्ता होगी, इज्जत होगी, खुशी होगी। आज को अपने कल के लिये जला दो, इसकी आहूति दे दो ताकि भविष्य में तुम्हें सुख मिले।

'मन' अतीत और भविष्य के विचारों का कूड़ाघर है। सृजनात्मक विचार बुद्धि में आते हैं, मन में नहीं।

मन कहता है, अनुभव लो! अनुभवों का लाभ मिलता है। भविष्य अनुभवों की थाती है, जितने ज्यादा अनुभव, भविष्य उतना ही समृद्ध। आध्यात्म कहता है, अनुभवों की आवश्यकता मन को है, वाह्य जगत को है। आंतरिक जगत में अनुभवों

का कोई मूल्य नहीं। चेतना का भोज है, अनुभूतियाँ, अनुभूतियों से चेतना पुष्ट होती है। बाह्य यात्रा में अनुभव मील के पत्थर है, और आंतरिक जगत में अनुभूतियाँ। मन एक आवरण है, चेतना के चारों ओर, जो माया का प्रतिनिधि है। मन का पूरा जोर सिर्फ इस बात पर होता है, कि किस प्रकार जीव को प्राप्त ऊर्जा, व्यर्थ कर दी जाए। और इसके निमित्त वह काम, कामना, कमनीय, कमाई व कमीं के उद्दीपन का उपयोग करता है।

मन चेतना को काम का सतत् उद्दीपन देता है, और भाव देता है, कि काम सुख नहीं, तो कुछ नहीं। यह इतना प्रबल भाव होता है कि व्यक्ति कभी-कभी अपराध कर बैठता है, जबकि वह उसकी सामान्य प्रवृति नहीं। व्यक्ति जीवन भर काम के पीछे भाग सकता है, बिना थके, बिना चूके। निश्चय ही इसमें अथाह ऊर्जा व्यय होती है, व मूल्यवान समय अलग से, जो जीवों के लिये सीमित है।

कामनाएँ व उनकी सिद्धि ही वाह्य जीवन की सफलता का मापदंड है। इसी कारण कहा जाता है कि बड़ा सोचो, क्यूँकि बड़ी सोच तुम्हें बड़ा काम करने को उद्वत करेगी। बड़ी सोच जीवन को चरम दे सकती है, क्यूँकि जितनी बड़ी सोच, प्रयास उतना ही महती, ऊर्जा आवश्यकता भी उतनी ही विशाल। सच भी है। बड़ी अट्टालिकाएँ, सुंदर शहर, बड़े उद्योग, बड़े विचार व उनसे भी बड़े प्रयास।

परन्तु कामनाएँ सदैव सकारात्मक हो यह आवश्यक नहीं। वे नकारात्मक भी होती हैं, वे स्वार्थी व अन्यों को कष्ट देने वाली भी होती हैं। कामनाएँ यदि सभ्यता के लिये हों, तो सार्थक सिद्ध हो सकती हैं, परन्तु यदि स्वार्थ के लिये हों तो सभ्यता को फायदा व नुकसान दोनो ही दे सकती है। कामना सिद्धि से आबद्ध ऊर्जा विशाल है।

कमनीय काया सन्निकट रहने वालों की ऊर्जा की शोषक होती है। विपरीत लिंगी उसे अपने विचारों में स्थान देगे व हृदय में भी इस प्रकार आत्मा जो हृदय में वास करती है, उसके निवास स्थान पर माया की पहुँच हो गई। विचार ऊर्जा व्यर्थ हुई सो हुई, एक किराएदार भी रख लिया, जो उल्टे किराया वसूल करेगा। समान लिंगियों के लिये यह ईर्ष्या व जलन को निमन्त्रित करती है। समय, स्वास्थ्य, ऊर्जा सभी का व्यय और स्वयं को जो कष्ट पहुँचाया, वह अलग। वह काया जो

एक दिन ढल जानी है, विशिष्ट से सामान्य और सामान्य से निस्तेज होकर समाप्त हो जानी है, उसने नाहक ही कितनी महती ऊर्जा को यूँ ही व्यर्थ किया।

मन संतृप्ति नहीं जानता, जानता है तो सिर्फ कमीं। मन भर तो जाता है, परन्तु पुनः खाली होते देर नहीं लगती। यदि एक वस्तु से भर गया तो अब कुछ और नया ढूँढ लेता है भरे जाने को और यह प्रक्रिया सतत् चलती रहती है। यह तब तक चलती रहती है, जब तक शरीर ही प्रयाण न कर जाए। वृद्वावस्था में यह निर्बल तो हो सकती है, क्यूँकि अब शरीर साथ नहीं देता।

मन कमीं का उद्दीपन सतत् निर्मित करता है, जिसके वशीभूत होकर शरीर उस कमी को भरने का पूर्ण प्रयत्न करता है। कमीं पूर्ण करते-करते ही वह वृद्धावस्था में प्रवेश कर जाता है और अब शरीर में ही कमियाँ आ गईं और अब मृत्यु ही, शरीर में आई कमीं व उसके प्रभाव को दूर करेगी।

मनुष्य का पूर्ण जीवन काम, कामना, कमनीय काया, और कमीं के चारों ओर ही चक्कर लगाता समाप्त हो जाता है, और माया एक बार पुनः सफल होती है। खेल का एक चक्र और उसके नाम रहा। सत्य आवरण में ही छिपा रहा और माया ने चेतना को उस तक पहुँचने न दिया, बाहर ही रोके रखा, भीतर झाँकने भी न दिया। और जिन कार्यक्रमों मे उलझे रहकर मनुष्य ने शरीर त्यागा, वे शरीर समाप्ति के साथ समाप्त भी हो गए। एक भी चेतना के साथ आगे न गया। गया भी तो क्या, जंजालो में उलझे रहकर जो कर्मफल प्राप्त किया, वह। अब किसी जन्म में इसे भी साफ करना होगा। साथ गया तो फिर वही मन, बुद्वि और अहंकार।

यह महान ऊर्जा चक्रों के जागरण में कार्य आ सकती थी। आत्म शोधन में प्रयुक्त हो सकती थी। संस्कार समाप्ति में उपयोग की जा सकती थी। ध्यान में उतरने में प्रयुक्त हो सकती थी। कर्मफल को नष्ट करने में उपयोग की जा सकती थी। स्वाध्याय को सिंचित कर सकती थी। सेवा, भक्ति और समर्पण जैसे दिव्य उद्योगों के काम आ सकती थी। गुरू की खोज में, सत्य की खोज में जा सकती थी।

कितने सुंदर उपयोग थे इसके, इस प्रकार चेतना में आए परिवर्तन भी स्थिर होते है और अगले जन्म हेतु दैव का निर्माण करते हैं। वे शरीर के पार की यात्रा में भी साथ नहीं छोड़ते। अगले जन्म के निर्धारण व भविष्य हेतु किये गए निर्णयों

में सहायक होते हैं। ये स्वभाव का निर्माण करते हैं और आत्मा के DNA के समान कार्य करते हैं।

बच्चों को भविष्य की अनुभूतियाँ ज्यादा होती हैं इसकी वजह यह है कि उनकी चेतना का अनुकूलीकरण अभी नहीं हुआ है। अभी चेतना आत्मा के कहीं ज्यादा निकट है। उसका ब्रह्माण्ड की उन शक्तियों से जुड़ाव ज्यादा अच्छा होता है जो भविष्य में भी उतनी ही आसानी से देख सकती है जितना की वर्तमान में। इसी कारण बच्चे को होने वाली अनुभूतियाँ सहज और सुलभ होती हैं और ये उनकी स्वभाव की सहजता और सरलता पर निर्भर करता है। समय व्यतीत होने के साथ ही अनुभूतियाँ घटती चली जाती हैं क्योंकि अनुकूलीकरण धीरे-धीरे आकार लेने लगता है इसलिए ब्रह्माण्ड की शक्तियों के नजदीक जाने का अच्छा उपाय है, सहज और सरल हो जाना। अपने ऊपर संस्कारों की परतें और प्रदूषण जो कि काम, क्रोध, और लोभ के रूप में है, उससे छुटकारा पा लेना। जितनी जल्दी ये सरलता प्राप्त होगी, उतनी ही जल्दी आध्यात्मिकता भी प्राप्त होगी।

❖❖

त्याग नहीं सदुपयोग

वृक्ष अपनी छाया का कभी त्याग नहीं करते वे सम्पूर्ण छाया का ३-४% स्वयं के लिये रख बाकी छाया को चर-अचर जगत को अर्पित कर देते हैं ताकि उसकी छाया में घास व अन्य छोटे पौधे व चीटियों व अन्य जीव शरण पा सकें।

पूरा जीवन जितनी भी सामर्थ्य उनके पास उपलब्ध हो, उस पूरी सामर्थ्य का उपयोग वह सूर्य का ताप सहने में, व प्रत्युत्तर में छाया उत्पन्न करने में करते हैं। वे छाया के त्याग के विषय में सोचते भी नहीं अन्यथा घास व चीटीयों को आश्रय किस प्रकार प्राप्त हो सकेगा? वृक्षों की छॉव की आड़ में अपनी यात्रा पूरी करता पथिक थकनें पर छाँव कहाँ ढूँढेगा? वह वृक्ष के तनें पर टेक लगाकर, उसकी शीतल छाँव में एक झपकी ले अपनी यात्रा पुन: प्रारम्भ कर देता है। यदि वृक्ष अपनी छाया प्रदान करने को मना कर दें तो पथिक को अपनी यात्रा में महान कष्ट का अनुभव होगा।

पूरे रास्ते सूर्य का तेज उसकी परीक्षा लेगा। कदाचित् वह अपनी यात्रा पूर्ण भी न कर पाए। सूर्य के तेज से घबराकर कई पथिक अपनी यात्रा प्रारम्भ भी न करेंगे। यदि पथिक अपनी यात्रा न करे तो वह गंतव्य तक कैसे और कब पहुँचेगा? सृष्टि के चक्र में बाधा पहुँचेगी क्योंकि सारी सृष्टि गतिमान है। परिवर्तन ही स्थायी है।

परन्तु वृक्ष कभी अपनी छाया देने को मना नहीं करते। वे अपने कर्तव्य से कभी विमुख नहीं होते। प्रकृति सदैव अपने कर्तव्य में पूर्णत: व्यस्त है क्यूँकि चर जगत पूर्णत: उस पर ही निर्भर है। वृक्ष कटने के पश्चात भी पूर्णत: सूख जाने तक अपनी छाया प्रदान करते रहते हैं।

वे कभी छाया प्राप्त करने वाले की पात्रता का परीक्षण भी नहीं करते। पात्रता की परीक्षा को उन्होंने कभी भी महत्व ही न दिया। वे बस एक ही सिद्धान्त को

जानते व मानते हैं कि यदि तुम मेरे पास आ सकते हो, तो तुम पा भी सकते हो।

हर वह व्यक्ति जो समर्थ है, उसे त्याग की अपेक्षा अपनी क्षमताओं के सदुपयोग के बारे में विचार करना चाहिये। इस प्रकार वह प्रकृति के साथ संयुक्त व पूर्ण रूप से आत्मसात हो सकेगा। वह कर्मयोग के सिद्धान्तों को भी पूर्ण करता चलेगा।

इस संबंध में विनोबा का सूत्र M_2A अति उपयोगी है, जिसमें वे कहते हैं कि दिन का दो भाग Meditation (ध्यान) व एक भाग Action (कर्तव्य) में व्यतीत करना उचित है।

कल्पना कीजिये उस क्षण का, जब वायु अपनी क्षमताओं व कर्तव्यों का त्याग कर दे, वह स्वयं को उपलब्ध कराने में असमर्थता व्यक्त कर दे, इस पृथ्वी पर सभ्यता व जीव जन्तु कितने मिनटों तक जीवित रह सकेगें। कल्पना कीजिये जब अग्नि अपने कर्तव्यों से विमुख हो जाए। भोजन का पकना किस प्रकार संभव हो सकेगा? वाहन किस प्रकार चल सकेंगे। ऊष्मा किस प्रकार प्राप्त हो सकेगी। माया को त्यागना मुश्किल है परन्तु उसका अनुभव कर उससे आगे बढ़ जाना सहज।

❖❖

बुद्ध अपने जीवन के प्रथम २९ वर्ष पूर्ण भोग में रहे, माया के भवन में रहे, और इसी अनुभव ने उनमें असारता को जन्म दिया। वह भोग जो ऊपर से अत्यन्त आकर्षक लगता था भीतर से खाली मिला। सारा आकर्षण वाहय तल पर था। उन्होने माया को त्यागा नहीं वरन् उसका अनुभव कर उससे आगे निकल गए। माया को उन्होने पीछे छोड़ने का निर्णय लिया।

बिल गेट्स ने माया को उसके पूर्ण सौन्दर्य में देखा, और उसे भोगकर यह समझा कि इसे जरूरतमंदो में बाँट देना उचित है। उन्होंने सदुपयोग का निर्णय लिया। वे चाहते तो उसमें फंसे रह सकते थे परन्तु उन्होने आगे बढ़ने का निर्णय किया। वे माया को भोग चुके थे, अब दो उपाय थे। माया के चक्र में उलझे रहना तथा माया में और उलझते जाना और दूसरा कि अनुभव पूर्ण हुआ अब आगे बढ़ना।

वॉरेन बफेट ने अकूत संपदा अर्जित करने व दुनिया भर में अपनी संपति व उसे अर्जित करने की क्षमता के कारण प्रसिद्धि हासिल की और फिर अर्जित की गई ९९% संपत्ति को दान द्वारा सदुपयोग किये जाने का निर्णय लिया। उन्होनें संपत्ति अर्जित करना छोड़ा नहीं परन्तु उन्होने माया की पकड़ से निकलने का मार्ग ढूँढ लिया। उन्होने निश्चित किया कि इसका सदुपयोग किया जाना आवश्यक है। वे उसी संस्था को दान देते है जहाँ वह पूर्ण आश्वस्त होते है कि धन का सदुपयोग होगा। यदि उन्होने अर्जित का त्याग करने का निर्णय लिया होता, तो एक स्तर के पश्चात् वे उनकी सेवा न कर पाते, जिनकी सेवा वे कर पा रहे हैं।

❖❖

तालाब के कीचड़ में खिले कमल के सौन्दर्य को दूर से आप निहार तो सकते हैं, परन्तु उस कमल को प्राप्त करने हेतु कीचड़ में छलांग लगानी होगी। माया के कीचड़ में ही ज्ञान का कमल खिलेगा। हम पहले से ही माया के कीचड़ से सने हैं, अत: कमल खिलने की संभावना प्रबल है, बस उपर्युक्त परिस्थितियों को उत्पन्न करने की आवश्यकता है।

त्याग करने योग्य है विचार और यह भी तब संभव हो पाएगा, जब माया संतृप्त हो चलेगी। संतृप्त (Saturated)होनें पर यह विचारों से भागनें का प्रयास करेगी। सुपर सैचुरेशन का तात्पर्य है, जब आपका तापमान बढ़ाकर और आप पर दबाव बनाकर और अधिक विचार आपमें घोलने का प्रयास किया जाए। चरम पर पहुँचकर ही विचारों के खालीपन और इनकी विध्वंसक क्षमता की जानकारी हो पाएगी।

आपके पति या पत्नी यदि माया में आकंठ डूबे, अहंकार से पीड़ित, असंतृप्त जीवन जी रहे हों, तो वे सुपर सैचुरेशन की अवस्था आपके लिये उपलब्ध करा सकते हैं। उनका माया व अहंकार से प्रताड़ित होना कभी-कभी आपके लिये माया से पार जाने का मार्ग खोल सकता है। उनका पीड़ित होना-आपके लिये अनुभव बन सकता है।

तनाव सदैव नुकसान ही नहीं करता परन्तु कभी-कभी यह आपके लिये पथ भी प्रशस्त कर सकता है। तनाव माया का उच्चतम् बिन्दु है, जब वह पूर्ण वेग से

आक्रमण करती है। यदि इस आक्रमण से आप बच निकले तो यह उन परिस्थितियों का निर्माण करता है, जब आप माया के चक्र से बाहर निकलने का मार्ग तलाशेंगे। हर जगह । मनो चिकित्सक से लेकर धर्म व अध्यात्म तक। शिखर से शून्य तक। क्यूँकि शिखर तक पहुँचने पर शून्य की यात्रा प्रारम्भ हो जाती है। यह आपका आंतरिक शिखर होगा। सामान्य दृष्टि में तो यह शून्यता होगी परन्तु अब यही शिखर बचता है।

सामान्यजन आपमें कोई रूचि भी न लेंगे, क्यूँकि आपकी शून्यता से उन्हें कोई लेना देना नहीं। वे सिर्फ बाह्य शिखरों को ही जानते हैं वे अभी सिर्फ एक बाह्य यात्रा जानते हैं। आप आंतरिक यात्रा पर निकल गए, इसका उन्हें कोई भान भी न होगा।

परन्तु वाह्य चरम से आंतरिक चरम की यह यात्रा आपके लिये विशिष्ट होगी, वास्तविक होगी। क्यूँकि यह यात्रा है स्वयं के अस्तित्व को खो देने की और परम अस्तित्व को पा लेने की।

उत्तर श्रवण नहीं उत्तर प्राप्ति

यही प्रथम अनुभूति होगी उत्तर प्राप्त करना। उत्तर किसी जागृत पुरूष के माध्यम से कदाचित तुम्हें प्राप्त तो हो जाए, और तुम्हें संतुष्टि भी दे जाए, परन्तु यह संतुष्टि चेतना के तल तक न पहुँचेगी। तुर्कों से तुम्हारा मन तो संतुष्ट हो सकता है, परन्तु चेतना नहीं। किसी जागृत व्यक्ति को भी उत्तर देने हेतु शब्दों का ही सहारा लेना होगा।

परन्तु तुम्हारे उत्तर तुम्हें शब्दों के माध्यम से प्राप्त न हो तो सर्वोत्तम।

शब्द बाह्य तल को ही संतृप्त कर पाएँगे, चेतना प्यासी, निरूत्तर रह जाएगी।

पहले यह जानना होगा कि प्रश्न क्यूँ उठा? प्रश्न के उठनें का कारण यह है, कि उत्तर आपके भीतर पहले से ही मौजूद है और वही उत्तर प्रश्न को अपना माध्यम बनाकर भेज रहा है, ताकि जिज्ञासा उत्पन्न की जा सके। खोज प्रारम्भ की जा सकें। यदि तुम्हारे भीतर उत्तर न होता, तो प्रश्न भी न आता।

यह उत्तर आप पिछले जन्म से लेकर आए थे। पिछले जन्म में आपने वह स्तर प्राप्त कर लिया था कि आप ईश्वर के माध्यम के रूप में चुन लिये गए परन्तु समय पूर्ण हो जाने के कारण उस पर कार्य न हो पाया।

उत्तर इसी की याद दिलानें हेतु प्रश्न भेज रहा है, कि खोजों, उत्तर खोजो ताकि अपूर्ण कार्य को पूरा किया जा सके। आंतरिक यात्रा प्रारम्भ हो सकें। यात्रा वहीं से चले, जहाँ पर छोड़ा था।

समर्पण एक बहुत सुंदर उपाय है, उत्तर पाने का । इस प्रकार उत्तर के प्रकट करने का भार आप परम सत्ता पर छोड़ देते हैं। परम् सत्ता के ऊपर यह भार आ जाता है कि वह निमित्त, माध्यम व उचित समय का चुनाव करे।

साथ ही साथ आपकी तैयारी भी चलती रहती है, जिसमें आप अपने अहंकार को निरंतर कम करते जाने पर कार्य करते हैं। निष्काम भक्ति का आनंद लेते हैं। संस्कारों की पकड़ ढ़ीली करते हैं। विचारों को स्वतंत्र करते हैं। स्वाध्याय द्वारा

मस्तिष्क में वह सूचनाएँ एकत्र करते हैं जो बाद में आपको विभिन्न कड़ियों को जोड़ने में मदद करेगी। विभिन्न रहस्यों के स्पष्टीकरण में सहायक होगी।

यह शरीर चेतना व आत्मा में छिपे खजाने को उपयोग कर लिये जाने का मार्ग खोलता है। उस खजानें की चाभी, एक उसी उत्तर के पास है, जिसे आप खोज रहे हैं।

उत्तर के प्राप्त होते ही वह चाभी आपके हाथ लग जाएगी। अब आप खजानें के प्रबंधक बन जाते है। जैसे एक माली जो फूल चुनकर उन्हें माला में पिरो, अर्पित कर देता है।

इस चाभी के प्राप्त होते ही उसे ज्ञात हो जाता है कि यह खजाना उसका नहीं। यह तो अस्तित्व ने रख छोड़ा है हर उस व्यक्ति के लिये जो स्वयं को योग्य बना लें या समुचित प्रयास कर लें। आप उस खजानें के चौकीदार बन जाते हैं और अब यह आपके विवेकाधीन है। आप इसे हर उस व्यक्ति पर लुटा सकते हैं जो जिज्ञासु हैं, प्यासा है और कृष्ण आपको इसकी पूरी छूट भी देते हैं।

यह खजाना है, सृष्टि के रहस्यों के उत्तर का। अब सृष्टि एक-एक कर अपने रहस्य आपको उपलब्ध कराती है। एक-एक कर अपनी जिज्ञासा अब आप सामने रख सकते हैं। ध्यान के दौरान जब चेतना आत्मा का प्रकाश सामान्य से ज्यादा प्राप्त करती है तो वह समाधान में विलीन हो जाती है। इसी अवस्था को समाधि कहते हैं।

माया का प्रभाव अल्पकालिक है कुछ ही वर्षों में यह कमजोर पड़ने लगता है, इसी कारण शरीर वृद्धावस्था को प्राप्त करता है। माया को मोहित करने हेतु एक नए व सुंदर शरीर की आवश्यकता होती है। माया को अपना प्रभाव बनाए रखने हेतु पुराना शरीर त्यागना व नया शरीर लेना होता है। इससे पहले कि वह पुनः नए शरीर का निर्माण प्रारम्भ करे, आप इस तथ्य को आत्मसात कर लें।

गुणों के होने के पश्चात भी उनके होने का अहंकार न होना ही निर्गुणता है। सीखनें से ज्यादा मुश्किल है, सीखे हुए को भुलाना, नया रंग चढ़ाने से ज्यादा मुश्किल है, पुराने रंग को छुड़ाना, जो समय और ऊर्जा दोनों ज्यादा लेता हैं। समय के साथ आप अपनी विचार धारा के साथ एकीकृत हो जाते हैं। उसे अलग करना,

ठीक उसी प्रकार है, जैसे शरीर से एक अंग को अलग करना।

परन्तु यही विचारधारा आपके अहंकार को खड़ा रखती है। विचारधारा के गिरते ही अहंकार के गिरनें का भी मार्ग प्रशस्त हो जाता है और अहंकार के गिरनें का अर्थ है, शरीर बंधन से छूटने का पहला द्वार खुल जाना।

माँ द्वारा एक नग्न बच्चे को जन्म दिया जाना इसी बात का संकेत है कि वह इस समय प्रकृति की भाँति ही निर्गुण है, उस पर अभी किसी विचारधारा का रंग नहीं चढ़ा।

महावीर और त्रैलंग स्वामी द्वारा नग्न रहने का तात्पर्य ही यह है, कि उन्होने पहले से चढ़े सभी रंगों को उतारकर सत्य की खोज प्रारंभ की और इसी कारण वे स्वयं को सत्य के रंग में रंगने को सफल हुए। ओशो ने इस दिशा में विशेष कार्य किया, उन्होने पूरा जीवन जिज्ञासुओं पर चढ़े रंग को उतारने में ही लगा दिया।

जीवन एक शहर की भाँति है। शहर में रहते हुए आप उसमें लिप्त रहते हैं, इसके आकर्षण में खोये हुए। इसके विचारों में मग्न। अन्य शरीरों से घिरे हुए। जीवन सामान्य हो जाता है, आकर्षण प्रमुख।

शहर यदि पहाड़ के किनारे बसा हो, और आप पहाड़ पर चढ़कर शहर को देखें तब आप शहर का विस्तार देख पाएंगे, शहर का विन्यास देख पाएंगे। शहर की सुन्दरता देख पाएँगें। शहर की हरियाली, उसके मैदानों को देख पाएंगे। भीड़ को सड़कों से गुजरतें देख पाएंगे। सड़कों पर रेगती गाड़ियाँ देख सकेंगे।

पहाड़ पर से आप शहर में लिप्त हुए बिना उसका ''अवलोकन'' कर सकते हैं। अब आप निरपेक्ष हैं, तटस्थ हैं। शहर में होते हुए आपको पक्ष या विपक्ष में होना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार जीवन का अवलोकन करने हेतु आपको शरीर से उपर उठना होगा, अलग हटना होगा। शरीर में रहते हुए जो आप नहीं कर सकते, शरीर से अलग हटकर, कर सकते हैं।

ध्यान आपके लिये यही अवसर उपलब्ध करवाता है। शरीर में रहते हुए जीवन को तटस्थ भाव से देखना।

कृष्ण बताते हैं कि कर्मों के आधार पर मनुष्य पशु योनि, मनुष्य योनि व दैव योनि में जन्म लेता है। अर्थात् कर्मों के आधार पर वह निम्नयोनि व उच्चतर योनियों में गमन कर सकता है।

परन्तु सत्वगुणी मनुष्यों का क्या ? उनके हेतु कौन सा मार्ग है?

कृष्ण समझाते हुए कहते हैं, कि इस स्तर पर आकर मनुष्य को जानना चाहिये कि जीव में गुण नहीं वरन् गुणों के कारण जीव होते हैं।

यदि मनुष्य गुणों से दूर हट जाए तो उसे शरीर लेने की आवश्यकताए नहीं। अब वह अगले चरण पर जानें को तैयार है जिसे उन्होंने ''परमपद'' कहा। परमपद अर्थात् मनुष्य शरीर के परे विस्तार। अलौकिक जगत में विस्तार। दुख-सुख के परे विस्तार। जीवन मूल्य से परे विस्तार। राग द्वेष के परे विस्तार। स्वार्थ के परे विस्तार।

डार्विन का क्रमिक विकास एक कोशीय प्राणी से जलचर, उभयचर, चौपायें से मनुष्य पर आकर रूक जाता है। क्या मनुष्य पर आकर यह क्रमिक विकास समाप्त हो गया? जब सृष्टि समाप्त नहीं हुई, समय समाप्त नहीं हुआ, तो विकास कैसे समाप्त हो गया? नहीं, विकास समाप्त नहीं हो सकता। बहुत सुंदर है, डार्विन का क्रमिक विकास का सिद्धांत। यह सत्य को आधुनिक विज्ञान के परिपेक्ष्य में स्थापित करता है परन्तु यह सिद्धांत स्थूल है। डार्विन से ७००० साल पहले, कृष्ण ने यह सिद्धांत गीता में प्रस्तुत कर दिया था। साथ ही इसका सूक्ष्म वर्गीकरण व सूक्ष्म विस्तार भी प्रस्तुत कर दिया था।

कृष्ण ने मनुष्यों में विकास के ३ चरण बतलाए—

१. तमोगुणी

२. रजोगुणी

३. सत्वगुणी

तमोगुणी अर्थात् पशुवत गुण।
रजोगुणी अर्थात् मनुष्यों के गुण।
सत्वगुणी अर्थात् देवगुण।

- पूरा मनुष्य समाज इन्हीं गुणों के आधार पर बँटा हुआ है। यही मानव सभ्यता की यात्रा है। यही आधार व यही चरम है।

- शरीर मादक पदार्थों का आदी नहीं होता, शरीर बस स्वयं को मादक पदार्थों के साथ रहने को अनुकूलित कर लेता है। मन मादक पदार्थों को शरीर तक खींच कर लाता है। मादक पदार्थों के प्रभाव में मस्तिष्क की विचार करने की क्षमता क्षीण हो जाती है और मन की मस्तिष्क व शरीर पर पकड़ मजबूत। क्यूँकि मादक पदार्थों के माध्यम से मन का शरीर पर अधिकार हो गया, अत: समय के साथ-साथ मन मजबूत होता जाता है, और शरीर कमजोर। समय के साथ शरीर को मादक पदार्थों के दुष्प्रभाव के कारण विभिन्न रोग झेलने पड़ते हैं, और अंतत: मन के ही शरीर पर पूर्ण नियन्त्रण की अवस्था में जीव को शरीर का त्याग करना पड़ता है, क्यूँकि शरीर अब अशक्त हो चुका होता है, अब वह और चलने के योग्य नहीं। चेतना और मन के बीच के खेल का एक और चरण मन के नाम रहा। और चेतना पुन: अपने नियत व उपयुक्त मार्ग से चूक गई।

तंबाकू	१५-२०	मिनटों की खुशी।
शराब	२-३	घंटों की खुशी।
LSD	२-३	दिनों की खुशी।

आंतरिक यात्रा के चरण

प्रथम चरण :

द्वितीय चरण :

तृतीय चरण :

चतुर्थ चरण :

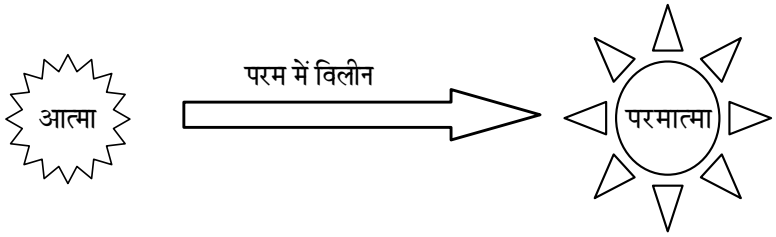

जीवन विचारों द्वारा निर्मित है अर्थात मन के द्वारा

मनुष्य का पूरा जीवन ही विचारों का अभिव्यक्ति है। मनुष्य के सारे कर्म भी विचारों की अभिव्यक्ति हैं। जब तक कि उसे सत्य का बोध न हो जाये या फिर वह पूर्ण समर्पित न हो जाये, तब तक विचार ही सभी क्रियाओं के पीछे का कारण हैं। मन में विचारों के उत्पन्न होने के कारण ही उन्हें पूर्ण करने हेतु विभिन्न उपाय बुद्धि में आते हैं और वे विचार ही अन्ततः कर्म मे परिवर्तित हो जाते हैं। शुरूआत से लेकर ज्ञान प्राप्ति तक, मनुष्य सिर्फ इच्छाओं के पीछे ही भागता रहता है। ये इच्छायें उसे कभी परिवार से मिलती हैं कभी समाज से, कभी विचारधारा से और कभी धर्म से। परन्तु इन विचारों का और इच्छाओं का सतत् चक्र मन मे चलता रहता है। शायद ही कोई वक्त बीते कि मन में कोई इच्छा न उठे, कोई विचार न आये। कुछ विचारों की पूर्ति हेतु पूरा-पूरा जन्म और कभी-कभी कई जन्म बीत जाते हैं। एक इच्छा जो बचपन में प्रकट हुई, जवानी में भी पूर्ण न हुई और बुढ़ापे में मलाल रह गया कि अभी भी अपूर्ण है। ये सारा का सारा जीवन ही तो इच्छाओं की प्रयोगशाला है। जिसमें इच्छायें उदित होती रहती हैं, विचार चलते रहतें है और मनुष्य कर्म बन्धन में और बंधता ही चला जाता है। कोई छोटी सी छोटी इच्छा, बच्चे का मिठाई के लिये मचल जाना, माता-पिता का अपना घर होने की इच्छा मन में रखना, बड़े भाई का अपना पढ़ाई पूरी करना, पढ़ाई पूरी कर एक अच्छी नौकरी मिल जाये, एक अच्छा व्यवसाय हो जाये।

जो इच्छा बचपन से पूर्ण न हो पायी, माता-पिता जो कर न सके तो जब मै स्वयं धन कमानें लगूँ तो उन इच्छाओं को पूर्ण कर लूँ। माता-पिता की इच्छा कि ये बच्चे अच्छी शिक्षा पा जाते और परीक्षा में अच्छे नम्बर ले आते, किसी अच्छे कॉलेज में दाखिला मिल जाता। ये एक्जामिनेशन क्रैक कर लेता, फिर तो भविष्य उज्ज्वल ही उज्ज्वल है। परन्तु इन सब बातों के बाद भी इच्छायें पूर्ण नही होती। अच्छे कालेज में एड्मिशन लेने के बाद अच्छी नौकरी भी मिल जाती, नौकरी मिली है तो स्थिरता भी मिल जाती, स्थिरता मिली तो एक अच्छी लड़की या लड़का भी मिल जाता। लड़का/लड़की में बनीं तो ठीक, नहीं तो फिर इच्छायें कि ये सम्बन्ध ठीक हो जाता, किसी को कष्ट न होता।

एक के बाद एक इच्छा, इच्छा से जुड़े कर्म, कर्म से जुड़े कर्मफल। कृष्ण ने कहा कि तू अपना कर्म करता चल और इस शरीर रूपी क्षेत्र में समय-समय पर तुझे जो फल मिलने होंगे वो स्वत: ही मिल जायेंगे। बस जो भी कर्म करता है मुझे अर्पित करता चल और अर्पित भी इसलिए कर देना, अर्पित करने से पहले ये बात जान लेना कि ये जो कुछ भी तेरे आस-पास दिखाई देता है, वो सब मेरा ही बनाया हुआ है। मैने ही तुझे हवा दी, अन्न दिया, फल दिये, रहने को जगह दी, धरती दी, आकाश दिया, बस इस बात को जानकर थोड़ा धन्यवाद दे देना। इस्तेमाल तो तू खुद ही करेगा बस ये मुँह से कह देना कि हाँ मैने आपको समर्पित कर दिया, मैं इसमें ही खुश हो जाऊँगा।

वास्तव में इच्छायें तो अपरिमित है परन्तु उन अपरिमित इच्छाओ का पूर्ण होना भी आवश्यक है। कोई एक इच्छा दमित न रह जाये। पराचेतना में कहीं अटक न जाये। जो कुछ जानने, देखने और समझने और पाने की इच्छा है क्यों न उसे पूर्ण कर लिया जाये, पूर्ण करके उसके पार जाने का रास्ता ढूँढ़ लिया जाये। जब भूख लगती है तो हम उसे दबा नहीं देते क्योंकि अगर दबा देगें तो भूख फिर जोर से उठेगी, बार-बार याद दिलायेगी कि मैं हूँ! यहाँ पर कुछ आवश्यकता है जो पूर्ण नहीं हो पा रही है। भूख को दबा नहीं देना बल्कि सबसे अच्छा उपाय है भूख को समाप्त कर देना, भोजन कर लेना क्योंकि जैसे ही भोजन किया यह विषय भी शान्त। अब आगे का कार्य करने के लिये व्यक्ति स्वतन्त्र। हर वो इच्छा, जो सहज रूप से पूर्ण की जा सके, क्यों न उसे जान ही लिया जाये। क्यों न श्रम लगाकर, कुछ चेष्टा कर उसे पूर्ण ही कर लिया जाये। ग्रन्थि बनने के लिए उसे पराचेतना में क्यों छोड़ दिया जाये?

जब पढ़ने की इच्छा थी और पढ़ाई पूरी कर ली, तब एक समय आया कि बहुत हो गया, अब पढ़ लिया जो पढ़ना था, अगला चरण अब नौकरी होगी, व्यवसाय होगा, धन अर्जन करना है, परिवार चलाना है। यदि पढ़ाई की इच्छा शुरूआत में ही पूर्ण न होती तो यह दूसरा चरण आता कहाँ से? तो बेहतर है कि इच्छाओं से भागे नहीं, जहाँ तक सम्भव हो उन्हें पूर्ण ही कर लें। किसी कारण से वे इच्छायें जो पूर्ण न हो पायीं, समय आने पर इसका भी बोध हो जायेगा कि

क्या कारण था इसके अपूर्ण रह जाने में? तब वह बंधी इच्छा भी विलुप्त हो जायेगी और इन्हीं इच्छाओं के पूर्ण होने से आपके आन्तरिक पथ का मार्ग भी सुगम हो जायेगा क्योंकि तब कुछ छोड़ के नहीं आना होगा, पूर्णता में आना होगा। छोड़ना भी पड़ा तो पूर्णत: ही छोड़ना होगा, पाकर छोड़ना होगा। पाकर त्याग देने में दुख नहीं, परन्तु प्रदान करने का एक सुख है।

बुद्ध ने यह बात स्वीकार कर ली कि इच्छा थी, पूर्ण हुई, पा लिया और अब इसे छोड़ने का वक्त है तो वो भी कुछ ज्यादा अड़चने न पैदा करेगी। जब प्रकाश की तरफ यात्रा प्रारम्भ होगी, प्रकाश स्वत: ही अंधेरे को कोने-कोने से खोजकर निकाल देता है, अंधेरे का अस्तित्व भी कोने-कोने से विलुप्त होने लगता है। कुछ इच्छाएँ जो पूर्ण ना भी हुईं प्रकाश की उपस्थिति होने के पश्चात ये भी ज्ञात हो जायेगा कि क्यों न पूर्ण हुईं? न पूर्ण होने मे शायद ज्यादा भला था क्योंकि अगर पूर्ण हो जाती तो तुम और गहरे डूब जाते। उस झंझावत में तुम्हें बचाने के लिए इस एक इच्छा की पूर्ति ईश्वर ने रोक दी क्योंकि तुम्हें किसी दूसरे मार्ग पर भेजना था। कुछ और बाकी था, जो कहीं ज्यादा जरूरी था। कोई मार्ग था जो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है और यदि तुमने मुख्य मार्ग पकड़ लिया होता तो शायद इस इस छुपी गली से कहीं दूर से निकल गये होते। फिर न जाने कि कब इस गली से वास्ता पड़े।

उचित समय आने पर यह भी ज्ञात हो जायेगा कि यदि कुछ अपूर्ण रह गया तो उस अपूर्णता में एक पूर्णता छुपी है। वह पूर्णता जिसकी तुम्हें ज्यादा जरूरत है क्योंकि वह स्थिति तो तुमने पा ली जो तुमने सोची भी न थी। अत: अब दूसरो को उनके मार्ग पर चलने दो, उन्हें उनकी यात्रा तय करने दो, तुम्हारे लिये ईश्वर ने एक मार्ग रख छोड़ा है और परिस्थितियाँ तुम्हें पूरा संदेश दे रही हैं, तुम्हें उस ओर ढकेलने की कोशिश कर रही हैं, बस आवश्यकता है तो इस बारे में जागृत होने की। अत: इच्छाओं से भागों मत क्योंकि उक्त इच्छाओं की पूर्णता भी कुछ अनुभव ले आती हैं, कुछ खट्टे कुछ मीठे अनुभव, जो आगे की यात्रा में सहायक हो सकते हैं।

किसी के द्वारा कहे गये कटु वचन, मन में विचारों का एक द्वंद पैदा कर सकतें हैं। विचारों की एक तरंग उत्पन्न हो सकती है, जिसका प्रभाव कुछ समय तक रह सकता है। इससे मुक्त होने के लिए ध्यान में बैठों तथा ये जो विचार उत्पन्न हो रहें हैं, इन्हें भी आध्यात्मिक अग्नि में हवन कर दें। इस ऊर्जा को व्यर्थ न जाने दें किसी भी प्रकार की ऊर्जा चाहे वो वैचारिक हो और चाहे द्वन्दात्मक सभी ऊजाओं का हवन आध्यात्मिक यज्ञ में किया जा सकता है, इस प्रकार उस ऊर्जा का सदुपयोग सम्भव है।

चेतना

चेतना जितनी अपनी केन्द्र के निकट आती जायेगी, मन रूपी असत्य के नश्वर प्रभाव उस पर कम होते जायेंगे। आत्मा के गुणों की अधिकता बढ़ने के कारण, वह स्वयं को सत्य रूप में अनुभव करने लगेगी। विचारों का प्रवाह घटने लगेगा क्योंकि विचारों का प्रवाह सिर्फ बौद्धिक स्तर पर है। आत्मा के स्तर पर विचारो की आवश्यकता नही, उथल-पुथल शान्त होती जायेगी। अतीत और भविष्य विलुप्त होते जायेंगे, बचेगा तो सिर्फ वर्तमान, यह क्षण और एक नीरव शान्ति।

❖❖

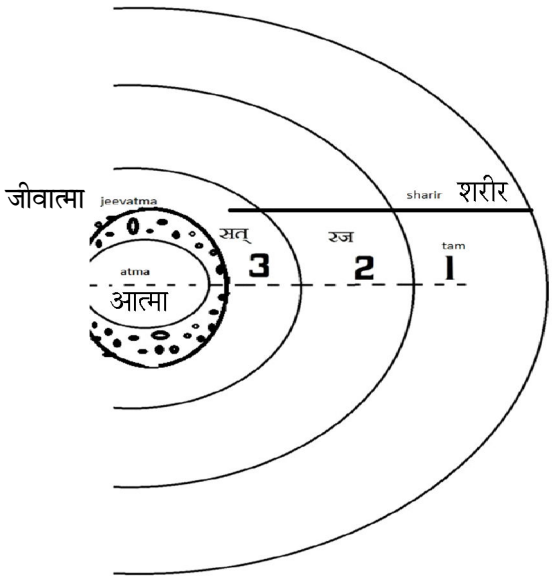

सर्मपण की आवश्यकता, समर्पण अर्थात् प्रेम

क्या सुन्दर मार्ग है भक्ति! जिसकी शुरूआत होती है जानने से, पहचानने से, मांगने से, समझने से, समय साथ बिताने से, बताने से, समझाने से, कीर्तन से, भजन से, सत्संग से, चर्चा से, आदर से, सम्मान से, दूरी से, भय से, श्रृँगार से, भोग से, चढ़ावे से, दान से, यात्राओं से, परिक्रमा से, आरती से, प्रसाद से, और कुछ समय बाद ये बदल जाती है प्रेम में। न मांगना, न चाहना, न मेरा, न तेरा, सिर्फ सेवा, मिष्ठान्न का भोग और तब धीरे-धीरे प्रेम का वास्तविक अर्थ समझ में आने लगता है कि अब न मांगना है, और ना ही कुछ पाना है क्योंकि जो न मांगा था वो भी दे देना है, जो न सोचा था, उसके भी दर्शन हो गये, जो न कहा था, वो भी सुन लिया, जो न सोचा था, वो भी हो गया, अब माँगू तो क्या माँगू? अब बस सिर्फ प्रेम दो, अब किसी अन्य भौतिक वस्तु की आवश्यकता नहीं क्योंकि अब तो सम्बन्ध बन गया प्रेम का। अब मुझे ध्यान रखना है आपका, अब मुझे ये सोचना है उपयुक्त समय पर आपने भोजन किया कि नहीं, सुबह उठके मैने आपको याद किया या नहीं, जब कभी मन में पुकार उठी, मै उस समय पहुँच गया कि नहीं, अब बस आपके दर्शन, आपकी मुस्कान भले ही वो प्रतिमा के रूप में स्थित हो। अब आप मुझे एक शरीर रूप में दर्शन दें या ना दें, अब उसकी भी आवश्यकता नहीं। अब मुझे इस प्रतिमा से और प्रतिमा की मुस्कान से ही प्रेम हो चला है।

मुझे पता है कि जब इस प्रकार आप मुस्कुराते हो तो अवश्य मन में कहीं न कहीं हर्ष हुआ होगा मुझे देखकर, मुझे सामने पाकर, मन में कहीं न कहीं ये बात रही होगी कि आ जाता तो कम से कम मिलना तो हो जाता। देखूँ मुझे याद करता है कि नहीं करता और आने के बाद मिलने के बाद, कुछ और भले हो न हो लेकिन अद्वितीय मुस्कान जो आपके अधरों पे फैल जाती है, वही मेरा सब कुछ पाना है। इसी मुस्कान को देखने के लिए इतनी दूर से मन्दिर चला आता हूँ। ये प्रताप है, आपका आशीर्वाद है कि अब जाकर कहीं मुझे प्रेम का वास्तविक अर्थ, जो कभी बाल्य-काल में मुझे बड़े बूढ़ों से मिला था, कुछ-कुछ समझ में आता है। जब बिना मांगे ही सारी चीजें प्राप्त हो जाती थीं। उस प्रेम की वर्षा, प्रेम के दर्शन और उसकी समझ, अब कुछ-कुछ आने लगी है।

अब हृदय प्रेम से भरने लगा है, जब किसी बच्चे को देखता हूँ तो उसमें और अपने बच्चे में कुछ अन्तर नहीं समझ में आता है, उसमें भी उतना ही प्रेम उमड़ता है। जब किसी असहाय को देखूँ तो लगता है कि इसकी सहायता भी हो जानी चाहिए क्योंकि आपने पहले ही बहुत कुछ दे रखा है और उसमें से निकाल कर थोड़ा बहुत दे भी दूँगा तो कुछ अन्तर न पड़ेगा। वास्तव में जो प्रेम मुझे आपने दिया, उससे हृदय इतना भर चुका है कि अब ये प्रेम दूसरों में बांट देने को मन करता है और किसी ने क्या सुन्दर बात कही है कि वो प्रेम, जो तुम्हें कहीं भी किसी से मिला, वह वास्तव में ईश्वर का ही प्रेम था, जब प्रेम को जाना तो यह बात कितनी सत्य प्रतीत हुई क्योंकि प्रेम का प्रवाह सदैव भीतर से बाहर की ओर होता है। सारा प्रवाह जो बाहर से भीतर की ओर आता है, वो कृत्रिम हो सकता है परन्तु वह प्रवाह जो भीतर से बाहर की ओर होता है, उसका मूल स्त्रोत परमेश्वर ही होता है।

अब ये बात समझ में आयी कि वह प्रेम जो कभी मिला, प्रवाहित हुआ, आपने ही देना चाहा मुझे, बस माध्यम का चुनाव किया। अब जो ये प्रेम हृदय में भरने लगा है, उमड़ने लगा है, छलकने लगा है, इसे जरूर दूसरों में वितरित करना आवश्यक है इसे फैल जाना चाहिए, इसे रूकना नहीं चाहिए क्योंकि सृष्टि और जीवन के प्रवाह की तरह ही, प्रेम का प्रवाह भी सतत है। यदि यह मुझे प्राप्त हुआ है तो अवश्य इसे आगे की ओर बढ़ जाना चाहिए, बढ़ना ही होगा। वे सभी जाने-अनजाने मित्र, जो कभी मिले मुझसे, उन्हें भी उस प्रेम का कुछ न कुछ अंश अवश्य प्राप्त हो जाये, तब जाकर इस प्रेम की पूर्णता सिद्ध हो पायेगी।

यह प्रवाह जो मुझ तक पहुँचा इसके आगे बढ़ जाने में ही मेरी सार्थकता है यह निश्चय ही रूक तो नहीं पायेगा, बहना तो इसे होगा ही और यदि यह प्राप्त हुआ है, तो सिर्फ इसलिए प्राप्त हुआ कि अब ये प्रेम आगे की ओर प्रवाहित हो जाए क्योंकि यह प्रेम गंगा की तरह अविरल है उसे वाह्य माध्यम से भले ही बाँध बनाकर रोक लिया जाये परन्तु इसका मूल स्वभाव बहना और इसकी अविरलता ही है। रूकने में इसका कोई ध्येय नहीं, कोई सार्थकता नही और इस प्रेम के साथ ही भक्ति अपने अगले चरण की ओर बढ़ जाती है, जिसे समर्पण कहते हैं।

आपने इतना कुछ दिया, जीवन की हर वो भौतिक वस्तु दी जिसकी आवश्यकता मुझे हो भी सकती थी परन्तु साथ-साथ उन चीजों को देने में आपने कभी भी कोताही न बरती जिनकी शायद मुझे आवश्यकता न थी। आपने जो दिया वो खुले प्रवाह, बौछार की तरह और अब ये प्रेम के तल पर आ पहुँचा है, जब अप्राप्य प्राप्त हो ही गया तो अब मेरे समर्पण में कौन सी बाधा शेष बची है। जब सब कुछ करने वाला एक मात्र परमेश्वर ही है तो मैं क्यों न पूर्ण रूप से समर्पित हो जाऊँ? जो मैं सोच रहा हूँ या जो मैं सोचता हूँ अपने लिए, परिवार के लिए, आज से अब आप सोचिये! मेरे लिए क्या भला-क्या बुरा? मुझे क्या चाहिए, भविष्य में मुझे किस चीज की आवश्यकता पड़ सकती है? आप जानिए। क्योंकि आपने ही बनाया मुझे, मुझे खुद से ज्यादा अच्छे तरीके से आप समझ सकते हैं।

अब ये प्रश्न भी मैने आपको समर्पित कर दिया, उत्तर अब आपके हाथ में। अब मुझे प्रश्नों में भी कोई रूचि नहीं, अब जो प्राप्त होता रहेगा, बस वो मेरे लिए पर्याप्त होगा और जब आप सोचेंगे तो मुझसे कहीं ज्यादा सुन्दर ही सोचेंगे। क्योंकि मेरी दृष्टि बहुत छोटी है, बहुत कम देखा है मैंने आज तक, अपने आस-पास की ही चीजें देखीं या कभी-कभी कुछ बाहर की चीजें, लेकिन आप सर्वज्ञाता हैं। तो क्यों न इस भार को मेरे लिए अब आप ही उठायें, अब आप ही जानिए, मैं तो बस आपके साथ प्रवाह मे बहनें का आनन्द लेना चाहता हूँ। समर्पण के साथ वे अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं जो कभी-कभी दिव्य लगती हैं, वे संकेत मिलने लगते हैं, जो आध्यात्मिक प्रगति के लिए कितने आवश्यक थे। एक गुरू भी न ढूँढ़ पाया अपने लिए, गृहस्थी में ही व्यस्त रह गया, अब आप ही हो मेरे गुरू, अब आप ही रास्ता दिखाइये क्योंकि मैं तो चल पड़ा इस पथ पर। इस पथ का भी कुछ ज्ञान नहीं मुझे, अब जिधर-जिधर आप बोलते जायेंगे, उस ओर मैं बढ़ता चला जाऊँगा। ये पथ आपका ही पथ है, चलने वाला भी आपका ही है, तो आप ही इसका मार्गदर्शन कीजिए और इसी में समर्पण की दिव्यता है और इसी में मेरे होने की सार्थकता भी।

❖❖

स्वयं को न जान पाने का कारण मन का अहंकार

ईश्वर ने भी क्या सुन्दर रचना की सृष्टि की, जो भी सुन्दर, अप्रतिम, आकर्षक, सत्य है, उसको भीतर की ओर छुपाकर रखा और चारों ओर बुन दिया एक माया जाल। कितना घना, हमारे शरीर के चारो ओर फैला हुआ, विभिन्न सम्बन्धों के रूप में, विभिन्न कारणों के रूप में, विभिन्न स्थितियों के रूप में, विभिन्न अवसरों के रूप में और सबसे बढ़कर विभिन्न विचारों के रूप में, जो कभी शान्त ही नहीं होते। चारों ओर कोयला ही कोयला और कोयले के मध्य में छिपाकर रख दिया हीरे।

ईश्वर कहते हैं, जितना भी बटोर लो, जितना भी एकत्र कर लो, कुछ मूल्य पर उसे बेच भी दो, कुछ नश्वर अट्टालिकायें बना लो, कुछ नश्वर सम्बन्ध बना लो, अपने चारों ओर एक अहंकार का निर्माण कर लो, एक अभिमान का जाल बुन लो, उलझते जाओ और ये सारे उलझनें मैं तुम्हें देता हूँ, सारे भटकाव तुम्हें देता हूँ, ये सारी भूल-भुलइया तुम्हें देता हूँ अब तुम चाहो तो इसमें घूमते रहो, उन चीजों को पाने की कोशिश करते रहो, जो एक न एक दिन तुम्हारे हाथ से छूट ही जानी है।

उन इमारतों को बना लो जो एक न एक दिन टूट ही जानी हैं और ना टूटी तो एक दिन तुम उन्हें छोड़कर आगे की यात्रा के लिए बढ़ जाओगे। एकत्र कर लो धन को परन्तु ये भी सदैव तुम्हारे साथ टिकने वाला नहीं है। जमा कर लो लोगों को अपने आस-पास, अपना प्रभाव बढ़ा लो, परन्तु उसका भी क्या लाभ? समय के साथ कभी न कभी प्रभाव समाप्त हो ही जायेगा। ये सूर्य भी अस्त हो ही जायेगा क्योंकि तब ही एक नया सूर्य उगेगा। तो ये अवश्य देख लो ये जितने भी जालें तुम अपने चारों ओर बुन रहे हो वे कितने दिन तुम्हारे साथ रहने वाले हैं? कितना उपभोग तुम उनका कर सकते हो? बाहरी तल पर ढूँढते रहो, कोयला ही कोयला मिलेगा, परन्तु हीरा चाहिए तो भीतर की ओर जाओ। कुछ मूल्यवान चाहिए तो भीतर की ओर जाओ।

अमृत चाहिए तो भीतर की ओर जाओ और इस अहंकार के उदय का दोष तुम मुझ पर मत देना क्योंकि हर मार्ग पर मैंने तुम्हें दो उपाय सुझाये थे, दो दरवाजे

खोले थे, परन्तु चुनाव तुम्हारा था। हर जगह, हर उस रास्ते पर, जब तुम जरा सा अटके, सोचने लगे कि किस दिशा में जाऊँ, हर दरवाजे पर दो रास्ते तुम्हें मिले। परन्तु किस दरवाजे में जाना है, इसका चुनाव सदैव तुम्हारा रहा और उस दरवाजे के पीछे चीजें कुछ छुपी हुई नहीं थीं, ये दरवाजे खुले हुए थे, स्पष्ट दिख रहे थे, इसके आगे का मार्ग भी कोहरे से ढका न था, एक आभास सदैव तुम्हें था कि ये आगे कहाँ तक जायेगा, किस दिशा में जायेगा, अवरूद्ध तो नहीं हो जायेगा? यह आभास तुम्हें दिया परन्तु चुनाव सदैव तुम्हारा था।

उसी प्रकार परम तत्व ने तुम्हें शरीर भी दिया शरीर के चारों ओर अत्यन्त लुभावनी वस्तुएँ भी दी, सुन्दर मनमोहक अप्रतिम वस्तुएँ, उन्हें देखने के लिए दृष्टि दी, उनका स्वाद लेने के लिए एक रसना दी, उनकी आवाज सुन लेने के लिए कान दिये, उन्हें स्पर्श कर लेने के लिए त्वचा दी, मन में विचार भी चलते रहे सदा, परन्तु क्या कभी रूक के तुमने एक भी बार ये सोचा कि कुछ क्षणों के लिए ही सही, इन विचारों को रोक के तो देखूँ। इस परदे पर जो चलचित्र चल रहा है सदा, बिना रूके, एक बार इस चलचित्र को रोक कर के तो देखूँ। जिस पर्दे पर ये चल रहा है, उस परदे को तो एक बार देख लूँ और एक बार पास से, इसे छू तो लूँ, इसके पीछे झाँककर तो देख लूँ कि कहीं पीछे तो कुछ नहीं छुपा।

उस अंधेरे कमरे को टटोल लूँ, कुछ प्रकाश लेकर वहाँ भी प्रकाश कर दूँ, एक रोशनी की किरण है, उस तरफ तो देख लूँ, उस कमरे की कुछ सफाई ही कर लूँ, हो सकता है उन अलमारियों में मेरे लिए कुछ विशेष रख छोड़ा हो। ये परदा जो मुझे सदैव चलचित्र दिखाता है, इसकी सत्यता तो जाँच लूँ क्योंकि चलचित्र तो सदैव बदलते रहते हैं कुछ भी टिकता नहीं, आता है और जाता है, हर दिन हर क्षण कुछ नया ही दिखाई देता है और यदि कभी चलचित्र ठहर भी जाये और कभी ऊब भी जाएँ तब भी ये नहीं सोचते कि कुछ क्षणों के लिए इसे बन्द कर दूँ। देखूँ तो इस परदे पर जो छाया पड़ रही है, जो मुझे चित्र की भाँति समझ में आती है, इसका मूल स्त्रोत कहाँ है, कहाँ से आ रही है? सिनेमा में सभी लोग अपनी कुर्सी से बँधे, उस चलचित्र को तो देखते रहते हैं परन्तु उसमें से कितने, उस कमरे में जाकर उस मशीन को देखना चाहते हैं, जहाँ से ये पूरी पिक्चर चल रही है, यदि कोई नहीं कर रहा है तो तुम तो करो।

एक बार देख ही आओ, हो सकता है कि वहाँ पर तुम्हारे लिए कुछ उपयोगी रख छोड़ा हो। तुम उस चित्र को देखते ही रहते हो, वह आभासी चित्र, लेकिन उस स्रोत की तरफ नहीं जाते और इसी चलचित्र में खोये रहने के कारण तुम इसके स्रोत को न जान पाए। ठीक उसी प्रकार ये जो आभासी दुनिया का चलचित्र चल रहा है, यह विचार जो मन में घुमड़-घुमड़ कर आते हैं, कुछ पलों के लिए इन्हें रोक लो इन विचारों के पार जाकर तो देखों वहाँ पर अवश्य तुम्हें बहुत कुछ मिलेगा। वहाँ पे कई सुन्दर अनुभूतियाँ रखी हैं, ढूँढ़ लिए जाने के लिए। बस प्रयास तुम्हें ही करना होगा।

जीवन में कुछ पल ठहर के, खुद के इन विचारों के पीछे जाकर एक बार झाँक लो और यदि तुम झाँक लेते तो वास्तव में तुम्हें पता चल जाता कि तुम हो कौन? तुम खोये तो हो इन सारी वाह्य भौतिक वस्तुओं में, परन्तु इस भुलावे में स्वयं की खोज थोड़ी देर के लिए कर लिया करो। कुछ क्षण निकाल कर, अपने विचारों के पार जाकर, उनको विश्राम देकर, यदि तुम एक बार झाँक भी लेते तो अपनीं स्वयं की एक झलक तुम्हें मिल ही जाती और शायद वहीं से एक और यात्रा प्रारम्भ हो जाती।

ये जो इन्द्रियाँ तुम्हारे साथ में हैं एक बार सोच के तो देखो यदि ये काम न करें, तुम देख न पाओ तो वाह्य जगत से अपना सम्पर्क कैसे बनाकर रखोगे? खुद के भीतर जाने के लिए आपको इन इन्द्रियों की भी कोई आवश्यकता नहीं। इससे पहले कि इन्द्रियाँ आपसे दूर जाएँ, आप इन्द्रियों से स्वयं को दूर करने के प्रयोग कर लीजिये। यदि आज तक ये न कर पाए, तो कुछ क्षण इसके लिए अवश्य निकालना प्रारम्भ करो। अपने मन को कुछ क्षण के लिए स्थिर करो, उसे विराम दो और विराम देने के पश्चात ढूँढो, सुनो, देखो, स्पर्श करो, महसूस करो और चाहो तो स्वाद भी ले सकते हो परन्तु ये सब तुम्हारे लिए विचारशून्यता ही कर देगी, मौन ही कर देगा, ध्यान ही कर देगा। जीवन में इतना कुछ करके देखा, इसे भी तो करके देख लो और जो आगे प्राप्त हो सकता है, उसकी झलक भी किसी न किसी दिन अवश्य मिल ही जायेगी।

यंत्र को उपयुक्त व समर्थ रखने का उपाय
आसन व प्राणायाम

गीता में श्रीकृष्ण ने इस शरीर के रहस्य पर से भी परदा हटा दिया। उन्होंने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा कर दी कि ये मत समझ लेना कि तुम ये शरीर हो, ये शरीर तो सिर्फ एक यन्त्र है, एक वाहन। इस जगत में आने के लिए एक वाहन की आवश्यकता होगी, एक शरीर लेना ही पड़ेगा, इस शरीर को अपना अस्तित्व समझने की भूल न कर लेना। ये मत मानने लगना कि तुम ये शरीर हो। वास्तव में इसके अन्दर स्थित तुम एक आत्मा हो जो ह्रदय में वास करती है और यदि इन बातों की अनुभूति करनी है तो ध्यान मे उतरो।

इस शरीर की आवश्यकता तुम्हें इस वाह्य जगत और साथ ही साथ आन्तरिक जगत के अपने कार्य सिद्ध करने में होगी, अत: इस यन्त्र का रख-रखाव भी तुम्हारी जिम्मेदारी है। इसे मन्दिर की तरह मान लेना, जिसके अन्दर तुम्हारे आराध्य हैं। तुम अपनी आन्तरिक यात्राएँ, स्वयं को पहचानने की यात्रा भी सुगमता पूर्वक पूर्ण कर सको, इसके लिए इस यन्त्र की सुरक्षा और इसका रख-रखाव भी तुम्हारी जिम्मेदारी है। इसके लिए वेदों ने योग और प्राणायाम की रचना की। योग को परिभाषित करते हुए श्रीकृष्ण ने बताया कि योग का वास्तविक अर्थ है अप्राप्य की प्राप्ति।

अन्य ऋषियों ने योग के बारे में अपने अनुभव को बताते हुए कहा कि योग का तात्पर्य है जुड़ना, जीवात्मा का परमात्मा से यह योग सुगमता पूर्वक हो सके इसके लिए प्राणायाम और आसनों की रचना की गई ताकि यह यात्रा अपनी पूर्णता की ओर अग्रसर हो सके। आसन, वे सारे व्यायाम हैं जिससे इस शरीर के क्षरण की गति को धीमा किया जा सकता है ताकि आपको वह समयावधि प्राप्त हो जाये जिसमें आप अपनी कार्य सिद्धि कर सकें। शरीर के विभिन्न अंगों के लिए विभिन्न आसनों की रचना की गयी। साथ ही साथ में प्राणायाम को इसका मुख्य भाग बनाकर प्रस्तुत किया गया।

प्राणायाम का तात्पर्य है प्राण को आयाम देना अर्थात् श्वास जो प्राण हैं, उसे किस प्रकार दीर्घ किया जा सके ताकि इस यन्त्र को लम्बे समय तक सुरक्षित

अवस्था में रखा जा सके, कार्य योग्य बनाये रखा जा सके। प्राणायाम वास्तव में दो कार्य करते हैं, प्रथम प्राणों को आयाम देने का मुख्य कार्य तथा साथ ही साथ मन में उपस्थित विभिन्न विचारों और द्वंदों, क्रोध को श्वास के द्वारा शरीर से बाहर निकालकर, मन को शान्ति प्रदान करना।

प्राणायाम विचारों के थमने में अपना योगदान देते हैं ताकि विचारों को थामकर उसके पार जाने की प्रक्रिया सुगम की जा सके। वे व्यक्ति जो प्राणायाम करते हैं वास्तव में ध्यान मे ज्यादा सरलता से उतर सकते हैं क्योंकि ध्यान में उतरना तब सहज हो जाता है, जब मन शान्त हो, उसमें विचारों की तरंगे न उठ रही हों, ग्रन्थियाँ शरीर से बाहर निकल रही हों और शरीर स्वस्थ हो। योग को आसन मान लेना, यह दोनों के साथ अन्याय होगा क्योंकि योग तो वह क्रिया है जिससे अप्राप्य की प्राप्ति हो जाये, आत्मा पुन: सुगमता के साथ परमात्मा की ओर गमन कर जाये और यह कार्य सिद्ध हो सके। इसके लिए आसन इस यंत्रवत शरीर को सुचारू रूप से चलाये रखने में अपना योगदान देते हैं। साथ-साथ प्राणायाम मन को थामने में और प्राणों को आयाम देने में अपना कार्य पूर्ण करता है।

आन्तरिक यात्रा पर जाने हेतु आपको स्वयं को विचारों से बिल्कुल अलग कर लेना होगा क्योंकि विचार सिर्फ वाह्य जगत में ही उपयोगी अथवा अनुपयोगी हो सकते हैं। आन्तरिक जगत में विचारों का कोई स्थान नहीं क्योंकि आत्मा एक विचार न होकर सत्य है। जैसे-जैसे मस्तिष्क विचारों से शून्य होता जाता है वैसे-वैसे यह ब्रह्माण्डीय सूचनाओं के ग्राही के रूप में कार्य करने लगता है। वे सूचनायें जो आपके लिए ईश्वर प्रदत्त हैं उनका उपयोग सम्पूर्ण सृष्टि के आधारभूत तत्व को समझने में किया जा सकता है।

❖❖

अनुभव और अनुभूतियाँ

प्राणायाम वाह्य जगत और आन्तरिक जगत के बीच सेतु का कार्य करता है, जिसके माध्यम से वाह्य जगत से आन्तरिक जगत की ओर गमन सुलभ हो जाता है। ये ध्यान के लिए पृष्ठभूमि तथा आधार तैयार करता है। ध्यान में उतरने की पहली शर्त ही यही है कि मन में विचार रूपी कचरे को एकत्र कर बाहर जाने वाली श्वाँस के साथ निकाल दिया जाये। मन की आन्तरिक सफाई हो जाये और प्राणायाम आपके लिए यही कार्य करता है, बाहर जाने वाली श्वाँस के साथ समस्त विचार व उससे सम्बन्धित ग्रन्थियाँ भी बाहर चली जाती है और इस प्रकार एक भूमिका तैयार हो जाती है अन्तस प्रवेश हेतु। आसन, ध्यान रूपी प्रयोगों को पूर्ण करने हेतु, शरीर रूपी यंत्र के आन्तरिक रख-रखाव का कार्य करते हैं। जिस प्रकार एक वाहन के रख-रखाव और आन्तरिक सफाई के द्वारा उसकी कार्य क्षमता बढ़ाई जा सकती है ठीक उसी प्रकार आसन भी ध्यान रूपी प्रयोगों को पूर्ण करने हेतु शरीर को एक यन्त्र के रूप में तैयार कर देते हैं।

आसन और प्राणायाम का मुख्य कार्य ध्यान के घटित होने में सहायता करना है। वाह्य जगत सिर्फ विचारों की परिणति है और आन्तरिक जगत विचारों से बिल्कुल शून्य, ये एक ही धरती के दो ध्रुव हैं जो एक दूसरे से कभी नहीं मिल सकते। आन्तरिक जगत विचारों से बिल्कुल अलग होगा, मौन और एकान्त इसके साधन हैं।

मौन

महर्षि रमन ने मौन पर विशेष बल दिया, उन्होंने कहा कि शुरूआत मौन से करो और तब तुम पहुँचते-पहुँचते विचारों की समाप्ति, उनके शान्त होने के तल पर पहुँच पाओगे।

सत्यान्वेशियों ने इसी कारण हिमालय की शरण ली क्योंकि उससे शान्त और एकान्त जगह उन्हें कहाँ प्राप्त होती? एकान्त में कम से कम दूसरों के विचारों से तो न लड़ना होगा, लड़ाई होगी तो सिर्फ स्वयं के विचारों से। वे विचार जो बाहर से भीतर की तरफ आते हैं, उनकी आवश्यकता और उनकी उपयोगिता समाप्त हो जायेगी।

मौन का मुख्य कारण वाह्य वैचारिक उद्दीपनों पर अपनी प्रतिक्रिया देने से बचना है। वह व्यक्ति जो मौन का सेवन करता है, वह जानता है कि वैचारिक उद्दीपन सिर्फ वाह्य और वैचारिक तल पर ही स्थित हैं, वास्तव में वे यथार्थ नहीं वे सत्य नहीं और जो सत्य न हो उसके फेर में ही क्यों पड़ें? अपनी प्रतिक्रिया देकर अपने विचारों की श्रृंखला को क्यों उत्पन्न करना? तुम्हारे विचार तुम्हारी समस्या, उन्हें मेरी समस्या मत बनाओ। अपने विचारों से तुम परेशान हो तो तुम्हें स्वयं उनसे निपटना होगा क्योंकि मैं स्वयं अपने विचारों से दूर जा रहा हूँ।

सभी जाग्रत पुरूषों की वाणी में एक समानता प्राप्त होगी, कहीं न कहीं उनके सारे कथनों का तात्पर्य है कि विचारों से दूर जाओ, तब तुम्हें अपने उत्तर भी विचार स्वरूप में नहीं मिलेंगे। वे तुम्हें अनुभूतियों के रूप में मिलेंगे क्योंकि विचार गलत हो सकते हैं परन्तु अनुभूतियाँ सत्य और इन अनुभूतियों के बीच चलते-चलते तुम उस परम सत्य को एक दिन पा लोगे। अनुभव और अनुभूतियों मे एक विशेष अन्तर है कि अनुभव वैचारिक तल पर है और अनुभूतियाँ ब्रह्माण्डिय तल पर। यह कारण है कि अनुभव की अपेक्षा अनुभूतियाँ कही ज्यादा सत्य हैं, वे अपूर्ण तो हो सकती हैं परन्तु पूर्णत: असत्य नहीं। वे सत्य का एक अंश तो हो सकती हैं परन्तु असत्यता से उनका कोई वास्ता नहीं।

विचारों के तल पर असमानता, ऊँच-नीच, भेद-भाव, छोटा-बड़ा, स्त्री-पुरूष, सभी कुछ उपस्थित हैं, परन्तु विचारों के तल के उस पार, जहाँ पर विचार समाप्त हो जायें, उनकी सीमा समाप्त हो जाए, अब उनके आगे विचार न बढ़ पाये, उस सीमा के पार सिर्फ समानता है, कोई भेद नहीं, कोई अन्तर नहीं, न स्त्री में न पुरूष में, न छोटे में और न बड़े में, न बलवान में व ना ही निर्बल में, एक सुन्दर समानता। इसलिए कृष्ण ने कहा ध्यान मग्न हो जाओ क्योंकि ध्यान तुम्हारे विचारों की गति को क्षीणकर या रोककर, तुम्हें उस समानता का स्वाद दे सकता है ।

कृष्ण ने इस स्थिति का वर्णन करते हुए कहा कि तुम्हारी दृष्टि में एक ज्ञानी पुरूष में श्वान अर्थात कुत्ता, एक चांडाल और एक वृक्ष में कोई भेद न हो सभी तुम्हारे लिए एक समान एक स्तर पर हों ।

जब आन्तरिक आध्यात्मिक ऊर्जा सहस्त्रार तक पहुँचती है तो सहस्त्र कमलदल खिल जाता है और इसके खिलने से सभी प्रकार के सुक्ष्म जन्तु जो अपनी निम्न योनियों में निवास कर रहें हैं वे सभी आकर उपस्थित पराग का सेवन कर सकते हैं इस सहस्त्र कमल दल की सुन्दरता जीवों को अपनी ओर आकर्षित करेगी। वे इसके पास आकर इसे जानना चाहेंगे इसे देखना चाहेंगे समझना चाहेंगे कि यह विशेषता क्यों हैं?

जितनी आध्यात्मिक ऊर्जा इसकी ओर बहती जायेगी, यह सहस्त्र कमल दल उतना ही खिलता जायेगा। इसकी सुगन्ध चारों ओर फैलने लगेगी यह मुख्यत: आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रवाह शरीर से बाहर निकलने का रास्ता है। आध्यात्मिक ऊर्जा इस सहस्त्र कमल दल को खिला देती है जिससे यह सुगन्ध, सुन्दरता और पराग उत्पन्न करता है जिससे सभी प्रकार के जीव इसकी सुगन्ध के प्रभाव में आकर इसकी सुन्दरता का, इसके रस का और इसकी सुगन्ध का लाभ उठा सकते हैं । आज्ञा चक्र मुख्यत: अनुभूति और ज्ञान का केन्द्र है विभिन्न ब्रह्माण्डिय अनुभूतियाँ और संदेश इसी के माध्यम से प्राप्त होते हैं।

इस कमल की सुन्दरता, सुगन्ध और इसमें उपस्थित रस जितना फैलता जाता है, ये सहस्त्रार उतना ही खिलता चला जायेगा इसीलिए इसे सहस्त्र कमल दल कहा गया है। समय के साथ-साथ आध्यात्मिक ऊर्जा के प्रवाह के साथ इसका एक-एक पंख खिलता जायेगा क्योंकि इसमें सहस्त्र पंखुडियाँ हैं। जागृत पुरूष के

जीवन काल में यह धीरे-धीरे करके खिलते चले जायेंगे, बस इसमें ऊर्जा को प्रवाहित रखना होगा। आज्ञाचक्र मुख्यत: आन्तरिक दृष्टि का केन्द्र है। वह दृष्टि, जो सृष्टि के अन्तरतम रहस्यों को आपकी ओर खोल देती है और जिन रहस्यों को जानने के पश्चात ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। जो विचाररूपी अन्धकार चारों ओर छाया हुआ है, वो छँटने लगता है और इसी के साथ आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रवाह सहस्त्र कमल दल की ओर बढ़ जाता है।

❖❖

ज्ञान प्राप्ति के साथ है विचारों से मुक्ति ताकि ब्रह्म कार्य को सुगमता से सम्पन्न किया जा सके

ज्ञान के अवतरित होने के साथ ही आनन्द भी निश्चित रूप से प्रकट होता है। ज्ञान के साथ सुख और दुख का रहना सम्भव नहीं क्योंकि आन्तरिक दृष्टि उपलब्ध होते ही इस बात का ज्ञान हो जाता है कि सुख और दुख दोनों ही अनित्य हैं और कोई भी अनित्य चीज सत्य नहीं हो सकती। हर सुख के साथ एक दुख भी जुड़ा है इसलिए दुख के साथ सुख का त्याग आवश्यक है क्योंकि यदि सुख आता है तो वह बिना दुख लिये नहीं आता। भले ही दुख कहीं छिपा रहे, उचित समय आने पर प्रकट हो लेकिन प्रकट होता ही है। इसलिए जागृत पुरूष कभी भी सुख और दुख के भ्रम में नही पड़ना चाहता क्योंकि वो इस बात को जान जाता है कि सुख और दुख दोनों ही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि सिक्का लिया है तो सुख और दुख दोनों ही मिलेंगे। सिक्का जीवन है और सुख और दुख इसके दो पक्ष और इसी के बीच में ये पूरा जीवन बीत जाता है।

ज्ञान का दूसरा स्वरूप ही आनन्द है। जब आकाश में छाये काले बादल छँट जायेंगे तो प्रकाश अवश्य प्रस्तुत होगा ही, उसी प्रकाश से आनन्द भी ज्ञान के साथ आयेगा। आनन्द के उपलब्ध होने का कारण ही यह है कि इस शरीर और इस शरीर के बुने हुए आभासी जाल को अब समझा जा चुका है। आन्तरिक तल पर हैं तो अनुभूतियाँ और भाव। ज्ञान की प्राप्ति का अर्थ है आज्ञाचक्र अब सक्रिय हो गया, आन्तरिक दृष्टि उपलब्ध हो गयी और जब ज्ञान की ऊर्जा प्रवाहित होगी, आन्तरिक दृष्टि के द्वारा मस्तिष्क की ओर। मस्तिष्क का वह भाग जो पूरे जीवन सुशुप्त ही पड़ा रहता है (पूरे मस्तिष्क का भाग २ से १० प्रतिशत ही उपयोग में लाया जा सकता है बाकी हिस्सा उपयोग में नहीं लाया जा सकता क्योंकि उसका विशेष कार्य इस प्रवाहित होने वाले ज्ञान को थामने के लिए ऊर्वरा भूमि प्रदान करना है) वह अब उपयोग हेतु प्रस्तुत है।

ज्ञान का प्रवाह और इससे सम्बन्धित ऊर्जा जो व्यक्ति के रूप में आध्यात्मिक ऊर्जा मिलती है, इसका प्रवाह आगे बढ़कर सहस्त्रार की ओर जो जाता है और सहस्त्रार का जागरण या जागृति होने लगती है। कोई भी व्यक्ति जिसे उस कमल

के उदित होने का आभास हो, जिसने उस कमल के कभी दर्शन किये हों, जो कभी उधर से गुजरा हो, जिसकी दृष्टि अनायास इस तरफ पड़ गयी हो, जिसने कभी वह वचन सुन लिये, जो जागृत व्यक्ति के कंठ से निकले या उसकी अनुभूतियों के वर्णन को जानने का अवसर मिला वह अनायास ही इस सहस्त्रार रूपी कमल की ओर आकर्षित हो जायेगा। ज्ञान बाँधकर नहीं रखा जा सकता है वो यदि उपस्थित हुआ है तो उसे आगे बढ़कर सहस्त्रार का भेदन करना ही होगा ताकि यह समस्त जगत के लिए उपलब्ध हो सके।

इसकी सुगन्ध सभी दिशाओं में वायु के प्रवाह के साथ फैल सके, इसकी उपस्थिति नैनों को एक शान्ति रूपी सुख प्रदान कर सकें और इसके पराग कणों से प्राणी कुछ मधु एकत्रित कर सकें और ये पराग उन सूक्ष्मजीवों के द्वारा अन्य पुष्पों में फैल जायें जो भविष्य में पुष्पित होंगे। ज्ञान को उपलब्ध हो जाने का अर्थ ही है आनंद को उपलब्ध हो जाना क्योंकि फिर विचारों की आपा-धापी आपको परेशान न करेगी। वैचारिक तल पर होने वाले उपद्रव से आपका कोई सम्बन्ध न रहेगा।

आप बाहर से प्राप्त सुख पर अपनी निर्भरता त्याग देंगे, अब आनन्द का प्रवाह भीतर से ही प्रारम्भ हो जायेगा और एक स्तर पर आने के बाद यह आनन्द भी संक्रमित होने लगेगा। जो कोई भी इसके सम्पर्क में आयेगा उसे भी निश्चित तौर पर उस आनन्द के कुछ पलों के दर्शन अवश्य हो जायेंगे। उसे भी कुछ आन्तरिक अनुभूतियाँ अवश्य प्राप्त होंगी और प्रकाश के उपलब्ध होते ही ये बात भी ज्ञात हो जायेगी कि वाह्य तल पर जितनी दुनियाँ देखी उससे कहीं बड़ा विश्व मेरे अन्दर ही समाया हुआ है। जिसके अभी एक-दो गाँव भी न देखे मैंने, जान लेने को, देख लेने को, समझ लेने को, अनुभूति कर लेने को, सुगन्ध प्राप्त कर लेने को, स्वाद ले लेने को, कितना कुछ बाकी है। वस्तुतः सब कुछ बाकी है सो बाहरी तल पर जब कभी लगे कि रास्ता बन्द हो गया तो आन्तरिक तल में एक कोशिश करके देख लेना अभी यहाँ के रास्ते तो खुले भी नहीं, द्वार तो अभी बन्द पड़े हैं।

इन द्वारों को प्रयत्न करके खोल लेना क्योंकि तब जो यात्रा प्रारम्भ होगी, वो वाह्य तलों के उपद्रवों और उनकी तरंगों से अछूती होगी। जहाँ सब कुछ शान्त सौम्य भाव में बहता रहेगा। जब बुद्ध से उनके आखिरी दिनों में आनन्द ने पूछा कि आप विगत ४५ वर्षों से बोलते आ रहें हैं, क्या आप सब कुछ बोल चुके हैं, या अभी भी कुछ बाकी है तो बुद्ध ने जमीन पर पड़े कुछ सूखे पत्ते उठाये और उनकी तरफ इशारे करते हुए कहा कि अभी तो सिर्फ इतना ही बोला है अभी यह पूरा जंगल बचा है जान लेने को, बता देने को। सहस्त्रार के सहस्त्रों कमल, पंखुड़ियाँ इस अपरिमित ज्ञान की ओर इशारा करती हैं जिसे जितना भी जान लिया जाये उतना ही कम है।

प्राचीन ऋषियों ने यदि सहस्त्रार चक्र का नाम, सहस्त्र पर रखा तो इसका आशय सिर्फ इतना ही था कि जैसे-जैसे अपने आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रयोग करके और ज्ञान के प्रवाह से मिलन करके एक-एक पंखुड़ी खोलते जाओगे तो एक नई पंखुड़ी फिर तैयार हो जायेगी जिसे खोलने की आवश्यकता होगी, जिसे जान लेने की आवश्यकता होगी, ज्ञान की प्राप्ति के साथ ही निश्चित तौर पर, अस्तित्व आपको कुछ कार्य सिद्धि हेतु भी प्रदान कर देता है ताकि आपके माध्यम से यह ज्योति जो प्रकट हुई इसे फैलाया जा सके। इसके प्रकाश को बाँटा जा सके, कुछ एक अंधकार भरी जगहों में इसके प्रकाश का उपयोग किया जा सके। अब आपकी उपयोगिता आपसे ज्यादा अस्तित्व की हो जाती है।

यदि एक दीपक है तो उसका धर्म है कि वह अपने आस-पास के अंधकार को अवश्य दूर करने का प्रयास करे, उसकी सार्थकता इसी प्रयास में है और उसकी उपस्थिति की पूर्णता, अपनी कार्य सिद्धि में। अब प्रकाश को फैलाना ही होगा, उसे एकत्र करके नहीं रखा जा सकता क्योंकि प्रकाश को कब तक बाँधोगे? वो मुट्ठी कहाँ से लाओगे, जो उसे कैद कर पाये, वो रस्सी कहाँ मिलेगी जो उसे बाँध पाये, यदि यह उपस्थित हुआ है तो यह फैलेगा ही और वस्तुत: अस्तित्व उस जागृत व्यक्ति से यही चाहता भी है क्योंकि इसी के साथ उसके शरीर प्राप्ति की उपयोगिता भी सिद्ध होगी।

ब्रह्म कार्य सिद्धि के साथ आप ब्रह्म के साथ आनन्द व परमपद के अधिकारी

ज्ञान प्रकाश का मार्ग है और जागृत व्यक्ति एक दीये के समान। दीये की उपयोगिता इस बात में है कि वह किस प्रकार अपने मध्य में बाती को धारण करे, ज्योति प्रज्ज्वलित हो और वह तेल की आखरी बूँद तक प्रकाश फैलाता रहे। प्रकाश उत्पन्न होता रहे, चारों दिशाओं में फैलता रहे। एक दीपक को प्रकृति ने कार्य सौंपा है प्रकाश को धारण करने का, प्रकाश का महत्व समझते हुए उसकी ज्योति जलाये रखने का, यदि दीया अपना कार्य पूर्णत: न कर पाये तो उसका शरीर प्राप्त होने का प्रयोजन तो व्यर्थ ही गया। वह दीप सदैव ही सम्मान का पात्र है जिसने प्रकाश की मनोयोग से रक्षा की और उसे चारो और फैलने के लिए उपयुक्त वातावरण भी प्रदान किया।

हर जागृत पुरूष ने अपने जीवन में यही किया है, एक बार आन्तरिक दृष्टि उपलब्ध होने के पश्चात, अपना बाकी का जीवन उस प्रकाश को फैलाने में लगा दिया, लोगों को सचेत करने में लगा दिया, उन्हें जागृत करने में लगा दिया, सोये हुए को उठानें में लगा दिया, हर जागृत पुरूष ने बस यही तो किया है। यदि यह कार्य सिद्ध न हो पाया तो वह आगे की यात्रा का अधिकारी भी न हो सकेगा। कृष्ण ने इसी अवस्था को 'क्षेम' का नाम दिया है अर्थात् 'प्राप्त की, यत्न पूर्वक रक्षा करना'।

वह विशेष बात, जो बुद्ध को बुद्ध बनाती है वह यही है कि ज्ञान प्राप्ति के बाद उन्होंने अपना शेष जीवन, इस ज्ञान को कोने-कोने तक फैलाने मे लगा दिया। वे ज्ञान प्राप्ति के पश्चात रूके नहीं, संतृप्त नहीं हो गये, शान्त नहीं हो गये, खुद को मौन तक, एकान्त तक सीमित नहीं किया, परन्तु उन्होंने जागृति की लहर पैदा की, एक तरंग पैदा की, जिस तरंग ने विश्व के कई अन्य भागों में जाकर भी अशान्त और अंधकार पूर्ण जीवन में एक दीप प्रज्ज्वलित किया। बुद्ध ने इस ज्ञान के फैलने में तथा इसके विस्तार में, अपना पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया और इसी कार्य के लिए वे आज इतिहास में एक सर्वमान्य नाम हैं। कृष्ण ने गीता का उपदेश देने के लिए यह शरीर धारण किया। उन्होंने अपने जीवन को एक माध्यम बनाया

प्रेम का प्रसार करने के लिए, ज्ञान का प्रसार करने के लिए, वास्तविक धर्म का प्रसार करने के लिए, भक्ति का प्रसार करने के लिए, विवेक का प्रसार करने के लिए, और गीता का ज्ञान देने के लिए कृष्ण को महाभारत जैसे एक धर्म युद्ध की रचना करनी पड़ी क्योंकि यदि गीता का ज्ञान अर्जुन को एकान्त मे दे दिया गया होता तो महाभारत की अनुभूतियाँ उसके साथ मिश्रित न हो पातीं। वह मन्च स्थापित न हो पाता, वह नाटकीयता जो इस सत्य को सम्प्रेषित करने के लिए आवश्यक थीं, वह निर्मित न हो पातीं।

गीता का उपदेश जो कृष्ण ने अर्जुन को कुरूक्षेत्र के मैदान में दिया, उसी गीता ने तत्पश्चात आने वाले लाखो-लाख सत्यान्वेशियों का मार्गदर्शन किया। हर वो व्यक्ति जो आध्यात्मिक पथ पर चलने को उत्सुक था, जो अपने प्रश्नों का उत्तर ढूँढ लेने को व्याकुल था, हर उस व्यक्ति को गीता ने मार्ग दिखाया। कृष्ण की पूरी की पूरी उपस्थिति का सार ही गीता है।

हनुमान जी को भक्ति का आचार्य माना गया। भक्तिमार्ग जो ईश्वर तक पहुँचने का एक सुस्थापित मार्ग है, उसके पहले पथ प्रदर्शन हनुमान जी ही हुए हैं उन्होंने भक्ति को चरम रूप में स्थापित किया। उनका जीवन ही भक्ति की अभिव्यक्ति है, उनके जीवन ने यह संदेश दिया कि किस प्रकार भक्ति मार्ग पर चलते हुए शरीरधारी, ईश्वर को प्राप्त कर सकता है और एक समय आने पर भगवान भी भक्त को अपने से उच्च स्थान प्रदान कर देते हैं। आज जितनी पूजा हनुमान जी की घरों में, गलियों में, मोहल्लों में हुआ करती है उसमें उस भक्ति, उस समर्पण का ही, योगदान है। आज भी यदि कोई राम तक पहुँचना चाहे, मर्यादा को उसके पुरूषोत्तम रूप में जान लेना चाहे तो उसे हनुमान से ही होकर गुजरना होगा।

हनुमान जी ने भक्ति सिर्फ समर्पण और मनन तक न सीमित रखकर सेवा के रूप में उसे विस्तार दिया, उसे जीवन का ध्येय बना लिया, यथार्थ जीवन का त्याग किया, ब्रह्मचर्य का पालन किया परन्तु जीवन जिया तो प्रभु श्रीराम के लिए और यही भक्ति का चरम है। जिसमें भगवान ने भक्त को स्वयं से भी उच्च स्थान देने में कोताही न बरती, प्रेम में और प्रेम मिश्रित कर वापस लौटाया।

मदर टेरेसा ने एक बार सेवाभाव जागृत होने के पश्चात उसे कभी नियंत्रित करने की कोशिश न की, उसे फैलने दिया। अपने सेवा भाव में कोई कोर कसर न उठा रखी, अपने मूल देश को भी त्याग दिया और स्वयं को उन लोगों के बीच स्थापित किया जिनकी उन्हें सबसे ज्यादा आवश्यकता थी। जिन्हें उनकी सेवा की, उनके प्रेम की, उनके दुलार की प्यास थी। एक बार अपना पथ ज्ञात होने पर, एक बार इस तथ्य की प्राप्ति होने पर कि सेवा ही मेरा मार्ग है, उन्होंने अपने जीवन को ही सेवा बना लिया। वास्तव में मार्ग ही ज्ञात हो जाना, प्रकाश की प्राप्ति हो जाना, समाज, मानवता और सृष्टि के लिए कुछ विशेष नहीं, यदि यह यहीं तक सीमित होकर रह जाये। इसे तो फैलना होगा, इसे तो बहना होगा, इसे तो विस्तार लेना होगा ताकि इसकी उपयोगिता हर एक व्यक्ति तक पहुँच सके। जिसे आवश्यकता है प्रेम को पा लेने की, जिसके घावों को आवश्यकता है प्रेम पूर्वक मरहम की, जिसकी अज्ञानता चीख-चीख के प्रकाश को पुकार रही है। हर वो भक्त जिसकी परम इच्छा बस इतनी होती है कि वह अपने आराध्य में समाहित हो जाये। यही है जीवन जागृति, यही है जीवन की पूर्णता और इसी कार्य की सिद्धि से हर जागृत व्यक्ति अपनी यात्रा को अगले तल पर ले जाने को समर्थ हो जाता है। अगला तल जो है ईश्वर का, जो है सूक्ष्म शरीर का।

'या तो मन के दास बनिये या ब्रह्म के'
चयन आपका

मन वह स्वामी है जो वाह्य जीवन को नियंत्रित करता है। हमे विभिन्न योजनायें देता है, हमे विभिन्न महत्वाकांक्षायें विभिन्न विचार देता है, और हम अपनी पूरी ऊर्जा, इन्हें पूर्ण करने में लगा देते हैं। अच्छी शिक्षा, अच्छी नौकरी, अच्छा व्यवसाय, अच्छा जीवन, अच्छी स्त्री, अच्छे बच्चे, बच्चों की शिक्षा, उनका पालन-पोषण, उनकी नौकरियाँ, उनका विवाह और फिर नाती-पोते और अन्त में बीमारियों के वशीभूत हो शरीर त्याग। इस पूरी कवायद का परिणाम क्या निकला?

ऊर्जा जो अन्त में बिल्कुल क्षीण हो गयी, धन जो कमाया उसे बाँटना पड़ा, निवेश जो अपने लिए कर रखा था देना पड़ा, घर जो स्वयं के लिए बनाया था वह भी अब अपना नहीं रहा। अन्य शरीरों से सम्बन्ध, बीबी-बच्चे, नाती-पोते, जो कुछ भी बनाया उनका भी त्याग, तो अन्त में प्राप्त हुआ क्या ? संतुष्टि ? यदि संतुष्टि मिल गयी तो यह मान लिया गया कि अगला जीवन आगे की ओर बढ़ेगा क्योंकि अन्त में सब कुछ त्याग कर यदि संतुष्टि भी प्राप्त हो गयी तो वो भी बुरी नहीं। यदि मन ही स्वामी रहा तो अगले जीवन में जो इस बार कमाया उससे ज्यादा कमाना होगा, कुछ और बड़े निवेश करने होंगे, कुछ और प्राप्त करना होगा, कुछ और दूर देशों की यात्रा करनी होगी या फिर और भी कुछ, इसके बाद भी यदि संतुष्टि न प्राप्त हुई, मोह इतना बढ़ गया कि छोड़ने में दिक्कत आने लगी, तब क्या होगा? इस प्रकार यह पूरा जीवन मन के वशीभूत हो गया।

मन ने जो कहा वो हो गया, मन ने जो चाहा उसे पाने की कोशिश की, सुखों के पीछे भागते-भागते दुख भी मिले, कभी-कभी सुख भी प्राप्त हुआ परन्तु सुख कभी पर्याप्त न लगा। हमेशा कुछ न कुछ कमी ही रह गयी, या तो स्वयं को या फिर स्त्री को। उसे यदि कमी महसूस होगी तो वो आपको निश्चित ही कमीं महसूस करवा सकती है। उसका यह सामर्थ्य प्रकृति प्रदत्त है, तो ये जो कुछ भी ताना-बाना बुना, पूरे जीवन भर मन के चारो ओर ही। जिस चीज का मन हुआ वो हो गया, फिर मन ऊब गया तो यात्रा पर निकल गये परन्तु मन तो सबसे बाहर का स्तर है।

मन के भीतर है बौद्धिक स्तर, यदि जीवन बौद्धिक स्तर पर भी व्यतीत किया तो कुछ तो पाया। कुछ सुन्दर विचार, वैचारिक तल पर कुछ कार्य, जीवन के बारे में समझ विकसित करने का प्रयास, कुछ सिद्धान्तों की उत्पत्ति और चरम अवस्था में मनुष्य के द्वारा उसका उपयोग। परन्तु बौद्धिक स्तर भी मन द्वारा संचालित और नियंत्रित है तथा शरीर की समाप्ति के साथ मस्तिष्क की समाप्ति निश्चित है। हाँ, यदि बौद्धिक प्रयासों के परिणाम स्वरूप, स्वभाव में परिवर्तन आया तो स्वभाव निश्चित तौर पर अगले जन्म में साथ आएगा। बौद्धिक स्तर अर्थात् शारीरिक स्तर और इसके चारो ओर के ताने-बाने में उलझा, ये जगत यथार्थ को ढूँढ़ता रहता है।

प्रथम विकल्प तो यही है, जो अभी तक हो रहा है कि मन के दास बने और मन के स्तर पर अपनी पूरी ऊर्जा उन कार्यों की सिद्धि में लगा दी, जो विचार स्वरूप मन में आते हैं। परन्तु एक दूसरा विकल्प भी है कि मन के पार जाके देखें, मन को थाम लें क्योंकि मन के पार जो संसार है उस संसार पर विश्व भर के जागृत पुरूषों ने काम किया, उसे जान लेने में, समझ लेने में और अन्त में लोगों को यदि समझा सके तो कुछ समझा देने में। मन के उस पार जो शान्ति है, ठहराव है, शून्य है, निर्वात है, आनन्द है उसे भी तो जान लेना आवश्यक होगा। तो यदि सिर्फ मन के दास न बने रहकर ब्रह्म के, शान्ति के दास बने तो वे सभी अनन्त के मार्ग, जो अभी तक छिपे थे, धीरे-धीरे प्रकट होने लगेंगे। बौद्धिक स्तर से इस स्थिति की विवेचना सम्भव नहीं क्योंकि यह अवस्था ही उक्त प्रकार की है। अत: बुद्धि के पार जाकर देखें। मन के दास तो बन चुके हैं अब ब्रह्म का दास बनकर देखें।

कृष्ण के अनुसार ब्रह्म का दास बनते ही प्रेम का, प्रवाह का, अविरलता का, समत्व का, ज्ञान का, प्रकाश का और अन्त में शाश्वत आनन्द का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसी आनन्द से परिचित कराने को कृष्ण, रामकृष्ण परमहंस, क्राइस्ट, विवेकानन्द, बुद्ध, महावीर, चैतन्य महाप्रभु, कबीर, जैसी आत्माओं को शरीर लेना पड़ा, ये बताने के लिए कि शरीर के दास तो बहुत बन चुके हो, अब सत्य को भी खोज लो।

आत्मा से प्राप्त हुए ज्ञान की उपस्थिति में जब शरीर रूपी मृदा और विचार रूपी कीचड़ में, आध्यात्मिक ऊर्जा रूपी जल प्रवाहित होता है तो सहस्त्रार फूट पड़ता है। सहस्त्रार रूपी कमल, वास्तव में रीढ़ की हड्डी रूपी तने और मस्तिष्क

रूपी शाखाओं और पत्तियों पर खिले उस पुष्प के समान है जिसकी सुगन्ध के माध्यम से सामान्य जनों को ये सूचना प्राप्त हो जाती है कि वृक्ष अब अपने चरम को प्राप्त कर रहा है। इसके परागकण अब इतने तैयार हो चुके हैं कि अब वे इस वृक्षरूपी शरीर को त्याग अन्य दिशाओं में फैल जायें, जिससे कहीं और ज्ञानरूपी दीपक प्रज्ज्वलित हो सके।

इसके पंख इसे सुन्दरता प्रदान करेंगे जिससे अन्य जीव और प्राणी इसकी ओर आकर्षित होकर इसकी सुगन्ध में अपनी चैतन्यता खोकर, इस परागरूपी मधु का सेवन कर, अपने भीतर भी उन ज्ञान के बीजों की जमीन तैयार कर सकेंगे।

इसके सहस्त्र पत्रक ही इस कमल को विशिष्टता प्रदान करेंगे और यही विशिष्टता दूर-दूर से उन लोगों को अपनी ओर आकर्षित करेगी जिनमें यह जिज्ञासा उत्पन्न होगी कि यदि इस प्रकार का कमल कहीं खिला है तो जरूर एक बार चलके इसे देख लेना चाहिए, इसके बारे में जान लेना चाहिए, अगर जा न सकूँ तो इसके बारे में और सूचनायें एकत्र करनी चाहिए। वह विधि जान लेनी चाहिए, जिस विधि के द्वारा ऐसा विशिष्ट पुष्प कहीं पुष्पित हुआ है यह पुष्प सिर्फ उन जिज्ञासु प्रवृत्ति व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए होगा। इन सहस्त्र ज्ञान रूपी पत्रों का विशिष्ट कार्य भी यही है ।

सत्य सदैव कुछ आवरणों में छुपा हुआ होता है जिस प्रकार 'घी' दूध में कहीं छिपा हुआ होता है। घी प्राप्त करने हेतु प्रयास करना होगा, दूध को फाड़ना होगा, उसे पकाना होगा, उसे तपना होगा और तब जाकर अन्त में घी बाहर निकल के आयेगा। सत्य भी ठीक इसी प्रकार से होता है, यह सामने ही होता है हर किसी वस्तु में, परन्तु जान लिये जाने से पहले प्रयास करना होगा, बाधाओं को पार करना होगा, कष्टों को झेलना होगा, अनुभवों को आत्मसात करना होगा, दुखों को उनके चरम पर जाकर महसूस करना होगा और तब कहीं जाकर सत्य के बीज, मन में अंकुरित होने लगेंगे। बिना प्रयास के तो घी भी नहीं मिलता, तो बिना प्रयास के सत्य कैसे मिल सकता है?

सत्य के चारो ओर माया का आवरण है। माया जो भुलावे देने का कार्य करती है, उलझाये रखने में प्रवीण है, लोभों का भण्डार है, कामनाओं का व्यापार है। माया

के इस स्वरूप को जानकर ही कबीर को कहना पड़ा कि 'माया महाठगनी हम जानी'। यह आपको अनन्त काल तक, हजारों-हजार जीवनों तक, लाखों उपद्रवों तक व्यस्त रखने के लिये समर्थ है।

यदि गुलाब के फूल को प्राप्त करने की इच्छा हो तो काँटों से निपटना ही होगा। संजीवनी बूटी हिमालय के दुर्गम स्थलों में ही पायी जा सकती थी और उसे पहचानने के लिए भी एक सिद्ध दृष्टि की आवश्यकता थी। हनुमान जी जैसे सिद्ध साधक, परम भक्त के लिये भी पहचानना आसान नहीं था, उस बूटी को। जितनी अमूल्य वस्तु, उसके चारो ओर माया उतनी ही घनी। पहाड़ो की खाइयों में उपस्थित वन और उसमें उपस्थित जड़ी-बूटियाँ। एक बीज में छुपा पूरा वृक्ष, उस पेड़ के गर्भ में छुपे असंख्य बीज और उन असंख्य बीजों से असंख्य पेड़, उन असंख्य पेड़ो के ऊपर पुष्प और पुष्प में उपस्थित पराग, पराग के द्वारा मधु का निर्माण। तो यदि मधु प्राप्त होता है तो उसके पीछे छिपे असंख्य वृक्षों और उनके बीजों का ही प्रयास है। पराग तक पहुँचने से पहले यह यात्रा तो तय करनी होगी और बीज में छिपी अनन्त संभावना को जान लेना होगा।

इसी कारण कृष्ण ने इस शरीर को क्षेत्र कहा, जिसमें उचित समय आने पर उचित फल लगते हैं, ना इन्हें समय से पहले प्राप्त किया जा सकता है और ना ही समय के पश्चात् क्योंकि तब तक तो ये मुरझा चुके होंगे। बस धैर्य पूर्वक उस उचित समय की प्रतीक्षा करनी होगी और उस क्षेत्र के अर्थात् खेती युक्त जमीन में छिपे उन असंख्य और सक्षम बीजों के उपयुक्त समय में फलनें का इन्तजार करना होगा। वस्तुत: सारी सम्भावनायें तो उस खेती युक्त जमीन अर्थात् क्षेत्र में ही मौजूद हैं, बस इस तथ्य को जान लेना होगा और अपने प्रयत्न उन स्वादिष्ट फलों हेतु करते रहने होंगे क्योंकि स्वादिष्ट फल प्राप्त करने हेतु स्वस्थ पेड़ों की आवश्यकता होगी और स्वस्थ्य पेड़ो के लिए कुछ प्रयत्न तो करना होगा।

उस स्वादिष्ट फल की प्राप्ति से पहले मृदा की स्वादहीनता एक माया है, उस पेड़ के सख्त तने जिनमें कोई स्वाद नहीं, कोई रस नहीं, वे पत्ते जो शायद कड़वे भी हो सकते हैं, ये सब माया है ताकि उस फल को छुपाकर उचित व्यक्ति के हाथ में दिया जा सके। उचित व्यक्ति वही होगा जो उसे खोजता हुआ वहाँ पहुँचेगा।

जिसे सिर्फ वास्तविक फल की तलाश होगी, वो तो उसे ढूँढ़ता-ढूँढ़ता उस वृक्ष के नजदीक आ ही जायेगा।

इसी कारण इस माया की रचना की गयी, ठीक उसी प्रकार यह संसार और संसार में उपस्थित अनन्य कामनायें और वासनायें हैं। परन्तु ईश्वर ने कभी ये नहीं कहा कि उस फल तक पहुँचने के लिए तुम्हें मृदा से होकर नहीं आना होगा, तुम्हारे पैर कीचड़ से नहीं सनेंगे क्योंकि यदि उस क्षेत्र के मध्य में उपस्थित उस पेड़ तक पहुँचना है तो इस मृदा रूपी दलदली भूमि को पार करके ही जाना होगा। अत: मृदा में, इस दलदल में पैर रखने से हिचकना मत, बस इस दलदल में रूक मत जाना क्योंकि यदि रूक गये तो फँस जाने का भय है, दलदल को पार करते हुए उस वृक्ष के तने तक पहुँचना होगा।

ईश्वर ने कभी ये नहीं कहा कि उस फल को प्राप्त करने हेतु तुम्हें उस तने पर चढ़ना नहीं होगा। अवश्य तुम्हें चढ़ना होगा, सीधे फल तक तो पहुँचा ही नहीं जा सकता परन्तु उस तने पर रूकना, इस यात्रा को बीच में ही छोड़ देना होगा। तने पर रूकने का कोई प्रयोजन नहीं। मार्ग में क्या पत्ते नही मिलेंगे? ये भी सम्भव नहीं, मिलेंगे ही मिलेंगे! उन पत्तों से स्पर्श होगा ही होगा परन्तु उन पत्तों की सुन्दरता में खो न जाना क्योंकि वास्तविक यात्रा तो उस फल तक की है, उस फल को प्राप्त कर लेने की है।

इन सभी चरणों से होकर ही गुजरना होगा, इन सभी स्तरों से होकर ही जाना होगा परन्तु किसी आकर्षण के प्रभाव में बंधने की कोई आवश्यकता नहीं, इससे होकर निर्लिप्त भाव से आगे बढ़ जाना, उस फल रूपी सिद्धि की ओर। यदि इस संसार में रहना है और उस फल को पाना है, तो मृदा से होकर ही जाना होगा। तो भय न करना कूद पड़ना दलदल युक्त मृदा में, क्योंकि यही रास्ता देगी तुम्हें सत्य तक पहुँचने का, उस स्वादिष्ट फल तक पहुँचने का। यदि कुछ पल रूककर उस सुन्दर पत्तों को निहार ही लिया परन्तु अपनी यात्रा के वास्तविक चरम बिन्दु को भूले नहीं, अन्त में फल तक पहुँच ही गये तो फल तुम्हें कभी न रोकेगा स्वयं को प्राप्त कर लिये जाने से। वो तुमसे कभी प्रश्न न पूछेगा कि मार्ग में रूक क्यों गये थे? वह तुम्हें सहर्ष प्राप्त हो जायेगा, कोई विरोध नहीं। उस पत्ते के आकर्षण में बँध जाने से भी उस फल का कोई विरोध नहीं। परन्तु फल तक पहुँचने के लिए

सत्य तक पहुँचने के लिए, उस पत्ते के आकर्षण से मुक्त होना ही होगा। उसकी सुन्दरता से पार जाना ही होगा क्योंकि पत्ता कितना सुन्दर क्यों न हो फल जैसा स्वादिष्ट नहीं हो सकता।

फल के वास्तविक गुण, उसकी सुगन्ध, उसके पोषक तत्व, उस पत्ते में नहीं हो सकते वह आकर्षक हो सकता है, ये जानते हुए उस पथ पर रूकने का कोई प्रयोजन नहीं क्योंकि तुम्हारी यात्रा पथ पर पहुँचने की नहीं, उस फल तक पहुँचने की है। बीच-बीच में आकर्षक विचार तुम्हें अवश्य भ्रमित करेंगे, द्वार पर पहुँच कर भी कुछ अन्य आकर्षण दिखेंगे, मन में संदेह अवश्य पैदा किया जायेगा, प्रलोभन अवश्य दिये जायेंगे परन्तु उस पेड़ पर उपस्थित कोई अन्य वस्तु, कोई अन्य प्रलोभन उस स्वादिष्ट फल की बराबरी नहीं कर सकता। जो प्रलोभन प्राप्त हो उन्हें भी अपने आध्यात्मिक यज्ञ कुण्ड में आहूति दे देना। जो विचार आये उन्हें भी यज्ञ कुण्ड में डाल देना, क्योंकि हर विचार के पीछे कुछ न कुछ ऊर्जा होती है।

उस ऊर्जा को भी, उस अनियंत्रित अनावश्यक ऊर्जा को भी आध्यात्मिक ऊर्जा में परिवर्तित कर देना। उस आध्यात्मिक यज्ञ कुण्ड में हवन कर देना। माया का कार्य ही संदेह उत्पन्न करना है परन्तु संदेह स्वयं कहता है कि संपूर्ण नहीं हैं देह, अतः इसपर रूकने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि यह उत्पन्न होता है तो उत्पन्न होने दो, यदि ये सामने आता है तो आने दो, बस इसे समेट कर यज्ञ कुण्ड में डाल देना, इस अनावश्यक वस्तु से भी कुछ सुन्दर प्राप्त हो ही जायेगा। इसलिए संदेह नहीं, माया नहीं, सत्य की यात्रा करो।

❖❖

माया नहीं सत्य

धर्म को बहुत गम्भीरता से ले लिया गया है। इसे गम्भीरता से लिया जाना ठीक उसी प्रकार से है जैसे किसी अत्यन्त सुन्दर पैकेट की वाह्य सुन्दरता। उसकी सजावट पर इतना मोहित हो जाना कि इसके अन्दर स्थित मूल सामग्री के बारे में भूल जाना और किसी दूसरी सजावटी वस्तु से तुलना करने लगना। इसकी सजावट सुन्दर कि मेरी सजावट सुन्दर? वह दूसरा भी ठीक इसी प्रकार से सोचे और यह सोच एक वाद-विवाद में परिवर्तित हो जाये तथा वाद-विवाद उपद्रव में। परन्तु यहाँ कोई मूल तत्व के लिये लड़ ही नहीं रहा, मूल तत्व की चर्चा भी नहीं हो रही, उसकी समझ की भी कोई बात नहीं हो रही। यहाँ तो सिर्फ वाह्य सुन्दरता, वाह्य सजावट ही समस्या बन गयी।

धर्म के कर्मकाण्डीय पक्ष का मूल उद्देश्य आपको ज्ञानकाण्ड की ओर ले जाना है। कर्मकाण्डों में उलझाकर रखने का उसका कोई प्रयोजन नहीं है। आज सारा का सारा उप्रदव ही इस बात पर है कि तुम्हारा पैकेट सुन्दर कि मेरा पैकेट सुन्दर। यदि भोजन को भिन्न-भिन्न डब्बों में, भिन्न-भिन्न सजावटी कागजों में लपेटकर एक सुन्दर रूप दे दिया जाये तो भी अन्दर तो एक ही भोजन प्राप्त होगा वह भोजन स्वाद दे सकता है और आपकी भूख को ही मिटा सकता है, इससे ज्यादा वो करेगा भी क्या? क्योंकि यही उसका मूल कार्य है भूख को मिटा देना। परन्तु यहाँ सजावट को देखकर भूख भी भाग जाती है, सजावट ही इतनी सम्मोहित करने वाली है कि भूख और प्यास की चिन्ता किसी को नहीं।

यदि तीन गाँवो में तीन अलग-अलग मधुमक्खी के छत्ते हैं कोई छोटा, कोई बड़ा, कोई ऊँचाई पर स्थित है तो कोई नजदीक। कोई दिखने में हल्के रंग का है तो कोई गहरे रंग का, कितनी ही मधुमक्खियाँ उसकी रक्षा करें, उसके चारों ओर चक्कर काटें, भले ही वो तीन अलग-अलग स्थानों पर स्थित हों, भले ही उसका आकर्षण अलग-अलग प्रकार का हो परन्तु छत्ते के भीतर तो मधु ही प्राप्त होगा और मधु का मूल तत्व एक ही होगा।

परन्तु आज समस्या यह बन गयी है कि मेरे गाँव का छत्ता ज्यादा सम्मोहक, ज्यादा उत्कृष्ट कि तुम्हारे गाँव का? अभी मधु भी किसी ने प्राप्त नहीं किया, उसके

बारे में, उसके स्वाद के बारे में, किसी ने जाना भी नहीं परन्तु अभी दूर से देखकर, नेत्रों के द्वारा ही उस छत्ते की माप-जोख चल रही है और इस माप-जोख को दूसरे गाँव के छत्ते से मिलाया जायेगा। वास्तव में छत्ते का रंग और उसका स्थान महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है मधु और मधु का मूल तत्व क्योंकि मधुमक्खियाँ पराग को लाने के लिए गाँव की सीमाओं को सम्मान नहीं देतीं। वे तो पराग की खोज में दूर-दूर तक चली जाती हैं उनकी खोज पराग की है और वे जानती हैं जहाँ से प्राप्त हो, वहीं जाना उचित है।

एक योग्य व्यक्ति की एक दूसरे शहर में नौकरी लगी उसे जो घर प्राप्त हुआ उस तक पहुँचने के लिए उसे रोज एक गली से होकर गुजरना पड़ता था, काम पर आते और वापस घर की ओर जाते, दिन में २ बार वह उस गली से गुजरा करता। उस गली में देह का व्यापार करने वाली स्त्रियाँ रहा करती थीं। हर सुबह जब वह काम पर जाता और उस गली से उसका गुजरना होता तो जो स्त्री भी, अपने घर के बाहर बैठी व्यापार की प्रतीक्षा में, आने वाले लोगों का इन्तजार करती, यदि अनायास ही इस युवक से उसकी दृष्टि मिल जाती, वह युवक उनकी तरफ बहुत प्रेम से देखकर मुस्करा दिया करता था और अपने मार्ग पर आगे बढ़ जाता, वापसी में भी यही प्रक्रिया दोहरायी जाती।

समय बीतता गया, दिन महीनों में बदले और महीने सालों में। युवा अवस्था, प्रौढ़ावस्था में बदली और प्रौढ़ावस्था अधेड़ावस्था में। जीवन अपने वसन्त से शिशिर की ओर बढ़ गया और यह प्रक्रिया ऐसे ही चलती रही। वह रोज सुबह अपने काम पर जाता और मार्ग में जिस किसी से भी इसकी दृष्टि मिलती वह उसे देखकर प्रेम से मुस्करा देता। धीरे-धीरे कुछ स्त्रियों को उसका इन्तजार रहने लगा, उसकी प्रेमपुर्वक मुस्कान का। वे हर सुबह उस समय अवश्य घर के बाहर आकर बैठ जातीं, जब वह काम पर जाता और पूरा प्रयास करती कि उनकी दृष्टि उस व्यक्ति से मिल जायें क्योंकि उसके उत्तर में एक प्रेमपूर्वक मुस्कान प्राप्त होती।

उनमें से कई स्त्रियों को इस बात में कुछ भी विशेष न लगता, वे सुबह से रात सिर्फ व्यापार में ही व्यस्त थीं उन्हें अपने कार्य से मतलब था परन्तु वहीं पर अनेक स्त्रियों ने इस विशेष व्यवहार को समझा और उन्होनें महसूस किया कि पूरे दिन में यही दो पल, जब वह युवक इस गली से गुजरा करता है सबसे विशिष्ट

होतें हैं, सबसे अलग होते हैं। युवक अब प्राण से अधेड़ हो चुका था परन्तु यह क्रिया अनवरत चलती रही और एक दिन एक स्त्री की अभीप्सा कुछ इस स्तर तक पहुँची कि वह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उस व्यक्ति के घर तक पहुँच गयी।

दरवाजा खटखटाने पर वही व्यक्ति बाहर निकला और इस स्त्री को देखते ही तुरन्त पहचान गया और दृष्टि ही दृष्टि में फिर वही प्रेमपूर्वक मुस्कान का आदान-प्रदान हुआ। उस स्त्री ने अपनी जिज्ञासा उसके सामने रखी। उसने कहा कि मैने जीवन भर इस शरीर का व्यापार किया, दृष्टियों की परख मुझे है। हर एक व्यक्ति जो इस मार्ग से गुजरता, भले ही उससे मेरा कुछ काम पड़े या ना पड़े परन्तु उसकी दृष्टि में सदैव एक व्यापार ही रहता। कई बार ये व्यापार शारीरिक स्तर तक आ जाता तो कई बार सिर्फ मानसिक स्तर तक ही पहुँचकर रूक जाता। परन्तु उसकी दृष्टि से ही यह बात पता चल जाती कि वह मुझे सिर्फ एक वस्तु के रूप में ही देख रहा है और मुझे उस व्यक्ति से कोई शिकायत भी नहीं क्योंकि मैं स्वयं भी वहाँ पर व्यापार करने बैठती। परन्तु आपकी दृष्टि उन सभी व्यक्तियों से बिल्कुल अलग हुआ करती है। दिन मे दो बार मुझे सदैव आपका इन्तजार रहता कि कब आप इस गली से गुजरेगें और हमारी दृष्टि आपस में मिलेगी और मुझे वह प्रेमपूर्वक मुस्कान प्राप्त होगी।

यह बात सुनकर उस व्यक्ति के अधरों पर वही चिरपरिचित मुस्कान तैर गयी। उसने कहा, ''यह बात मैं जानता था कि इस मार्ग पर सिर्फ व्यापार ही होता है, चाहे वह शरीर का हो, चाहे भावनाओं का। परन्तु मुझे ये बात भी बड़े स्पष्ट रूप में पता थी कि वह व्यक्ति जो इस व्यापार में मग्न है उसका केन्द्र भी, उसकी आत्मा भी उतनी ही शुद्ध है जितनी कि मेरी। दोनों में वस्तुत: कोई भी अन्तर नहीं था, अन्तर था तो सिर्फ चेतना के स्तर में। आपकी चेतना अभी भौतिक तल पर थी और मेरी चेतना अब केन्द्र की ओर सिमट चुकी थी। अन्तर एक और था कि आप उस व्यापार में भी प्रेम को ढूँढ़ रही थीं और मुझे पता था कि प्रेम कभी व्यापार में ना मिलेगा क्योंकि प्रेम सदैव अकारण होता है, निस्वार्थ होता है, प्रेम मे लेन-देन नहीं हो सकता और यदि कहीं प्रेम के बदले में कुछ अपेक्षा की जाये तो वह प्रेम भी शुद्ध नहीं, व्यापार ही है क्योंकि प्रेम कभी अपेक्षा नहीं रखता। प्रेम सिर्फ न्यौछावर किया जा सकता है, इसका प्रवाह भीतर से बाहर की ओर होता है।''

जिस प्रकार गंगोत्री से निकली गंगा कभी वापस नहीं लौटती, उसी प्रकार हृदय से निकला प्रेम सिर्फ प्रवाहित हो जाता है और मार्ग में आने वाले सभी लोगों को संतृप्त करता जाता है। बदले में ये किसी भी चीज की अपेक्षा नहीं करता इसी कारण कृष्ण ने कहा कि तुम कभी भी किसी ज्ञानी पुरूष, किसी जीव-जन्तु, किसी वृक्ष और किसी चाण्डाल व्यक्ति में कोई भी भेद न करना। तुम्हारे लिए सभी समान स्तर पर होंगे क्योंकि यदि तुमने इस तथ्य को जान लिया कि सबसे केन्द्र में कृष्ण ही स्थित हैं तो जब कभी उन्हें देखोगे, तब तुम्हें अवश्य ही पता लग जायेगा कि वाह्य शरीर जिसे वह अपना समझते हैं वह सिर्फ माया है परन्तु सत्य, अन्दर बैठे कृष्ण स्वयं है। जब कभी तुम देखोगे तो तुम उनमें भी सत्य को ही पाओगे और यही बात इसी को तथ्य से जानना, तुममे समत्व पैदा करेगा।

माया के स्तर पर रहते हुए यदि सत्य की बातें, उसकी चर्चा की जाये तो उसमें अनुभव ही बाँटे जा सकेंगे, परन्तु अनुभव कभी-कभी असत्य भी होते हैं और अनुभूतियाँ कभी भी असत्य नही होतीं। उनमें सत्य का अंश कम या ज्यादा हो सकता है। अत: यदि सत्य के बारे में बात करनी हो तो स्वयं के गुणों से पार जाना होगा, गुणातीत अवस्था में आकर, सत्य की विवेचना ज्यादा शुद्ध तरीके से की जा सकेगी।

इन्द्रिय तो सिर्फ द्वार, मुख्य ऊर्जा मन की

इन्द्रिय तो सिर्फ ऊर्जा के शरीर से बाहर निकलने का द्वार है परन्तु मुख्य ऊर्जा है मन की। ऊर्जा विचारों के माध्यम से, काम ऊर्जा में परिवर्तित हो शरीर से बाहर निकलने का मार्ग ढूँढ़ लेती है। मुख्य समस्या इन्द्रिय द्वारा काम ऊर्जा का क्षय नहीं बल्कि मुख्य समस्या मन में उपस्थित काम सम्बन्धी विचारों की है। अनियन्त्रित ऊर्जा काम सम्बन्धी विचारों को वाहन बना, इन्द्रिय से बाहर निकलने का मार्ग ढूँढ लेती है। अत: मुख्य समस्या काम नहीं, काम सम्बन्धी विचार हैं जो काम से कहीं ज्यादा, ऊर्जा शोषित कर लेते हैं। अत: यदि काम को सिर्फ विचार रहित क्रिया के रूप में किया जाये तो इस क्षय होने वाली अपार ऊर्जा को बचाया जा सकता है, और इस ऊर्जा से कुछ सृजनात्मक किया जा सकता है।

पूरी प्रकृति नवजीवन का निर्माण करने में व्यस्त है परन्तु वह इस विचार में व्यस्त नहीं। प्रकृति नवजीवन के निर्माण को सिर्फ एक सामान्य क्रिया के रूप में करती है। वृक्ष बीजों का निर्माण सिर्फ एक क्रिया के रूप में करते हैं। उन्हें इससे सम्बन्धित किसी विचार की आवश्यकता नहीं। वस्तुत: काम सम्बन्धी विचार, शरीर से सम्बन्धित होते हैं और यौवन की उपस्थिति तो शरीर से भी कम समय के लिए होती है अर्थात् यह ऊर्जा, एक नश्वर शरीर की उस अवस्था विशेष के चिंतन में व्यर्थ हो जाती है जो अवस्था स्वयं ही स्थिर नहीं। उससे सम्बन्धित विचारों और उन विचारों के सम्बन्ध में व्यर्थ हुआ समय, वस्तुत: पूर्ण रूप से व्यर्थ की गयी ऊर्जा को ही दर्शित करता है।

वे गृहस्थ भी योगी हैं, जो इस रहस्य को जानते हुए काम सम्बन्धी ऊर्जा को मुख्यत: सिर्फ क्रिया के रूप में ही सीमित कर, अपार ऊर्जा के अपव्यय को रोक देते हैं। वस्तुत: मन जब काम सम्बन्धी विचारों की ओर उद्धृत रहता है, तो उन विचारों में दो प्रकार की ऊर्जाएँ नष्ट होती रहती हैं। प्रथम वह ऊर्जा जो उस काल में शरीर को सुचारू रूप से चलाये रखने के लिये प्रयोग में लाई जा रही हो और द्वितीय विचारों सम्बन्धी ऊर्जा, जो जितनी काल तक उपस्थित रही, ऊर्जा का अपव्यय ही करती रही।

व्यर्थ होती इस काम विचार सम्बन्धित ऊर्जा, आध्यात्मिकता के एक स्तर तक आने पर, सृजनात्मक ऊर्जा में परिवर्तित हो, आन्तरिक रूपान्तरण में सहायता करती है। समर्पण और ध्यान उपकरण की भाँति इस काम विचार सम्बन्धी ऊर्जा से आन्तरिक रूपान्तरण करने हेतु कार्य करते हैं।

काम सम्बन्धित विचारों की ऊर्जा इतनी सघन है कि यह पूरी दुनिया में पोर्नोग्राफिक इन्डस्ट्री को स्थापित, और उसमें परिवर्तन कर सकती है। यही ऊर्जा यौन अपराधों के लिये भी उत्तरदायी है, जिसमें बलात्कार, छेड़छाड़ व अन्य घटनायें आती हैं। यह ऊर्जा मानव तस्करी जैसे बड़े विश्वव्यापी और संगठित अपराधों को जन्म दे सकती है। यही ऊर्जा दुनिया के विभिन्न हिस्सों में सेक्स टूरिज्म को स्थापित भी कर सकती है और उन्हें बढ़ावा भी दे सकती हैं। यह ऊर्जा सेक्सुअल डिस्क्रिमिनेशन पैदा करके समाज के उपयुक्त प्रबन्धन में भी बाधक है।

यह कन्या भ्रूण हत्या को प्रोत्साहित करती है जिसके कारण पूरे राष्ट्र और मानवता की प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है व समाज यौन कुंठा की तरफ बढ़ जाता है। ये समाज में पुरूष और महिलाओं के बीच में अनुपात को भी असंतुलित कर देती है। जिसके कारण विवाह होने के लिये उपयुक्त संख्या में कन्याओं का ना मिलना और इसके कारण अन्य समस्यायें और सामाजिक समरसता में बाधा पहुँचती है।

सही दिशा में प्रयुक्त होने पर यही ऊर्जा आन्तरिक रूपान्तरण को गति दे सकती है और इस प्रकार विभिन्न चक्रों के जागरण में निश्चय ही अतिसहायक हो सकती है। यह उदाहरण मन में उपस्थित विचारों की असीम प्रबलता को दर्शाते हैं, एक साधक इसी ऊर्जा को अपनी आध्यात्मिक उन्नति हेतु प्रयोग कर, इसे एक सकारात्मक दिशा दे देता है जिसकी परिणति अन्ततः पूरे मानवता व प्राणी जगत व पर्यावरण को लाभ के रूप में प्राप्त होती है।

एक साधक का आन्तरिक रूपान्तरण व उसकी आध्यात्मिक पथ पर प्रगति निश्चित ही अन्य साधकों को भी प्रेरित करती है तथा यह उनमें भी ऊर्जा के सदुपयोग की समझ पैदा करती है। वास्तव में ऊर्जा अच्छी या बुरी नहीं है परन्तु उसका उपयोग सकारात्मक और नकारात्मक हो सकता है। एक निश्चित आयु तक काम के विचारों की ऊर्जा व्यक्ति के काम को समझने में सहायक होती है परन्तु

एक बार संतृप्ति आने पर, समझ जागृत हो जाने पर, यही ऊर्जा आन्तरिक रूपान्तरण को भी गति देती है।

समस्या तब आती है जब यह ऊर्जा एक ही तल पर ठहर जाये। यह काम से आध्यात्म की तरफ न बढ़ पाये, समय के साथ इसका रूप परिवर्तित न हो पाये, मनुष्य अपनी आन्तरिक समझ विकसित न कर पाये, वह समय रहते अन्य उपायों को न ढूँढ पाये, जो इस ऊर्जा परिवर्तन में उसकी सहायता कर सकते हैं। इन्द्रिय तो मात्र एक द्वार है, इस असीमित ऊर्जा के शरीर से बाहर निकल जाने का परन्तु वास्तविक ऊर्जा है मन में उत्पन्न उन विचारों की।

जन्तु समुदाय, सिर्फ प्रजनन काल में और मानव समुदाय जीवन के अधिकतर काल में इस काम विचार ऊर्जा से पीड़ित है। प्रकृति कभी भी काम सम्बन्धित विचारों में अपनी ऊर्जा व्यर्थ न करके इसे एक क्रिया की भाँति लेकर सदैव नवजीवन का सृजन करती रहती है, इसी कारण वह मोह से भी दूर है। एक बीज को उत्पन्न करके, पुष्प के खिलने पर, फसल के आने के पश्चात अगली फसल की तैयारी, अगले पुष्प के खिलने की तैयारी, अगले बीज निर्माण की तैयारी प्रारम्भ हो जाती है।

इसी कारण प्रकृति सदैव ही ईश्वर के साथ तादात्म्य में होती है, यही कारण है कि जागृत पुरूषों ने कहा कि यदि ईश्वर के साथ सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हो तो पहले प्रकृति को समझो, प्रकृति को जानो, उसका अध्ययन करो, उसके साथ एक सम्बन्ध स्थापित करो और प्रकृति के साथ बनाया गया सम्बन्ध ही, तुम्हें ईश्वर के साथ अपने सम्बन्ध को स्थापित व उसे सघन करने में सहायक होगा।

❖❖

यदि व्यक्ति जीवन के पूर्वार्द्ध में अध्यात्म के विज्ञान को समझ ले तो उत्तरार्द्ध में वह विशिष्ट कार्यों का अधिकारी

यदि व्यक्ति के जीवन के बसंत में उसे सत्य की अनुभूति हो जाये तो जीवन फिर निश्चय ही ज्यादा होशपूर्वक व्यतीत होगा। जीवन शिशिर में उसे मन के जंजालों में उलझे रहने की आवश्यकता नहीं होगी, शेष जीवन वह शरीर की संतुष्टि पा लेने में ही व्यतीत नहीं करेगा। वह सिर्फ तर्कों में ही जीवन की सच्चाई को ढूँढ़ पाने की असफल कोशिश नहीं करेगा। वह बुद्धि के वशीभूत होकर सिर्फ भौतिक तल की संतुष्टि हेतु ही ऊर्जा व्यर्थ नहीं करेगा।

वह प्रेम तो करेगा लेकिन प्रेम से व्यापार को विदा कर देगा। अब उसका प्रेम सिर्फ कुछ लोगों तक सीमित न रहकर, सभी के लिए और समान मात्रा में उपलब्ध होगा। मोह के जाल में फँसे रहकर, उसे कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं होगी। मोह से कष्ट ही तो मिल सकता है क्योंकि यदि असत्य से, इस क्षणभंगुर शरीर से, वाह्य तल पर स्थित सम्बन्धों से व भौतिक वस्तुओं से ही मोह किया तो एक दिन उनके नष्ट होने पर दुख होना तो अवश्यम्भावी होगा।

वह जीवन को गणित का जोड़ घटाव नहीं वरन संगीत का प्रवाह समझेगा। वह जीवन के बहाव को समझने में भूल न करेगा। उससे सृष्टि के स्वरूप और गतिविधि को समझने में चूक न होगी। जीवन अब ज्यादा परिपूर्ण और ज्यादा समग्र होगा क्योंकि खालीपन इसमें से विदा हो चुका होगा। उसे पता चल चुका होगा कि जीवन कंक्रीट के महलों में नहीं वरन प्रकृति में, वृक्षों और पुष्पों में निवास करता है।

उसे अब दूसरे शरीरों पर निर्भरता की आवश्यकता नहीं, अब वह स्वयं मित्रों के सहयोग को उपस्थित होगा। उसे जीवन में लिप्त होने की आवश्यकता नहीं परन्तु वह जीवन के प्रवाह के साथ बहने को प्रस्तुत होगा। उसे अब साधारण जीवन जीने की आवश्यकता नहीं अपितु अब वह विशिष्ट कार्यों का अधिकारी होगा। जीवन पहले से ज्यादा शान्त और स्थिर होगा।

उसे यह ज्ञात हो चुका होगा कि जीवन व्यतीत करने का सबसे निम्न स्वरूप है स्वयं के लिये जीना। इस प्रकार जीने में उसे कोई रस न होगा परन्तु उसका जीवन प्रकृति के साथ ही मित्रों हेतु व अपरिचितों हेतु भी समान रूप से उपलब्ध होगा। अपने लिये भोजन की व्यवस्था करने हेतु उसे स्वांग न रचने होंगे परन्तु अब वह यही कार्य निर्लिप्तता के साथ सामान्य रूप से कर सकेगा। उसे अपनी आवश्यकताओं हेतु अपनी कामनाओं की पूर्ति करने हेतु, दूसरों को छलने की आवश्यकता नहीं होगी। वह अपनी आवश्यकताओं को इस स्तर पर लाकर स्थिर कर सकेगा कि उन्हें उपस्थित संसाधनों द्वारा पूर्ण किया जा सके। उसके संसाधन अब सिर्फ उसके न होंगे परन्तु अब वह उपलब्ध होंगे सभी के लिये समान रूप से।

वह जीवन के कर्मकाण्डीय पक्ष को जानकर, उनसे सन्तृप्त होकर जीवन के ज्ञानकाण्ड में प्रवेश कर जायेगा। जातियाँ उसके लिये तुच्छ होंगी, मनुष्य के बीच रंगों का कोई विभेद न होगा, अन्य धर्मों में उसे शत्रु नहीं, अपने समान ही मनुष्य दिखाई देंगे। मनुष्य को अब वह मनुष्य के तल पर जानेगा, उसे विभिन्न उप नामों से पुकारने की आवश्यकता नहीं होगी। ऊँच और नीच के बीच में उपस्थित समानता के दर्शन उसे हो जायेंगे। अब उसे अपने दृष्टि को ऊँचा या नीचा न करना होगा परन्तु समानता का आनन्द लेने को वह स्वतन्त्र होगा।

अब वह मंदिरों की मूर्तियों में छिपे संदेशों को पढ़ने के लिये समर्थ होगा, वे कूट संदेश अब उसके लिये किसी पहेली जैसे न होंगे परन्तु अब उसे उनका उत्तर और उनकी प्रस्तुति का कारण ज्ञात होगा। अब जीवन निरर्थक न होकर सार्थक होगा। अब उसे जीवन बेहोशी में न व्यतीत करना होगा, क्योंकि अब वह जागृत हो चुका होगा, अब आवश्यकता होगी इस जागृति को संक्रामक बनाने की। अब सिर्फ समृद्धि ही प्रगति न करेगी वरन चेतना भी अपनी मार्ग पर अग्रसर होगी, चेतना को अब अवरूद्ध न होना होगा।

अब वह कृष्ण के प्रेम को समझने को समर्थ होगा। अब वह हनुमान की भक्ति में छिपे रस का स्वाद ले सकेगा, अब राम की मर्यादा उसके लिये अबूझ पहेली न होगी, अब ऐसी कोई होली नहीं, जो उसने खेली नहीं होगा। अब उसकी

भक्ति, भक्ति नहीं समर्पण होगी। अब कबीर की ऐसी कोई उलट बाँसी नहीं जो उसने समझी नहीं होगी। अब मीरा की कोई ऐसी प्रार्थना नहीं जो उसने गायी न होगा। अब उसे शिव को ढूँढ़ने शिवालय न जाना होगा। अब पूजा, पूजा न होकर प्रार्थना होगी। अब सृष्टि रहस्य नहीं समाधान होगी।

अब उधार के विचारों से काम न चलाना होगा क्योंकि स्वतन्त्र अनुभूतियाँ स्वत: ही उपस्थित होंगी। अब उपलब्ध मार्गों पर उसे विचार न करना होगा क्योंकि अब विचारों से परे मार्ग उपलब्ध होगा। यज्ञ वेदी अब मन्दिर में उपस्थित न होकर मस्तक में उपस्थित होगी। अब विद्याओं पर निर्भरता की आवश्यकता न होगी क्योंकि ज्ञान सुलभ होगा। अब प्रकृति से कोई विरोध न होगा अपितु जीवन प्रकृति के साम्य में होगा। प्रकृति से साम्यता स्थापित होने के पश्चात् जीवन अथवा चेतना ब्रह्म के साथ साम्य प्राप्त करने का प्रयास करेगी। अब आध्यात्म कोई शब्द न होकर विज्ञान होगा। विज्ञान और ज्ञान अब परस्पर विरोधी न होकर परस्पर सहायक होंगे। विज्ञान, ज्ञान का स्पष्टीकरण देने के लिए उपलब्ध होगा।

अब जीवन धन की अंधी दौड़ न होकर ध्यान का ठहराव होगा। जीवन वाह्य विचारों द्वारा अनुकूलित न होगा अपितु आन्तरिक अनुभूतियों द्वारा सिंचित होगा। जीवन एक कष्टप्रद यात्रा न होकर सुन्दर अनुभूति होगी। जीवन का हर चरण, हर अवस्था अपनी अनुभूति स्वत: ही लेकर आयेगी। अब रोशनी के उल्लास के साथ अंधकार की सघनता भी आनन्द प्रदान करेगी। रात्रि सिर्फ दिन की समाप्ति ही नहीं ध्यान के लिए एक उपयुक्त अवसर होगी।

यह द्वन्द 'केन्द्र और परिधि' का है, यह यात्रा परिधि से केन्द्र की है। इन्द्रियों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु चेतना को परिधि पर आना होगा परन्तु यदि वह अपना अधिकतर समय केन्द्र पर स्थित रहे तो परिधि पर निर्भरता समय के साथ-साथ कम होती जाती है। परिधि पर बेचैनी है, चीजों को जल्दी करने की जिद, अन्य उथल-पुथल, उपद्रव है। केन्द्र शान्त है, स्थिर है, सम्यक् है।

मन के विचारों की अध्यात्मिक अग्नि में आहूति

विचार चेतना को केन्द्र से दूर ढकेलने का कार्य करते हैं। विचारों को आध्यात्मिक हवन कुण्ड में आहुति देने पर चेतना उत्तरोत्तर केन्द्र की ओर गमन करती है। हवन एक अति सुन्दर क्रिया है। द्रव्य द्वारा किया गया यज्ञ, आध्यात्मिक यज्ञ की महत्ता और उसकी उपादेयता को स्पष्ट करता है। एक हवन कुण्ड मस्तिष्क में भी हो, जिसमें मस्तिष्क में उठने वाले सभी विचार अच्छे-बुरे, सामान्य सभी की आहूति उस आध्यात्मिक कुण्ड में दी जा सके। जिससे विचारों की ऊर्जा और विचारों की परिणति के रूप में किये जाने वाले कर्म और उन कर्मों में व्यय ऊर्जा आध्यात्मिक यज्ञ कुण्ड में उत्पन्न होकर सहस्त्रार को जागृत करने का कार्य कर सके। आन्तरिक यज्ञ कुण्ड स्थापित करने के पश्चात आपको द्रव्य रूपी हवन करने की आवश्यकता न होगी। वह तो एक संकेत मात्र है, वह एक सूचना है उन सभी सत्यान्वेशियों के लिए, जो ये जानना चाहते हैं कि किस प्रकार विचार और विचारों द्वारा उत्पन्न कर्मों से इस शरीर को और इस चेतना को मुक्त किया जा सके।

एक आन्तरिक हवन कुण्ड, एक यज्ञ जो सदैव चलता रहे जिसमें विचारों की सतत् आहूति दी जाती रहे। जिसमे संस्कार जलाकर राख कर दिये जायें। जो धीरे-धीरे कर्म बन्धन में बँधे हुए पिछले पापों को भी जलाकर स्वाहा कर देने का मार्ग भी प्रशस्त करे। जागृति के पश्चात, सत्य का भान होने के पश्चात इस हवन कुण्ड इस यज्ञ की वेदी की स्थापना अवश्य ही मस्तिष्क में की जाये ताकि विचारों के बाहर निकलने की प्रक्रिया व उससे निर्मित ऊर्जा का सदुपयोग, आध्यात्मिक जागृति में किया जा सके।

यह आन्तरिक यात्रा के वाहन में प्रयुक्त ईंधन की भाँति होगा और वे विचार जिन्होंने सदैव से मानव जाति को नाहक ही परेशान किया, उपद्रवों में डाला, अस्त-व्यस्तता फैला दी, उथल-पुथल मचा दी वे सभी विचार और उनसे सम्बन्धित कर्म और इनसे बंधित अथाह ऊर्जा अब आध्यात्मिक अग्नि से मुक्त होकर, आन्तरिक पथ पर चेतना को केन्द्र की ओर ढकेलने का कार्य करे और जैसे-जैसे चेतना केन्द्र की ओर गमन करती जायेगी वैसे-वैसे आन्तरिक यात्रा अपने लक्ष्यों को पूर्ण करेगी।

इस यज्ञ से उत्पन्न सुगन्ध जब वायु के माध्यम से चारों दिशाओं मे फैलेगी तो सभी दिशाओं मे स्थित चर-अचर प्राणी और जीव-जगत को यह अपनी ओर आकर्षित करेगी। इस यज्ञ का लाभ यज्ञ क्षेत्र में उपस्थित सभी लोगों को किसी न किसी रूप में प्राप्त होगा, इस जीवन में या फिर किसी और जीवन में। परन्तु जिस किसी ने इस यज्ञ को होते हुए देखा, यह बात उसकी चेतना में अवश्य अंकित हो जायेगी और उपयुक्त समय आने पर जब चेतना स्वयं को कर्म बन्धनों से मुक्त करने का प्रयास करेगी स्वयं को विचारों के द्वन्द से निकालने का प्रयास करेगी, जब अनावश्यक संस्कारों की धूल चेतना पर से थोड़ी साफ हो जायेगी, तब अवश्य ही चेतना स्वयं पर अंकित इसी यज्ञ को स्मरण कर एक यज्ञ कुण्ड स्थापित करने का प्रयास करेगी।

उस अवस्था में एक और यज्ञ की वेदी और एक और आन्तरिक यात्रा की शुरूआत होगी केन्द्र की ओर। कर्म और फल के बन्धन, इस यज्ञ में प्रयुक्त लकड़ी की भाँति होंगे और विचार तथा विचारों से बँधे कर्म इस यज्ञ में आहूति का कार्य करेंगे। यह यज्ञ चेतना द्वारा निष्पादित किया जायेगा। आध्यात्मिक अग्नि स्वयं प्रज्ज्वलित होकर इस यज्ञ को प्रारम्भ व गति देने का कार्य करेगी। आत्मा स्वयं इस यज्ञ की साक्षी होगी तथा यज्ञ फल के रूप में चेतना आत्मा से योग को प्राप्त करेगी।

पंचतत्वों की उपस्थिति इस यज्ञ में सहायक होगी, मस्तिष्क की ऊर्वरा भूमि पर इस यज्ञ को सम्पन्न किया जायेगा, संसार इसकी वेदी होगी और यज्ञकुण्ड यह शरीर। कृष्ण ने गीता में कहा यज्ञ, दान और तप ये तीनों ही कर्म बुद्धिमान पुरूषों को पवित्र करने वाले हैं। यज्ञ अन्तस को पवित्र ही तो कर सकता है जिस अन्तस में आध्यात्मिक अग्नि प्रज्ज्वलित हो, जिसमें समस्त कर्म फलों की आहूति दी जा रही हो वह यज्ञ अवश्य ही पवित्र होगा तथा यज्ञ से उत्पन्न प्रकाश अन्तस को प्रकाशित कर सकेगा।

अंधकार अपना स्थान सुरक्षित करने का प्रयत्न करता है परन्तु उसके पैर, अग्नि की उत्पत्ति के कारण प्रकट हुए प्रकाश से उखड़ते जाते हैं। जब मन के जंजालों में बँधकर जीवन यापन न करना पड़े तो वह जीवन अवश्य ही पवित्र करने वाला होगा।

कृष्ण ने कहा कि यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरूष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं और जो पापी लोग अपना शरीर पोषण करने के लिये अन्न पकाते हैं वे तो पाप को ही खाते हैं। इसका तात्पर्य सिर्फ इतना है कि अन्न का वह भाग जो शरीर की आन्तरिक क्रियाओं को संचालित करने के लिये ऊर्जा प्रदान करता है उस भाग को छोड़ने के पश्चात जो कुछ भी ऊर्जा अन्न से प्राप्त होती है, वह ऊर्जा इस आन्तरिक आध्यात्मिक यज्ञकुण्ड में से तपकर आध्यात्मिक ऊर्जा में परिवर्तित हो, सृष्टि और ब्रह्म के साथ साम्य में आने को चेतना को उद्धृत करती है।

अब यह जीवात्मा पर निर्भर है कि वह इस अतिरिक्त ऊर्जा का किस प्रकार उपयोग करे। यही ऊर्जा उसे मन के अधीन कर, विभिन्न कार्यों और कर्म बंधनों की ओर उद्धृत करती है परन्तु यदि इन सभी कार्यों में कर्म फल का त्याग कर, विचारों के उद्धीपन को शान्त कर, इस ऊर्जा की यदि आध्यात्मिक यज्ञ कुण्ड में आहूति दे दी जाये तो इसके फलस्वरूप जो आध्यात्मिक ऊर्जा उत्पन्न होगी वह ऊर्जा ही मनुष्य को श्रेष्ठ बनायेगी।

अब वह सिर्फ पशु की भांति अपना जीवन यापन करने को ही इस ऊर्जा का उपयोग नहीं करेगा वरन् अब उसकी ऊर्जा समस्त प्राणी और जीव-जगत के लिये सम्यक रूप से उपलब्ध होगी। ये विचार जिन्होंने आपको सदैव ही विचलित किया, सदैव ही उथल-पुथल मचायी, अब वही विचार कुछ सकारात्मक करने को तैयार होंगे। उन्हीं विचारों को और उसमें बँधी ऊर्जा को अब यज्ञ की ओर प्रवृत्त किया जा सकेगा। चेतना के अपने मूल स्वरूप में आने को, किये जाने वाले प्रयत्नों को बल प्राप्त होगा। दिशा यदि सही हो, यन्त्र यदि उपयोगी हो, ईंधन यदि प्राप्त हो रहा हो, तो यात्रा अवश्य पूर्ण होगी।

कृष्ण ने शरीर को यन्त्र कहा

कृष्ण ने गीता में शरीर को बहुत ही साफ और सुस्पष्ट शब्दों में यन्त्र कहा, वाहन कहा और इस प्रकार कहते हुए उन्होंने किसी रहस्यवाद का भी उपयोग न किया। अब इससे स्पष्ट कुछ कहा भी नहीं जा सकता। वे साफ-साफ शब्दों में हर उस व्यक्ति को बता देना चाहते थे, जिसने कभी भी गीता पढ़ी या सुनी हो कि इस शरीर को एक यन्त्र ही जानना। इस प्रकार समझने की भूल कभी भी मत करना कि तुम यह शरीर हो। तुम तो वास्तव में वाहन में बैठे सिर्फ चालक की भाँति हो।

इस शरीर की परिधि तुम्हारी परिधि नहीं है। तुम्हारी परिधि इस शरीर के केन्द्र में स्थित है और यदि इस शरीर को ही अपना अस्तित्व मान बैठे तो बड़ी भारी भूल कर बैठोगे क्योंकि फिर इस शरीर के साथ उत्पन्न होना और इसी शरीर के साथ ही समाप्त होना नियति होगा। जीवन काल में यह भेद खुल जाए कि तुम वास्तव में अन्दर बैठे एक चालक की भाँति हो उससे ज्यादा कुछ नहीं। वह चालक जो इस वाहन को अपनी समझ और अपने स्वभाव से किसी भी दिशा में मोड़ सकता है, इसकी चाल को कम या तेज कर सकता है, अपनी यात्रा किस प्रकार और किस दिशा में तय करनी है और किस मार्ग से जाना उचित होगा यह तय कर सकता है परन्तु यदि वह स्वयं ही वाहन बन बैठा तो वह इसके उपयोग और इसके माध्यम से सुख प्राप्त करने से ज्यादा कभी कुछ सोच भी नहीं पायेगा।

यह वाहन ही कुछ इस प्रकार का है कि यदि इससे उचित प्रकार से कार्य न लिया जाये, तो इसे वृद्धावस्था रूपी जंग, अपने समय से पूर्व ही पकड़ने लगती है। इस वाहन का उपयोग अपने गंतव्य तक पहुँचने के लिए किया जा सकता है परन्तु यदि चालक स्वयं को वाहन समझने लगे तो वो शायद वह वहीं कहीं जाना चाहेगा जहाँ इस वाहन को सराहा जाए, इसे महत्व दिया जाए, इसे सुंदर कहा जाए, और इसकी आवश्यकता पूर्ति की जाए। शरीर के माध्यम से प्राप्त किये जाने वाले सुखों को ढूँढा जाए। वह सिर्फ वाहन को सर्वस्व मानकर, स्वयं को असत्य में घेर लेगा और इस असत्य से बाहर निकलना वाकई मुश्किल होगा।

अत: यह जानना अति आवश्यक है कि वाहन होना अथवा वाहन का स्वामी होना दो अलग-अलग विषय हैं। ये कृष्ण की करूणा ही थी कि उन्होंने, इस सत्य

को बताने में जरा भी देर न की। पहला उपयुक्त समय आने पर ही, उन्होंने इस रहस्य को खोल दिया। अर्जुन जो स्वयं को शरीर मानकर और युद्ध में सामने खड़े शूरवीरों को शरीर मानकर, युद्ध से विरत हो गया था, उसे इस सत्य का ज्ञान होना अति आवश्यक था वरना धर्मयुद्ध अधूरा ही रह जाता। कृष्ण ने शरीर ही इस धर्म युद्ध के लिये लिया, इस संदेश को प्रसारित करने हेतु लिया।

अब वक्त आ चुका था ये बात जान लेने का कि सत्य वह नहीं जो आँखो के सामने है, वरन् सत्य तो वो है जो इसमें कहीं छुपा बैठा है। इसे ढूँढ़ने के लिये, इसे जानने के लिये, इसे पा लेने के लिये प्रयत्न करना ही होगा क्योंकि जो तुम्हें सामने दिखता है, वो तो क्षणभंगुर है। कुछ समय पहले तक इसका अस्तित्व भी नहीं था और कुछ समय पश्चात् भी इसका अस्तित्व न होगा परन्तु सत्य नित्य है, अमिट है, अजर-अमर है।

कृष्ण ने यह रहस्य उद्घाटित करते हुए इस बात की भी समझ दे दी कि यदि चालक को अपनी यात्रा नियत दिशा में उचित मार्ग अपनाते हुए पूर्ण करनी है तो इस यन्त्र को भी स्वस्थ रखना ही होगा क्योंकि इस यन्त्र को पा लेने का भी कुछ कारण अवश्य ही होगा। वरना आत्मा को जो सदैव से ही स्वतन्त्र है, सर्वव्यापी है और आनन्द का स्वरूप है, उसे किसी नश्वर वस्तु में बँधने का कोई कारण ही नहीं है।

उसे स्वतन्त्रता से परतन्त्रता स्वीकार करने के लिये अवश्य ही कुछ न कुछ विशेष कारणों की आवश्यकता रही होगी। कोई भी स्वतन्त्र व्यक्ति परतन्त्र न होना चाहेगा। परन्तु स्वयं आत्मा को शरीर के बंधन में बाँधना होता है क्योंकि कुछ विशेष कर्म हैं, कुछ विशेष कर्त्तव्य हैं, कुछ विशेष मंतव्य हैं, एक विशेष गंतव्य है, इस तक पहुँचना ही होगा और पहुँचने के लिये एक वाहन की आवश्यकता तो अवश्य ही होगी। यह शरीर वही वाहन है, वही यन्त्र है।

इस शरीर को और आत्मा को अलग-अलग ही जानना या विभेद जान लेना, अति आवश्यक होगा। जब हम असत्य को खाने, असत्य को पीने और असत्य को ओढ़ने लगते हैं तब हम इस यन्त्र के प्रति भी लापरवाह हो जाते हैं क्योंकि उस दशा में तो हमें अपने होने के कारण का भी ज्ञान नहीं होता। होता है तो बस दुख और सुख के चक्र में फँसा हुआ एक शरीर, जिसे दुख बार-बार पकड़ता है और वह सुख की खोज में बार-बार इधर-उधर भटकता रहता है।

इस शरीर की स्थिति उस दशा में एक कुएँ में फँसे उस मेढ़क की भाँति हो जाती है जो कुएँ के तल पर दुखों से घिरा, यह प्रयास करता रहता है कि वह इस दुख रूपी कुएँ से बाहर निकल जाये। इस प्रयास में वह अनेक छलांगें लगाता है और हर छलांग के साथ एक आशा जुड़ी होती है, एक सुख जुड़ा हुआ होता है कि शायद यह छलांग मुझे इस कुएँ से बाहर निकाल दे। परन्तु यदि दुख है तो सुख भी वहीं पर है और यदि सुख है तो दुख भी अवश्य वहीं पर कहीं छुपा होगा, आस-पास ही।

इस प्रकार वह स्वयं को इस कुएँ में और अपनी छलांगो के बीच मे, सीमित कर लेता है। परन्तु यदि उसे इस स्थिति का ज्ञान हो कि यह स्थिति ग्रीष्म या शीत निद्रा की है क्योंकि जब बरसात होगी, जब ज्ञान रूपी जल बरसेगा तब यह कुआँ भी उस ज्ञान रूपी जल से लबालब भर जायेगा, तब उसे छलांगो की आवश्यकता न होगी। तब वह पानी का सहारा लेकर ही इस कुएँ के तल पर आ सकता है। वह उपयुक्त समय की तलाश में अपने शरीर को शीत निद्रा के तप में तपाता नहीं, वह बस इस भ्रम में उन प्रयासो के बीच ही दम तोड़ देता है यदि उसे इस सत्य का ज्ञान हो कि यह समय प्रयास का नहीं धैर्य का है। यह समय भी उस ग्रहण की भाँति है जो एक न एक दिन वर्षा के उपस्थित होने पर बीत ही जायेगा और तब इस कुएँ से बाहर आना सहज होगा, सरल होगा।

मनुष्य, सभ्यता के प्रारम्भ से ही इसी भ्रम में जी रहा है कि सत्य शरीर है, कि वह एक शरीर है। कृष्ण का अवतार इसी रहस्य को खोल देने के लिए हुआ कि वह एक शरीर नहीं वरन् उसमें उपस्थित चेतना है। अत: उसे शारीरिक तल पर अपने प्रयास सीमित कर अपने प्रयासों को शरीर के तल से आन्तरिक तल की ओर मोड़ना होगा और तब ये प्रयास वर्षा रूपी ज्ञान के आगमन पर निश्चित ही पुष्पित और पल्लवित होंगे और तब वास्तविक जीवन का प्रारम्भ होगा। तब चेतना अपने मूल स्थान की ओर गमन कर सकेगी जो निराकार, स्वतन्त्र और सर्वव्यापी है। कृष्ण की इस करूणा का, सभ्यता द्वारा कभी भी धन्यवाद न किया जा सकेगा। उन शब्दों को नहीं खोजा जा सकेगा जो वास्तव में धन्यवाद अर्पित कर सकें। परन्तु हाँ, प्रेम द्वारा इस करूणा का उत्तर देना सहज होगा और जब यह सत्य प्रकट हो जाये, इसकी अनुभूति हो जाये तब वास्तविक आन्तरिक यात्रा प्रारम्भ होगी।

बुद्ध का ज्ञान प्राप्त करना वह घटना थी जिसका सम्बन्ध सिर्फ बुद्ध से तब होता जब यदि उसका लाभ सभ्यता को न मिलता। ज्ञान की प्राप्ति पर आगे की सारी यात्रा आन्तरिक यात्रा ही थी। अपने गंतव्य तक पहुँचने की और इस यात्रा को पूर्ण करने में उन्होंने अपना शेष जीवन व्यतीत किया। वास्तव में जीवन की उपयोगिता, स्वयं को इस स्तर पर लाने की ही है कि जीव ये जान जाये कि वह एक चालक है। उस दशा में वह स्वयं को सत्य के लिये एक वाहन अथवा यन्त्र के रूप में प्रस्तुत कर सकेगा। वह चालक तो अवश्य होगा परन्तु उसे निर्देश स्वयं अस्तित्व द्वारा प्राप्त होंगे, वह ब्रह्म का माध्यम होगा जो ब्रह्म के निमित्त कार्यों को सम्पन्न करने में सहायता प्रदान करेगा। जिसे किसी न किसी माध्यम का चुनाव करके करवा लिया जाना था। जीव की पूरी की पूरी सफलता स्वयं को उस स्तर पर लाने की है कि वह एक माध्यम के रूप में चयनित हो सके और इसी अवस्था को ज्ञान की प्राप्ति कहते हैं।

यंत्र के खोये टुकड़ों को ढूँढना ताकि यन्त्र को जोड़ा जा सके

हर व्यक्ति में एक विशेष गुण होता है, जो उसकी विशेषता होती है। यह विशेष गुण उसे किसी कारणवश प्रदान किया जाता है। कई बार व्यक्ति इस बात को जानता है कि उसकी विशेषता क्या है और कई बार वह गुण कहीं छुपा होता है। व्यक्ति की कोशिशों के बाद भी वह गुण प्रकट नहीं होता परन्तु एक विशेष अवसर एक विशेष समय आने पर, वह गुण स्वत: ही सामने आ जाता है। कई बार व्यक्ति को पता होता है कि उसके अन्दर कौन सी विशेषता है? परन्तु उसका उपयोग किस प्रकार करना है, यह वो नहीं जान पाता क्योंकि कदाचित् वह गुण और उसका कर्म क्षेत्र दोनों अलग-अलग होते हैं।

प्रेम, भक्ति और समर्पण के पथ पर चलते-चलते, व्यक्ति के आन्तरिक रूपान्तरण की प्रक्रिया से गुजरते, आध्यात्मिकता के एक तल पर पहुँचने पर, व्यक्ति यह जान लेता है कि वह गुण, वह विशेष गुण कौन सा है और उसकी क्या उपादेयता है? वह गुण उसे क्यों प्रदान किया गया है तथा कैसे वह इसे उपयोग में ला सकता है? यह विशेष गुण गाड़ी में लगने वाले दिशा सूचक यन्त्र की भाँति ही होता है जो यह बताता है किस दिशा में चलना उपयुक्त होगा। चालक को हर एक मोड़ पर संकेत देता है कि किस तरफ मुड़ना, अपने यात्रा के पथ पर निरन्तर बढ़ने के लिए आवश्यक है। किस दिशा में उसका गंतव्य स्थित है व किस मार्ग से जाना उचित होगा?

चालक के इस ब्रह्माण्ड में अपनी उपादेयता के ज्ञात होने के पश्चात, इस शरीर को वाहन रूप में स्वीकार कर लेने के पश्चात, वाहन में उपयुक्त दिशा सूचक यन्त्र के उपस्थित हो जाने के पश्चात, आध्यात्मिक ऊर्जा के सतत् प्रवाह निश्चित होने के पश्चात, अब जीवात्मा अपनी यात्रा प्रारम्भ करने की अवस्था में आ जाती है। उस विशेष गुण को पहचान लेना कुछ उसी तरीके से होता है जैसे किसी चित्र के विभिन्न भागों को जोड़कर एक पूर्ण चित्र बना लेना। यदि कोई भी एक भाग छूट जाये तो चित्र पूर्ण न हो पायेगा, यदि वाहन का कोई यन्त्र ठीक से काम न करे तो उसका प्रभाव पूरे वाहन की कार्य क्षमता पर पड़ता है।

मदर टेरेसा को १९४६ में ३६ वर्ष की उम्र में कलकत्ता से दार्जलिंग जाते हुए वह अनुभूति हुई जिसे वह 'दिव्य अनुभूति' कहती थीं। उन्हें इस ब्रह्माण्ड में अपनी स्थिति और ईश्वर की अपने बारे में योजना का ज्ञान उस यात्रा में हुआ और इस ज्ञान के होने के पश्चात् उन्होंने एक नई यात्रा शुरू की जिसे उन्होंने नाम दिया ''मिशनरीज़ ऑफ चैरिटी''।

यह सेवा मार्ग था जो अत्यन्त गरीब और रोगी प्राणियों की सेवा करने से सम्बन्धित था ताकि उस सेवा में भी ईश्वर को खोजा जा सके। उनकी सेवा के माध्यम से ईश्वर की सेवा की जा सके, उन्हें प्रेम देने के माध्यम से अपना प्रेम वापस ईश्वर को लौटाया जा सके।

उस एक विशिष्ट आध्यात्मिक अनुभव ने मदर टेरेसा को आन्तरिक रूप से पूर्णत: बदल दिया तथा उन्हें वह मार्ग प्रदान किया जिसे वह सदा से ही ढूँढ़ रही थीं। यदि आप ईश्वर की प्रार्थना करते हैं और उस प्रार्थना के बदले कुछ मांगा किया करते हैं, तो सबसे सुन्दर मांग ये होगी कि मुझे पता चल जाये कि मेरे बारे में ईश्वर की क्या योजना है? मेरी उपस्थिति इस ग्रह पर किस विशेष कार्य को सम्पन्न करने हेतु हुई है? वह कौन सा कार्य है जो ईश्वर ने मेरे लिए विशेष रूप से रख छोड़ा है? वह कौन सी विशिष्ट योजना है जिसका भाग मैं हूँ? वह कौन सा विशिष्ट गुण है जिससे मुझे अनुग्रहित किया गया है? आध्यात्मिक यात्रा में यह एक विशेष पड़ाव है, जिसमें आप स्वयं को प्रस्तुत कर देते हैं ईश्वर की उस योजना में सम्मिलित होने को, माध्यम के रूप में। इस विशेष क्षण पर व्यक्ति सत्य की ओर बढ़ जाता है।

प्रेम, समर्पण और स्वाध्याय इस अवस्था तक पहुँचने के लिये विशेष सहायक हो सकते हैं। जब आप, अपनी प्रार्थनाओं में ईश्वर से भक्ति मांगेंगे, समर्पण मांगेंगे, तब अस्तित्व आपको अपनी योजनाओं में एक स्थान दे देता है। ओशो ने कहा कि ईश्वर से कुछ मांगो मत क्योंकि जब भी तुम कुछ मांगोगे छोटा ही मांगोगे क्योंकि तुम्हारी सोच बहुत सीमित है। तुम अपने गाँव को भी अभी ठीक से जान नहीं पाये और मांगते हो उससे जो सृष्टियों का रचयिता है। अत: अपने मांगने को विराम दो क्योंकि जब तुम मांगोगे ही नहीं, तब तुम्हें जो भी मिलेगा तुम्हारी सोच से कहीं ज्यादा बड़ा होगा। न मांगने के साथ ही तुम ये स्वीकार कर लेते

हो कि हे परमेश्वर! मैं एक बहुत ही सामान्य प्राणी ठहरा और ज्यादा सोच भी नहीं मेरी, इसलिए जो भी उचित हो, जितना भी मेरे लिये पर्याप्त हो वो मुझे प्रदान कर देना।

कृष्ण ने गीता में कहा, अपने कर्मों के बदले कर्म फल की इच्छा मत करना। उस परमपिता परमेश्वर से ये उम्मीद न करना कभी, अपेक्षा न करना, मांगना मत क्योंकि जितना भी प्रयास तुमने किया होगा उसके फल के तो स्वत: ही तुम अधिकारी हो, वो तुमसे कोई छीन भी नहीं सकता। जो तुम्हें स्वत: ही प्राप्त होने वाला है उसे तुम्हें मांगने की आवश्यकता ही नहीं।

अत: सिर्फ अपने कर्म पर ध्यान दो, कर्म फल पर नहीं क्योंकि अन्याय तुम्हारे साथ हो नहीं सकता, विलम्ब अवश्य हो सकता है और उस विलम्ब का कुछ प्रयोजन होगा। सृष्टि में यदि पत्ता भी हिलता है तो उसके पीछे कुछ विशेष कारण होता है। अकारण सृष्टि में कुछ भी नहीं होता, यदि कभी विषम परिस्थितयाँ आयें तो कभी अधीर न हो। मान लो कि यह एक बड़ी योजना का हिस्सा है, जिसे तुम अभी समझ नहीं पा रहे हो और उपयुक्त वक्त आने पर तुम्हें इसका भी कारण ज्ञात हो जायेगा।

ईश्वर की सबसे सुन्दर प्रार्थना उससे प्रेम है, प्रेम से बड़ी प्रार्थना कुछ भी नहीं, प्रेम से बड़ी स्थिति कुछ भी नहीं, प्रेम से बड़ी चालीसा कुछ भी नहीं। यदि प्राणी ईश्वर से प्रेम करता है तो उसकी करूणा को कुछ तो जरूर समझ गया और यदि तुम उसकी करूणा को समझ गये तो निश्चय ही उसके अंतस में तुमने अपने लिए कुछ विशेष स्थान तो बना ही लिया और ईश्वर से प्रेम करने के लिये तुम्हें उनकी मूर्ति की भी आवश्यकता नहीं। कृष्ण ने कहा कि हर एक प्राणी के हृदय में मैं स्थित हूँ। अत: यदि किसी भी प्राणी को प्रेम की आवश्यकता है तो तुम उसे प्रेम अवश्य ही देना क्योंकि इस प्रकार से तुम्हारा प्रेम सीधे कृष्ण तक पहुँचेगा।

इस प्रकार से तुम इस सत्य को जान जाओगे कि ईश्वर के दर्शन करने के लिए किसी विशेष आध्यात्मिक घटना की आवश्यकता नहीं। तुम जब चाहो, जिस किसी प्राणी में चाहो, उसके दर्शन कर पाओगे क्योंकि जब भी किसी से तुमने प्रेम किया तो वह सदैव ही कृष्ण तक पहुँचेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। प्रेम करते-

करते एक दिन तुम उस विशेष गुण को भी जान जाओगे तथा उसकी उपस्थिति का कारण भी जान जाओगे। वह कारण जानते ही, तुम उसका पूर्ण क्षमता के साथ उपयोग कर सकोगे, सभ्यता के लिये, सृष्टि के लिये, प्रकृति के लिये।

विचारों का तभी विरोध होता है जब तक विचार अप्रिय होते हैं। जब तक ये लगता है कि विचार अपने ही मन में उत्पन्न हो रहे हों और ये मेरे अपने हैं, मैंने ही इन्हें जन्म दिया तो फिर यदि कोई ऐसा विचार उत्पन्न हो जो अरूचिकर हो तो अन्तस ग्लानि से भर उठता है, परन्तु एक बार ये ज्ञात हो जाने पर कि विचार मेरे नहीं, तब विरोध प्रयोग में बदल जाता है।

अब विचारों का, उनके आवागमन का कोई विरोध नहीं होता क्योंकि अब उनका उपयोग करने की आवश्यकता है। उनका उपयोग आध्यात्मिक यज्ञकुण्ड में आहूति के रूप में, आध्यात्मिक ऊर्जा को उत्पन्न करने के कारक के रूप में होता है। अब उन्हें रोकने की आवश्यकता नहीं, सिर्फ दिशा देने की आवश्यकता है यज्ञ की तरफ, जिसमें वे आहूति के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

भोजन की ऊर्जा के दो निकास द्वार

१. मन की ऊर्जा

२. आध्यात्म की ऊर्जा

यदि शरीर में ऊर्जा को प्रवाहित करने को एक खड़ी पाइप की कल्पना की जाये तो इस पाइप के दो द्वार होते हैं जो इस ऊर्जा को बाहर की ओर निकालने का कार्य करते हैं। यह दोनों द्वार एक दूसरे से कुछ दूरी पर स्थित होते हैं। ऊर्जा के प्रवाह के रास्ते मे जो प्रथम द्वार आता है वह है 'मन का द्वार'। यदि मन का द्वार खुला है तो ऊर्जा पूर्णतया मन के द्वार से शरीर से बाहर निकल जायेगी और थोड़ी बहुत ऊर्जा इस द्वार से निकलने से बची रह जाये जो आगे प्रवाहित हो जाये वह आध्यात्मिकता के द्वार तक पहुँच जायेगी।

जिन लोगों को आध्यात्मिक प्रगति की इच्छा हो, उन्हें मन के द्वार को धीरे-धीरे बन्द करने की कोशिश करनी चाहिए। इससे ऊर्जा का प्रवाह आध्यात्मिक द्वार की ओर बढ़ेगा। आध्यात्मिक द्वार से बाहर निकलने वाली ऊर्जा उन क्षेत्रों को पुष्ट करेगी, जो आध्यात्मिक प्रगति प्रदान करने मे सक्षम हैं। उन अंगों को पुष्टि करेगी, उन चक्रों को जागृत करेगी, जिनकी जागृति प्रगति के लिए आवश्यक है।

जीव जिस वन में विचरण करे वही उसका जीवन है। यदि आपने इसे माया के वन में छोड़ दिया तो यह माया में ही अपनी सारी ऊर्जा और अपना सारा समय लगा देगा क्योंकि माया 'ऊर्जा' की चूषक है। वक्त कब बीत जायेगा, ऊर्जा कब समाप्त हो जायेगी? कुछ पता भी न चलेगा, प्रारम्भ कब हुआ और कब हुआ अंत? इस बीच का कुछ समय इस प्रकार निकलेगा कि जैसे अभी कुछ किया ही नहीं, बस माया के वन में और इसके मार्गों पर इधर-ऊधर चलते रहे जो लगभग गोल-गोल ही चलते हैं। जहाँ से प्रारम्भ करते हैं, वहीं पर लाकर छोड़ दिया करते हैं।

जहाँ से जीवन प्रारम्भ हुआ, जहाँ से आपने माया के वन में प्रवेश लिया, प्रस्थान के समय भी यह आपको उसी के निकट लाकर छोड़ देता है ताकि पुनः आप इसी वन मे फिर आ सकें और पुनः यही चक्र प्रारम्भ करें। इस प्रकार माया जीव के हर एक जीवन काल में उससे चिपक जायेगी और जीव को इसकी भनक भी न लगने पायेगी। यदि स्वयं ही उसने इससे बाहर निकलने का मार्ग न ढूँढ़ा,

स्वयं ही उसने प्रयत्न प्रारम्भ न किया, स्वयं ही उसने माया के मन्तव्य को जानने का प्रयास न किया।

माया भी एक सुन्दर उपकरण है जो विचारों के क्रम में ही उलझाकर जीव के जीवन को जीम (खा) जाता है और यदि जीव ने आध्यात्म के वन में प्रवेश ले लिया तो उसे रपटीला मार्ग न प्राप्त होगा। उसे एक सीधा मार्ग प्राप्त होगा जो उसे अजरता और अजन्मता की ओर ले जायेगा। ऊर्जाओं के इसी प्रयोग को कर लेना आवश्यक है। यही रहस्य है जो इस जीवन मे जान लेना, एक सुन्दर घटना होगी। एक क्रान्ति होगी, जिसके बाद जीवन दो तलों पर चलेगा वाह्य और भीतरी।

आप जान जायेंगे कि वाह्य जीवन, वाह्य जगत जितना विशाल दिखता है उससे कहीं विशाल जीवन स्वयं आपके भीतर स्थित है, जो ज्यादा सहज है और सीधा भी। शरीर आपको विभिन्न रूपों मे संकेत भी देता है कि दो विभिन्न मार्ग आपके पास उपलब्ध है परन्तु आपने सिर्फ एक ही द्वार खोला। दूसरे द्वार के बारे मे भी कुछ सोचना होगा, क्योंकि दूसरे द्वार से ऊर्जा न निकल पाने के कारण एक असाम्यता की स्थिति उत्पन्न हो रही है। इसी कारण भौतिक स्तर पर सुख सुविधायें होने के पश्चात भी व्यक्ति खालीपन, मन मे उद्विग्नता और बेचैनी सी महसूस करता है।

उसे लगता है कि सब कुछ पास में तो है ही परन्तु फिर भी मन में बेचैनी सी है। ये बेचैनी आपको एक संकेत है शरीर के द्वारा, यह बताने के लिए कि जो कुछ भी तुमने मार्ग चुना है वह पूर्ण नहीं है। कहीं कुछ और भी है, जिसपर तुम्हारा ध्यान नहीं जा पा रहा है और ये संकेत मैं तुम्हें इसलिये दे रहा हूँ कि इस बेचैनी से, इस खालीपन से बचने का मार्ग ढूँढो क्योंकि जब तुम मार्ग ढूँढ लोगे तो यह उद्दीपन भी धीरे-धीरे समाप्त हो जायेगा।

असंतुलन की अवस्था में मत रहो, जीवन में संतुलन की आवश्यकता है, संतुलन प्राप्त करो। जीवन के दोनों कोनों में यदि सिर्फ एक कोने का चुनाव तुमने कर लिया तो तुम धरती से ही जुड़े रह जाओगे। धरती से ऊपर उठने के लिए तुम्हें कहीं बीच में आना होगा, कहीं साम्य में आना होगा और तभी ये भाग अपना कार्य सहजता पूर्वक, सुगमता पूर्वक कर पायेंगे वरना जिस कार्य के लिए ये निर्मित हुए,

तुम्हें उस शरीर के पार और वापस फिर पृथ्वी पर लाने के लिए, वह कार्य ही पूर्ण नहीं होगा, इस कारण साम्यता को समझो मध्य में आओ।

यदि तुम्हारे मन के खालीपन को डॉक्टर भी न दूर कर पाये, वो भी तुम्हें कह दे कि कोई कमी दिखाई नहीं पड़ती, जो भी है सिर्फ आपका वहम है और वहम् की दवा तो मेरे पास भी नहीं। जब डॉक्टर भी अपने हाथ खड़े कर दे, तब तुम स्वयं के भीतर झांक कर देख लेना। हो सकता है तुम्हें वहाँ पर उपाय मिल जाये, इसका समाधान वहाँ प्राप्त हो जाये। खालीपन को तुम भरने का प्रयास कर रहे थे उसका मार्ग तुम्हें मिल जाये। खालीपन और उद्विग्नता का कारण ही यह है कि आध्यात्मिक द्वार यह उद्दीपन दे रहा है कि मुझ तक ऊर्जा नहीं पहुँच रही है। पूरी ऊर्जा मन की तरफ ही जा रही है और इस कारण यह शरीर पर भार को बढ़ा रही है। ऊर्जा का प्रवाह यदि मेरे तक आये तो यह उद्दीपन शान्त होने की अवस्था में आ जायेगा।

यह आपके शरीर और आपकी आत्मा का, आपको बताने का एक तरीका है। एक प्रयास है समझाने का, कि इस खालीपन को भर लो जब तक कि यह शरीर है। क्योंकि शरीर प्राप्ति के बाद यदि यह काम नहीं किया तो पुनः यही शरीर लेना पड़ेगा और इस द्वार को खोले बिना आगे की यात्रा सम्भव न होगी। यह द्वार उच्च तलों पर स्थित है, मन का द्वार शरीर के निचले तलों पर स्थित है। उच्च तलों पर स्थित द्वार आपके ब्रह्माण्डिय ऊर्जा से सम्पर्क को बढ़ा देता है, आपका सम्बन्ध ब्रह्माण्डिय ऊर्जाओं व अपने स्त्रोत से साधने का उपक्रम करता है।

मन का द्वार आपको धरती पर बाँधें रखता है और आध्यात्म का द्वार अपने स्त्रोत की तरफ यात्रा करने को कहता है। आध्यात्मिक द्वार कहता है कि तुम सामान्य बने रहने का प्रयास कर रहे हो और मैं तुम्हे दिव्यता की ओर ले जाना चाहता हूँ। तुम बहुत छोटे क्षेत्र में सिमट के रह गये हो और उससे मोह पाल लिया है तुमने तथा इस मोह से छूटने का प्रयत्न अब तुम नहीं करते। जबकि तुम ये भूल गये कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड ही तुम्हारा निवास स्थान है और तुम धरती पर एक बहुत छोटे से बिन्दु में सिमट कर रह गये।

अपने मूल स्त्रोत की ओर चलो, उसका प्रयास करो, उसे जानने को, उसे समझने को, इस यात्रा को करने का मार्ग ढूँढो। तुम सामान्य नहीं, तुम दिव्य हो,

तुम दुख नहीं तुम आनन्द हो, तुम उद्विग्नता नहीं तुम शान्ति हो, यह जानने और समझने की बेला अब आ गयी।

मन में बेचैनी क्यों ?

सृष्टि निश्चय ही नियमों से बँधी है। यह शरीर भी निश्चित ही उन नियमों से बँधा है, जो सबके लिए है। जो इस सृष्टि में उपस्थित हर एक जीव के लिए निश्चित है। परन्तु यदि इन नियमों की उपेक्षा हो अथवा अवहेलना हो तो असामंजस्य के रूप में अधीरता का उत्पन्न होना कोई विशेष बात नहीं। अधीरता तब ही उत्पन्न होती है जब परिणाम की प्राप्ति हेतु हम समय सीमा निश्चित कर देते हैं। निश्चित समय सीमा के साथ हम परिणाम भी अपेक्षित चाहते हैं। अपेक्षा करना कोई बुरी बात नहीं, उम्मीद करना गलत नहीं परन्तु ये मान बैठना कि चीजें उसी प्रकार से होंगी जिस प्रकार से सोची गयी हैं, तो यह हर बार नहीं होता।

गीता मे कृष्ण कहते हैं कि कर्मयोग की शरण लो, कर्म तो करते जाओ पर साथ ही साथ उसे समर्पित भी करते जाओ। समर्पित करने के साथ तुम्हें इस बात का ज्ञान हो जायेगा कि वास्तव में कर्म तुमने कभी किया ही नहीं। कर्म करने की ऊर्जा तो कहीं और से आयी। कर्म किसी और ने किया परन्तु सदैव ऐसा ही भान होता है कि ये मैंने किया। दिन के अन्त में, यदि तुम इसे समर्पित कर देते हो ईश्वर से यह कहकर कि 'आज दिन भर जो कुछ भी हुआ, जो कुछ भी मैंने करने का प्रयास किया वह वास्तव में आप ही कर रहे थे। हाँ, मैं एक माध्यम अवश्य हो सकता हूँ।' और इस प्रकार जान लेने से तुम सदैव जीवन मुक्त आनन्द का अनुभव करोगे क्योंकि तुम इस तत्व को जान जाओगे कि कर्म करना ही तुम्हारे वश में है और कर्म के पूर्ण होते ही तुम उसे भूल जाओगे।

परिणामों के फेर में न पड़ोगे क्योंकि परिणाम तो ईश्वर की इच्छा के अनुसार उचित समय पर उपस्थित हो ही जायेंगे और उनसे लाभ किसे होगा, इसका

निर्धारण भी वही करेंगे। परन्तु यदि लाभ की अपेक्षा में परिणामों की इच्छा की जाये तो अधीरता स्वाभाविक है। एक अभिनेता रंगमंच पर अपनी सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुति तो दे सकता है परन्तु वह दर्शकों से ताली बजाने को तो नहीं कह सकता। उसका अभिनय ही उसके वश में है, जिसमें वह और निखार ला सकता है। यदि अभिनय में वह निखार आ गया हो तो दर्शक ताली तो बजायेंगे ही। यदि अभिनेता ने अपनी बात दर्शकों में पहुँचा दी तो उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप ताली बजनी तो स्वाभाविक है। तालियों की चिन्ता न करो, तालियाँ तो बज के समाप्त हो जायेगीं परन्तु तुम्हारा अभिनय सदैव के लिए मानस पटल पर अंकित हो जायेगा। फिर ताली बजे न बजे, तुम उन्हें अवश्य याद रह जाओगे।

अभिनय के समाप्त होने के साथ ही अभिनेता को यह जान लेना चाहिए कि उसका अभिनय अब अतीत हो चुका है वो समय अब बीत चुका है उसके बारे में अब सोचने से या कुछ अपेक्षा करने से कोई फायदा नहीं। उचित तो यह होगा कि वर्तमान में जिया जाय और वर्तमान में सदैव आनन्द ही है। जिस किसी ने वर्तमान को पहचान लिया, जिस किसी ने वर्तमान का स्वाद ले लिया उसे अतीत और भविष्य में कोई रूचि न रहेगी। समर्पण के पश्चात् तुम्हारे लक्ष्य तुम्हारे न होकर ईश्वर के हो जाते हैं, फिर ईश्वर तुम्हारे लिए लक्ष्य निर्धारित करते हैं अत: अब तुम्हें इसके बारे में क्यों सोचना चाहिए? जब छोड़ दिया तो छोड़ ही दो, उन्हें ही लक्ष्य निर्धारित करने दो, तुम अपना कर्म करते चलो।

इच्छाओं का निषेध नहीं, पूर्ति से आगे का मार्ग

हमें मार्ग वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल ही ढूँढना होगा। वर्तमान युग भौतिकवाद, शहरीकरण, भौतिक संसाधनों पर अत्यधिक निर्भरता। प्रचार संसाधनों द्वारा यह बात मन में कहीं गहरे पुष्टि कर देना कि जो दिखेगा वही बिकेगा। किसी वस्तु के मूल तत्व के साथ ही उसका आवरण भी आवश्यक, पैकेजिंग भी आकर्षक होनी चाहिए। भौतिक विकास की ओर अत्यधिक ध्यान, वैश्वीकरण अर्थात् ग्लोबलाईजेशन।

असंतुष्टि आगे बढ़ने के लिए आवश्यक, ऐसी भावना का होना। सफलता किसी भी कीमत पर हासिल करना जरूरी, चाहे वो सही तरीके से आये या गलत तरीके से। बच्चों का प्रारम्भ से ही अनुकूलीकरण अर्थात् कण्डीशनिंग। उनके सोच-विचार और उनके स्वभाव तक की कण्डीशनिंग। कृत्रिम माहौल, पूरे तरीके से भौतिक। सहजता और सरलता को चूका हुआ मान लिया जाना। सफल होने को तेज होना जरूरी, सिर्फ वाह्य जगत की सिद्धियों पर जोर व उनकी चर्चा, आन्तरिक जगत की तो कोई चर्चा भी नहीं।

अपनी ही जड़ों से धीरे-धीरे कटते जाना, अपनी स्वतन्त्र सोच का भी न होना। सोच भी पहले से ही उपलब्ध, बस उसका वरण करने की आवश्यकता। विभिन्न विचारधाराओं में से किसी एक विचारधारा को चुनने की अपेक्षा। असात्विक भोजन और बीमार विचार। विश्व के कई हिस्सों में धर्म की बेड़ियों को इतना कस के बाँधा जाना कि व्यक्ति साँस भी ना ले सके। वह सिर्फ उतना ही देख सके जितना उसे दिखाया जाये। वह उतना ही सोच सके जितना उसे बताया जाये। वह उतना ही समझ सके जितनी कि आवश्यकता हो।

व्यक्ति को मानसिक रूप से ही जकड़ देना, विचारों को भी उड़ने की आजादी न होना है। अपने स्वतन्त्र विचार का होना भी अस्वीकृत माना जाना या उसे विद्रोह की संज्ञा देना। विभिन्न सामाजिक, पारिवारिक और वैचारिक बन्धन। विचारों की संतृप्ति पा लेना और उसके पश्चात तापमान और दबाव बढ़ाकर, और विचारों को मस्तिष्क मे घोलने का प्रयास करना। इतना कुछ तो है आज हमारे जगत में। अब इतने लोभों, आसक्तियों और लक्ष्यों से बचकर, कोई भीतर देखे भी तो कैसे?

और भीतर भी तो तभी देख सकेगा जब उसे पता होगा कि एक जगत भीतर भी है, ये उसे बताये भी तो कौन? इन अवस्थाओं मे यदि कोई भीतर झांकने का प्रयास करे, अपने आन्तरिक मार्ग को टटोलने की कोशिश करे तो उसको साधुवाद।

कम से कम पहले से बने बनाये मार्ग पर चलने के साथ ही साथ उसने कुछ उन्नत तो सोचा। उसने ये तो सोचा कि ये मार्ग तो पहले से ही बना हुआ है परन्तु निश्चित ही कुछ और मार्ग भी होंगे जिससे आदिकाल में, सैकड़ों साल पहले, हजारों साल पहले, लोग जाते रहे होंगे। वे भी तो अपनी यात्रायें तय करते ही थे निश्चित ही कुछ ऐसे मार्ग होंगे जिनका मुझे ज्ञान नहीं, तो क्यों न उनमें से भी किसी एक को टटोल के देख लूँ, खोजने का प्रयास करूँ।

वह व्यक्ति निश्चय ही खोजी प्रवृत्ति का तो अवश्य ही होगा, उसे बने-बनाये रास्तों पर, लीक पर चलने में कोई विरोध तो नहीं, परन्तु वह और भी चीजें खोज लेना चाहता है। अन्य रास्तों को भी खोल देना चाहता है, जो अभी तक उसने न जाने, न समझे, न कभी किसी ने उसे बताया। उसे वह जानने का प्रयास करना चाहता है। कुछ ब्रह्माण्डिय ऊर्जाएँ अवश्य ही उसे प्रेरित कर रही होंगी। उसका मार्गदर्शन करना चाहती होंगी ताकि वह सिर्फ वही करने में अपने समय को नष्ट न कर दे, जो सारी दुनियाँ कर रही है, उसमें कुछ भी विशेष नहीं। हर व्यक्ति ही अपने लिए लक्ष्य निर्धारित करता है और उन्हें पानें की कोशिश करता है। पूरा का पूरा संसार ही ये कर रहा है।

अब चाहे वो लक्ष्य शिक्षा में हो, समृद्धि में हो, सम्मान मे हो, प्रतिष्ठा मे हो, बल में हो, शक्ति में हो, किसी भी दिशा में हो परन्तु ये सभी तुम्हारे वाह्य लक्ष्य हैं। इस संसार से सम्बन्धित। इसमें तुम्हारा अपना क्या? ये जितने भी लक्ष्य होंगे इन्हें पूरा किया जाये या न किया जाये। समृद्धि पायी जाये या न पायी जाये। सम्मान पा लिया जाये या न पाया जाये, ये तुम्हारे जीवन काल में ही उपस्थित होंगे और तुम्हारे जीवन काल के बाद कौन तुम्हें याद रखेगा और क्यों याद रखेगा? ये इच्छा क्यों हो कि तुम्हें याद रख ही लिया जाए? तुम्हें जितने भी लक्ष्य दिये गये, तुम्हें जितनी भी बातें बतायी गयीं, तुम्हें जो भी विचारधारा दी गयी, सिर्फ इस संसार से सम्बन्धित थी।

लेकिन कभी रूक के ये जानने की कोशिश कर लेनी चाहिए कि मेरा मूल स्त्रोत क्या है? यदि मैं आज यहाँ पर उपस्थित हूँ तो क्यों हूँ? क्या ये सिर्फ एक संयोग है या इसके पीछे कोई कारण है? क्या ये घटना बस ऐसे ही घटित होती है कि इसमें कुछ विशेषता है? क्या ये सामान्य है या खुला रहस्य, या इसमें कोई गूढ़ संदेश है? क्या अपने जीवन में तुम जो सम्बन्ध बनाओगे, सिर्फ इस शरीर के लिए बनाओगे? जो इस शरीर के रहने तक तो तुम्हारे साथ रहेंगे, फिर वो कहाँ लुप्त हो जायेंगे, कभी उन्हें खोज भी नहीं पाओगे। सिर्फ झूठ की नाव की सवारी ही करते रहोगे कि अपने अन्दर कुछ सत्य को भी जानने की कोशिश करोगे?

सम्बन्ध बनाओ, उन्हें निभाओ, उनमें सुख खोजने का प्रयास करो और सुख खोजते-खोजते दुखों को पाओ और पूरा जीवन यही करते-करते बीत गया। उसी लीक पर बीत गया, जिस लीक पर तुम्हारे साथ लाखों-करोड़ों लोगों का बीत गया। कब तक ये सब करते रहने का इरादा है? कब तक, कितने और जन्मों तक? जीवन में जब कभी घोर निशारा का वक्त आये, दुख आये तो क्या ये जानने का प्रयास करोगे कि ऐसा क्यों हुआ? क्या कारण था इसके पीछे या उसे अपनी किस्मत का लिखा मानकर शान्त बैठ जाओगे। हम जिस मुद्रा से व्यापार कर रहे हों उसके एक पक्ष में तो सुख है, दूसरे पक्ष में दुख ही होगा। तो उसमें आश्चर्य ही क्या कि हम पूरे जीवन भर सुख और दुख में ही डूबते-उतराते रहते हैं। सुख कम और दुख उससे कहीं ज्यादा क्योंकि तलाश चलती ही रहती है सुखों की। यदि सुख मिलेगा तो उसके दूसरे पक्ष में दुख ही तो मिलेगा।

ओशो ने कहा कि हर सुख एक दिन दुख में ही बदल जाता है, उसे परिवर्तित होना ही है तुम्हारे रोकने से वो रूकेगा नहीं। उन्होंने पहले ही चेतावनी दी लेकिन व्यस्त इतने थे कि ऐसे बातों पर ध्यान दे भी तो कौन? चलो कभी खाली होंगे और वक्त मिला तो इस बारे में सोच लेंगे। आज तो काम पे जाना है, टारगेट पूरे करने हैं और यदि हम सब अपनी-अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने में ही लगे हुये हैं तो चलो, इच्छाओं को पूर्ण करते-करते ही एक मार्ग ढूँढें इच्छाओं से दूर जाने का। सुख और दुख से दूर जाने का। उस मार्ग की भी झलक ले लेने का, जिसपर सैकड़ों, हजारों वर्ष पूर्व लोग गये थे। इच्छापूर्ति के ही जगत मे जी रहे हैं हम, तो इच्छाओं को पूर्ण करते-करते भी क्यों न सत्य की ही खोज कर ली

जाये क्योंकि अब बचा ही क्या?

शिक्षा ले ली, पैसे कमाये, कम या ज्यादा, समृद्धि आयी कम या ज्यादा, सम्मान आया कम या ज्यादा, तो चलो वह जगत जो सामने दिख रहा है उसमें इतना तो मिला। अब एक जगत जो स्वयं अपने भीतर स्थित है उसमें भी कुछ टटोल ही लें। कुछ प्रयास ही कर लें, कुछ जानने की, कुछ समझ लेने की व्यवस्था ही कर लें। हमारे पास जो भी परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं, उन्हीं के बीच से हमें रास्ता बनाना होगा। जो कुछ भी हमारे पास उपलब्ध है, उन्हीं के बीच से एक साधन तलाशना होगा। योग्य गुरुओं ने इस आन्तरिक जगत के बारे में बहुत कुछ बता रखा है, बहुत सारे रहस्य खोल रखे हैं जो किताबों मे यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं।

क्यों न स्वाध्याय का सहारा ही लें, वहीं से शुरूआत करें। कृष्ण ने तुम्हारे लिए गीता रख छोड़ी है अन्य सभी योग्य गुरूओं ने बहुत कुछ छोड़ा है तुम्हारे लिए। यह ब्रह्माण्ड उनके विचारों से, उनके शब्दों से अटा पड़ा है। यदि स्वयं को योग्य बनाओ तो ये सभी शब्द तुम्हारे लिए ही ब्रह्माण्ड में तैर रहे हैं। ये सभी तुम्हारे लिए उपलब्ध होंगे परन्तु प्रयास तो स्वयं को करना ही होगा, प्यास तो जगानी ही होगी, भूख तो बढ़ानी ही होगी, लेकिन ये प्यास, ये भूख आन्तरिक होगी।

मन बड़े ही रहस्यपूर्ण तरीके से कार्य करता है। दिन भर यह अतीत और भविष्य के काल्पनिक विचारों की रेल चलाता रहता है। साथ ही साथ बुद्धि में उठे कुछ सृजनात्मक और सकारात्मक संदेशों को भी इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि जैसे वह मन में ही उत्पन्न हों और व्यक्ति कहता है कि मन में यह सुन्दर बात आई। मन में यदि सुन्दर बात आई तो यह एक घटना बन गई क्योंकि मन में तो असुंदर बातें ही रहती हैं, व्यर्थ की बातें। इस प्रकार बुद्धि के कार्य को भी मन ने अपना बनाकर प्रस्तुत कर दिया और चेतना ने समझा कि देखो मन कितने सुन्दर विचार उत्पन्न करता है।

दैव द्वारा परिस्थितियों का निर्माण ताकि स्वयं की खोज प्रारम्भ की जा सके

चीजों को यदि तोड़-मरोड़कर अपनी सहूलियत के हिसाब से प्रस्तुत किया जाये, तथ्यों को आधे-अधूरे रूप में प्रस्तुत किया जाये, किसी बात को बोलने में अपनी सहूलियत का ख्याल रखा जाये, सत्य को मूल रूप में न बोलकर उसे इस प्रकार से कहा जाये कि वह अपने पक्ष में प्रतिध्वनि करे। विशेषतया जब आन्तरिक दृष्टि उपलब्ध हो चुकी हो, तब इस प्रकार की क्रिया करने से व्यक्ति स्वयं को सत्य से और दूर कर लेगा। उसे चीजों को परिपेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है। उसे व्यक्तियों में या व्यक्ति विशेष में कोई कमी देखने की अपेक्षा, दैव के संयोग को देखना चाहिये। यह जानना चाहिए कि परिस्थितियों का निर्माण इस प्रकार क्यों किया गया? इसके पीछे क्या कारण छुपा है? इसके पीछे कौन सा संदेश है कि इस प्रकार की परिस्थितियाँ निर्मित हुईं, जो एक सन्देश अपने साथ लेकर आईं।

अब वक्त आ गया है अब जीवन में परिवर्तन की आवश्यकता होगी। इन परिस्थितियों का निर्माण, तुम्हें उस पथ की ओर मोड़ने के लिए किया गया है इसके लिए कदाचित् किसी व्यक्ति का चुनाव कर लिया गया हो परन्तु वह निमित्त मात्र है। उसमें दोष ढूँढोगे तो स्वयं को तथ्य से दूर कर लोगे। व्यक्तियों में दोष न ढूँढो, दैव के संयोग को समझो। उसमें कुछ न कुछ अवश्य छुपा है तुम्हारे लिये। उसे ढूँढ निकालने की आवश्यकता है।

कैकेयी को भगवान राम को वनवास देने के लिये, निमित्त के रूप में, एक माध्यम के रूप में चुना गया। यह कष्टकारी कार्य कैकेयी के माध्यम से हुआ परन्तु यदि यह घटना नहीं होती, जिसमें कैकेयी राम के लिये वनवास की मांग करती तो रामायण कभी भी घटित ही न होनी थी। राम ने उस समय इस बात को तथ्य से समझा, इस दैव संयोग को प्रभु इच्छा मानकर, उन्होंने माध्यम पर ध्यान न दिया अपितु परिस्थितियों के अनुरूप बहने में ही, सत्यता का साथ होने की अनुभूति की। इसी कारण आगे चलकर रामायण जैसा महाग्रन्थ सभ्यता को प्राप्त हुआ।

यदि कैकेयी की हठधर्मिता न होती, यदि कैकेयी ने यह विष स्वयं न धारण किया होता, यदि इतिहास के पन्नों में उन्होंने स्वयं को सदैव एक खलनायिका के

रूप मे देखे जाने की हामी न भरी होती तो रामायण कभी घटित ही न होती। प्रभु श्रीराम के धरती पर अवतरित होने की कार्य सिद्धि भी न हो पाती। कैकेयी ने वही किया जो दैव ने उनसे करवाया और राम ने भी वही किया जो दैव चाहता था, जो ईश्वर की इच्छा थी। उन्होंने अपनी इच्छा का, अपने स्वार्थ का, इसमें कोई स्थान न देखा। वे बस प्रभु इच्छा के साथ बहते गये और इस प्रकार रामायण जैसा ग्रन्थ और मर्यादा पुरूषोत्तम राम सभ्यता को प्राप्त हुए।

व्यक्तियों में दोष न ढूँढो, परिस्थितियों को समझो कि वे निर्मित क्यों हुई? उनमें तुम्हारे लिए कौन सा संदेश छुपाया गया है? व्यक्तियों को ही दोष देते रहे तो घृणा के कुचक्र मे फँसते जाओगे, सिर्फ स्वयं का नुकसान ही करते जाओगे, सत्य से दूर होते जाओगे, क्योंकि इस प्रकार से तुम उस व्यक्ति के ही विरूद्ध अपनी सारी ऊर्जा व्यय करोगे परन्तु यह कभी ना समझ पाओगे कि इन परिस्थितियों का निर्माण किस कारण हुआ? और इन परिस्थितियों के निर्मित होने में तुम्हारे पिछले जन्म के किये गये कर्म अर्थात् दैव का योगदान कैसे है? इस प्रकार से वह कौन सा काम है जो तुम्हारे निमित्त किया जाना है। इस बात को समझने की आवश्यकता है। राम को याद रखने की आवश्यकता है, स्वयं को प्रभु इच्छा पर छोड़ने की आवश्यकता है तथा सृष्टि के प्रवाह के साथ बहने की आवश्यकता है।

अपना विरोध मत करो, प्रवाह के साथ बहो। उसे समझने की कोशिश करो, जानने की कोशिश करो कि क्या है तुम्हारे लिये इसमें, जो अभी तक प्राप्त न हुआ? और जब ये संदेश तुम्हें मिल जायेगा तो इन परिस्थितियों के निर्मित होने का कारण भी तुम जान जाओगे और उसके बाद एक अन्य यात्रा शुरू होगी जो तुम्हारे केन्द्र की ओर तुम्हें ले जायेगी। व्यक्तियों से विरोध का कोई औचित्य नहीं है, परिस्थितियों को समझने की आवश्यकता है।

संसार को और इसमें रहने वाले प्राणियों को दो भागो में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वे जो बाहरी जगत के क्रियाकलापों, इसके कर्मों, इसके विचारों इसकी आपाधापी, इसकी व्यवस्थताओं, इसके व्यवसाय, इसके आकर्षण, इसके मोह, विभिन्न लक्ष्य, उनको प्राप्त करने के तरीके, भौतिक वस्तुओं, सम्बन्धों, स्थानों, समुदायों, धर्मों के क्रियाकलापों में व्यस्त हैं।

दूसरे आन्तरिक जगतवासी, जिन्होंने वाह्य जगत के पार एक आन्तरिक जगत की भी सुधि ले ली है, उसे खोज लिया है। वाह्य जगत में अब वे अकर्ता के रूप में रहने को प्राथमिकता देते हैं तथा आन्तरिक जगत में अपनी प्रगति के बारे में, इसके उपायों, प्रयासों, विभिन्न मार्गों, प्रयत्नों, स्वाध्याय के बारे में रूचि रखते हैं।

वे इस बात को कहीं न कहीं जानते हैं कि उनके भीतर ही एक सम्पूर्ण जगत व्याप्त है, जिसमे बहुत कुछ जानने लायक है, जिसमें बहुत कुछ पाने लायक है, बहुत कुछ समझने लायक है, बहुत सारा प्रकाश है, अब वे इन्हीं की खोज में व्यस्त हैं। इन्हीं को जान लेने के प्रयासों में मग्न है। वे जिन्होंने यह जान लिया है वास्तविक मार्ग बाहर से नहीं, स्वयं के भीतर से जाता है अब वे उसी मार्ग के यात्री हैं।

भौतिक तल पर अध्यात्मिकता किस प्रकार उपयोगी ?

विनम्रता का भाव

विनम्रता सरलता का घोषणा करती है, विनम्रता धैर्य की परिचायक है, विनम्रता अच्छा श्रोता होने के गुण की द्योतक है, विनम्रता एक शान्त मस्तिष्क होने की परिचायक है, विनम्रता एक योग्य ग्राही होने को तैयार करती है। विनम्रता, प्रदान करने में भी आनन्द का अनुभव करती है। विनम्रता झुककर सम्मान देती है, विनम्रता मन में ज्यादा गाँठे न होने की भी परिचायक है, विनम्रता गुरू से सदैव ज्यादा ही पा लेती है, विनम्रता संक्रामक है, विनम्रता अगली पीढ़ियों को एक सशक्त स्तम्भ प्रदान करती है, जिस पर कि भविष्य में भवन का भार सौंपा जा सकेगा। विनम्रता स्वभाव में लचीलापन लाती है, जिससे उसके ग्रहण करने की क्षमता बढ़ जाती है।

विनम्रता को सदैव अधंकार से वरीयता प्राप्त होती है। विनम्रता प्रतियोगिता सरल कर देती है, विनम्रता अहंकार को पिघला सकती है, विनम्रता भगवान को जूठे बेर खाने को विवश कर सकती है। विनम्रता सदैव ज्यादा ही पा लेती है विनम्रता सम्मान को आकर्षित करती है, विनम्रता क्षमा प्राप्त कर सकती है, विनम्रता बाध्य कर सकती है, विनम्रता मन की ग्रन्थियों को ढीला कर सकती है, विनम्रता आकर्षण पैदा करती है, विनम्रता याद रखी जाती है, विनम्रता महत्व प्रदान करती है, विनम्रता भविष्य के द्वार खोल देती है, विनम्रता निन्दा को प्रतिकर्षित करती है।

कठिन समय को व्यतीत करने का वैज्ञानिक तरीका

कठिन वक्त, ग्रहण काल अर्थात स्रोत का कुछ अवधि के लिये बाधित हो जाना, प्रकाश का कुछ समय के लिये अवरूद्ध हो जाना अर्थात् भौतिक कार्यों की सिद्धि में कठिनता। कदाचित शारीरिक और मानसिक कष्ट का होना, प्रयासों का पूर्ण सफल न होना, अच्छी बातों का भी तात्पर्य गलत निकाल लिया जाना। सूर्य जो इस पृथ्वी पर समस्त चल-अचल जगत को, सभ्यता को जीवन प्रदान करता है कुछ काल के लिये उसे भी ग्रहण से गुजरना होता है। यदि इस शरीर और इससे सम्बन्धित कार्यों पर यदि ग्रहण आए तो इसमें विशेष बात क्या?

मन दो ही भावों को तो जानता है सुख या दुख तो यदि किसी अन्य समय पर सुख था तो दुख अवश्य आयेगा। ग्रहण या मुश्किल समय भी उसका एक स्वरूप है। ग्रहण के दौरान एकान्त का सेवन करने की, घर से बाहर न निकलने की सलाह दी जाती है, इसका मुख्य तात्पर्य यह है कि यह एक उपयुक्त समय है, जब घर में बैठकर, कहीं एकान्त पाकर, थोड़ा आत्म-चिन्तन कर लिया जाये। थोड़ा ध्यान कर लिया जाये, स्वयं को विचारों से मुक्त कर लिया जाये।

कष्टप्रद समय में कष्टप्रद विचार आने सम्भव हैं तो क्यों न इस वक्त विचारों को ही त्याग दिया जाये। मन को पूर्णत: खाली कर चेतना को छूट दी जाए ताकि वह स्वतंत्र गमन को उद्धृत हो सके। मुश्किल वक्त है काम पूर्ण होना कठिन है तो क्यों न किसी शान्त जगह पर बैठकर, शान्ति से कुछ ध्यान ही कर लें। मन में उमड़ने वाले विचारों को एक तरफ कर, इसे एकाग्रचित ही कर लें।

यह एक उपयुक्त समय मिला है, क्यों न इसे स्वयं के साथ ही व्यतीत कर लिया जाये। शायद इससे स्वयं को समझने में कुछ सहायता प्राप्त हो सके। ग्रहण के दौरान दिये जाने वाले उपवास का तात्पर्य यह है कि शरीर को उतनी ही ऊर्जा उपलब्ध करायी जाये जितना उसे आन्तरिक अंगों के संचालन हेतु आवश्यक है। एकान्त में तो वैसे भी ध्यान का प्रयोग कर विचारों को अवरूद्ध किया जा रहा है, विचारों से मुक्त होने का, उनसे दूर जाने का प्रयास किया जा रहा है। सो विचार और उसके फलस्वरूप होने वाले कर्मों में व्यर्थ होने वाली ऊर्जा, इस समय अप्रयुक्त है।

शरीर को वास्तव में इस काल के दौरान कम ऊर्जा की आवश्यकता है। धारा विपरीत चल रही है, मन में उमड़ने वाले विचार शरीर को कष्ट दे सकते हैं, इन विचारों से ही मुक्त हो जाया जाए। भोजन उतना ही हो जितनी की न्यूनतम आवश्यकता है। शरीर को भी थोड़ा आराम मिले, पचाने की क्रिया भी थोड़ी शोधित हो सके। शरीर हर रोज किये जाने वाले कार्यों से थोड़ा मुक्त हो सके। भोजन की ऊर्जा न्यूनतम प्राप्त होने पर मानसिक विचारों को भी पर्याप्त ऊर्जा न मिलेगी, घर से बाहर न जाने पर शारीरिक ऊर्जा भी व्यय कम होगी तो उपयुक्त है कि क्यों न इस ग्रहण काल का पूर्ण उपयोग कर, शरीर का ही शोधन कर लिया जाये। मुश्किल वक्त है परन्तु इसके भी तो कुछ फायदे हैं।

तीसरी बात, जब भौतिक तल पर कार्य सिद्धि बाधित है तो क्यों न कुछ आध्यात्मिक यात्रा ही कर ली जाये, क्यों न अपने केन्द्र की ओर गमन करने को समय निकाल लिया जाए। क्यों न कुछ समय भक्ति मे लीन हो जाया जाए। क्यों न इस वक्त उस प्रभु को याद कर लें जो अच्छे वक्त में सदैव सहायता करता है और ये वक्त भी उसी ने दिया। समय अनुकूल होने पर मैं उसे कदाचित भूल भी जाऊँ तो यह उचित समय है जब मैं उसका स्मरण कर लूँ। एकान्त में बैठकर अपने वाह्य सम्बन्धों को एक तरफ रख, अपने शाश्वत सम्बन्ध को थोड़ा प्रगाढ़ ही कर लूँ। समय तो मुश्किल है परन्तु प्रेम साथ है, वो परम प्रेमी भी साथ है, इससे सुन्दर समय और क्या हो सकता है? इस तल का भी पूर्ण आनन्द उठा लिया जाये।

❖❖

मुस्कान का महत्व

मुस्कान आत्मा का हस्ताक्षर है, मुस्कान प्रेम की घोषणा है, मुस्कान सरलता का परिचायक है, मुस्कान सहजता का द्योतक है, मुस्कान साफ मन का परावर्तन है, मुस्कान प्रदूषण मुक्ति का उपाय है, मुस्कान एक सुन्दर उत्तर है, मुस्कान औपचारिकता में अनौपराचिकता का द्योतक है। मुस्कान एक निमंत्रण है, मुस्कान संक्रामक है, मुस्कान आकर्षण है, मुस्कान प्रेम की परिणति है।

भारतीय दुनियाँ भर में सबसे कम मुस्कुराने वाले प्राणियों में से एक हैं। यदि किसी परिवार को आप किसी छुट्टी मनाने की जगह पर भी घूमते हुए पायेंगे तो उन्हें बहुत कम मुस्कराते हुए देखेंगे। सामान्यत: वे मुस्कराहट का प्रयोग बहुत कम करते हैं और घूमते वक्त भी गम्भीर बने रहते हैं। यह बात दूसरे देशों के लोगों को असमान्य लगती है, परन्तु हमने इसे सामान्य मान लिया है।

न हँसने की प्रवृत्ति इतनी सघन हो गयी है, कि यदि कोई हमारी तरफ देखकर मुस्करा भी दे तो हमें लगने लगता है कि यह मुस्करा क्यों रहा है? कहीं इसे मुझसे कोई विशेष काम तो नहीं? कहीं इसके मन में कुछ और तो नहीं चल रहा है? अब हमारे मानसिक द्वन्द और स्वयं के अहंकार से बेहोशी इतनी बढ़ गयी है कि मुस्कराहट को भी हम असामान्य मानने लगे हैं। परन्तु वास्तव में मुस्कराहट असामान्य नहीं, न मुस्कराना असामान्य है।

मुस्कराने की कला भारत से विलुप्त होती जा रही है और यदि इसे सीखना हो तो उन देशों की यात्रा करनी पड़ेगी, जहाँ आज भी यह एक सामान्य घटना है। जहाँ यह सामान्य शिष्टाचार का एक भाग है जहाँ यह दिन भर की गतिविधियों में एक स्थान रखती है। कुछ देश तो स्वयं को लैंड ऑफ स्माइल (मुस्कराहटों का देश) कहलाना पसन्द करते हैं। यदि ऐसे देशों में भारतीय चले जायें तो उन्हें प्रारम्भ में तो विचित्र अवश्य लगेगा, यह प्रतीत होगा कि ऐसी कौन सी विशेष घटना हो गयी कि जिससे इन्हें मुस्कराने की आवश्यकता पड़ रही है? अकारण ही ये लोग मुस्कुरा क्यों रहे हैं? ऐसी कौन सी वस्तु थी जो इन्होंने पा ली कि अब मुस्कराहट सामान्य तौर पर घटित हो रही है। उनके बीच रहकर, उन्हें देखकर, उनसे बातें करकर भी स्वयं के चेहरे पर मुस्कुराहट लाना एक प्रयास बन जाता है। इसके

लिए भी प्रयास करना पड़ता है। यह बात इंगित करती है कि हम भौतिकता में कितने रम गये हैं, हमारा पूरा जोर सिर्फ भौतिक जगत की प्राप्ति और धन कमाना ही रह गया है। सुबह से शाम तक यदि चर्चायें भी रहती हैं तो इसी क्रम में होती हैं और यह इस स्तर तक बढ़ गया कि जीवन की सहज चीजें कहीं पीछे छूट गयी हैं।

मुस्कुराने से सहज क्या हो सकता है परन्तु अब मुस्कुराना भी कठिन लगने लगा है। मुस्कुराना भी एक प्रयोजन लगने लगा है यदि किसी को मुस्कुराते हुए देख लिया तो इसके पीछे कारण की खोज शुरू हो जाती है। कई देशों में भारतीयों को सिर्फ इसलिए असामान्य समझा जाता है कि वो मुस्कुराते बहुत कम हैं। हम सहजता से दूर हो गये हैं, हम स्वयं से दूर हो गये हैं और यदि किसी अन्य प्राणी को, प्रकृति को देखकर मुस्कुराहट भी न आई तो हम ईश्वर से भी दूर हो गए क्योंकि इसका सीधा सा तात्पर्य यह है कि उस प्राणी में स्थित ईश्वर को हम देख ही नहीं पाये।

व्यवसाय जीवन नहीं, जीवन का सिर्फ एक भाग है

एक सभ्यता के रूप में हमने प्रगति तो की, परन्तु हमारी प्रगति संतुलित नहीं रही है, हमारा पूरा जोर वाह्य तलों पर ही रहा है। प्रगति जो प्राप्त की गई, वाह्य तलों तक ही सीमित है और वाह्य तलों पर बन्धन इतना बढ़ गया कि भारत जैसा देश भी, जिसने आध्यात्मिकता का परिचय विश्व से करवाया वह स्वयं ही आध्यामिकता को भूल गया।

अब जीवन एक व्यवसाय हो चला है, अब हम ये भी भूल गये हैं कि व्यवसाय जीवन का सिर्फ एक हिस्सा है, विभिन्न पक्षों में से सिर्फ एक पक्ष। हमने व्यवसाय को ही जीवन समझ लिया, अन्य पक्षों को पूरी तरीके से भूले बैठे हैं। नींद खुलने से रात्रि में नींद आने तक पूरी चर्चा सिर्फ व्यावसायिक जगत के बारे में ही होती है। भौतिक तल पर की गई प्रगति को ही हम मानक मानने लगे हैं। इसका साधारण सा तात्पर्य यह है कि आन्तरिक तल को तो पूर्णत: भूला दिया हमने और वाह्य तलों पर लिप्तता का आलम यह है कि यदि कोई आन्तरिक तल की चर्चा भी करे तो उसमें कम ही लोगों को रूचि होती है।

ऐसे व्यक्ति को शक भरी दृष्टि से भी देखा जाएगा। यदि कोई आन्तरिक यात्रा पर बढ़ने का प्रयास करे और यदि उसका पता समाज को चल जाये तो उस व्यक्ति के परिवार वाले ही उसे विचित्र मान बैठेंगे। भारत जो अपने आध्यात्मिक गुणों के कारण ही विश्व गुरू बन सका था आज उसने अपना नाता आध्यात्मिकता से ही तोड़ लिया।

आध्यात्म यानि आत्म का अध्ययन, स्वयं का अध्ययन, आत्मा का अध्ययन। स्थिति इतनी विकट, इस स्तर तक पहुँच गयी कि यदि एक सामान्य व्यक्ति से उसके जीवन की प्राथमिकताओं के बारे में पूछा जाये तो वह उन सभी चीजों का नाम लेगा जो या तो उसने की है या वह भविष्य में करना चाहता है परन्तु आध्यात्मिकता का, आन्तरिक यात्रा का उसमें कोई जिक्र भी ना होगा, कोई चर्चा भी ना होगी।

❖❖

स्वध्याय की ओर आकर्षण

स्वध्याय, पूर्व सत्यान्वेशियों की अनुभूति को प्राप्त करने का सरल माध्यम है। सत्यान्वेशी अपनी अनुभूतियों को स्वयं तक ही सीमित करके नहीं रखते, वह अवश्य ही उन्हें दसों दिशाओं में बिखेर देते हैं। पुस्तकों के माध्यम से, वचनों के माध्यम से, वे अवश्य ही फैल जाती हैं। व्यस्त दिनचर्या में कुछ पल निकालकर उनसे सम्बन्ध स्थापित कर लेना, अपनी आन्तरिक यात्रा में सहायक ही होगा। अनुभूतियों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना अति मुश्किल तो है परन्तु यह उस मार्ग की झलक अवश्य दे देता है जिस पर सत्यान्वेशी यात्रा करने को तत्पर है।

यह निश्चय ही सम्बन्ध स्थापित कर देता है उनसे, जो महाजीवन की तलाश में है, इसी जीवन में प्रवृत्त हो गये जिन्होंने जीवन को सामान्य तरीके से जीने से इन्कार कर दिया। वे उस दिशा में गये जिस दिशा में भीड़ नहीं जाती। उनकी यात्रायें एकान्त में की गयी, मौन में की गयी, कभी-कभी अभावों में की गयीं, अभीप्सा में की गयीं, स्वध्याय के माध्यम से आप इस मंडली के सदस्य हो जाते हैं। जो आपके इस मार्ग से चलने से पहले ही अति समृद्ध है, अति स्थिर और अति गतिवान भी।

उस परिवार का सदस्य बनने के साथ निश्चय ही अपनी यात्रा में, यत्र-तत्र परिवार के ज्येष्ठ सदस्यों का मार्गदर्शन व सहायता प्राप्त होती रहेगी। आवश्यकता है तो सिर्फ स्वाध्याय की और अभीप्सा की। जब आन्तरिक पात्र भरने लगे तो उसका प्रभाव भौतिक जीवन पर निश्चित ही दिखाई पड़ता है। आन्तरिक यात्रा में निरन्तरता, वाह्य कार्यों की एकाग्रता में सहायक होती है।

आन्तरिक पात्र के धीरे-धीरे भरते जाने से, वाह्य जीवन की अपूर्णतायें व भीतर का खालीपन पूर्ण होता है। व्यक्ति वाह्य जीवन को ज्यादा सामान्य व सहजता में लेने लगता है क्योंकि तब उसे ये बात ज्ञात हो जाती है या इस बात की हल्की-हल्की झलक प्राप्त होने लगती है कि वास्तव में जिस कार्य को वह कर रहा है, वह सिर्फ एक माध्यम के रूप में ही प्रयुक्त हो रहा है।

वास्तव में उस कार्य को करने वाला कोई और है और जो व्यक्ति कर्त्ता न होकर माध्यम हो जाये, जब कर्त्तापन का भाव जाता रहे, लिप्तता जाती रहे तब उसकी पूर्ण ऊर्जा कार्य सिद्धि पर प्रवृत्त हो जायेगी। लिप्तता में व्यर्थ होने वाली ऊर्जा

भी कार्य सिद्धि प्राप्त करने का प्रयास करेगी। आन्तरिक तल पर पूर्णता, वाह्य तल पर भी सम्पूर्णता प्रदान करती है। जैसे गिलास का तेल से पूर्ण रूप से भरा होना, या सिर्फ पानी से भरे गिलास में तेल का ऊपर-ऊपर तैरना।

अपने केन्द्र पर स्थित योगी वाह्य जगत को किस प्रकार आनन्द और प्रेम से भर सकता है इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण तो स्वयं कृष्ण हैं। फिर प्रेम भी मोह के बन्धन से छूट जाता है और उस प्रेम को हर वो व्यक्ति जो सम्पर्क में आये, मार्ग में आये, महसूस करता है। कृष्ण का जीवन ही प्रेम है और प्रेम से बड़ी पूजा दूसरी कौन सी करोगे?

❖❖

सम्बन्धों में प्रेम ज्यादा, मोह कम

मोह एक समस्या है। एक अल्पकालीय आभासीय जाल, जो होश सम्भालने के साथ प्रारम्भ होकर आखिरी साँस रहने तक जीवित रहता है और इस शरीर के साथ ही समाप्त हो जाता है। कभी-कभी ये जीवात्मा के साथ भी, शरीर छोड़ने के पश्चात, रह भी जाये तो वह जीवात्मा के आगे की यात्रा को बाधित करता है। अब चाहे मोह सम्बन्धों में हो या शरीर में, भौतिक वस्तुओं में हो या फिर जीवन में। मोह जिस किसी में भी किया जाये, जिस किसी प्रकार में हो, जिस किसी अवस्था में हो, जिस किसी प्रकार की उसकी उपस्थिति हो, सदैव बन्धन ही देता है। यह माया का ही रूप है जो निश्चित ही अनित्य है।

ईश्वर ने सदैव मनुष्य को स्वतन्त्रता दी परन्तु मोह का आभासीय जाल मनुष्य ने स्वयं अपने चारों ओर बुना। ईश्वर ने प्रेम दिया परन्तु मनुष्य ने उसे मोह में परिवर्तित कर दिया। मोह के पीछे सदैव कोई न कोई कारण स्थित है परन्तु प्रेम अकारण है। मोह बन्धन देता है और प्रेम स्वतन्त्रता। प्रेम गुणातीत अवस्था है और मोह सदैव गुणों से आबद्ध। मोह सदैव प्रेम की आड़ लेकर अन्तस में प्रवेश करता है और अन्ततः अन्तस को जकड़ लेता है।

प्रेम गुणातीत होने के कारण सहजता से केन्द्र की ओर गमन कर जाता है परन्तु मोह सगुण होने के कारण केन्द्र में प्रवेश नहीं कर पाता और जीवात्मा को भी बन्धन प्रदान कर केन्द्र की ओर यात्रा करने में बाधित करता है। प्रेम सदैव समस्याओं को प्रतिकर्षित करता है और मोह सदैव उन्हें आकर्षित।

क्राइस्ट ने कहा कि ईश्वर प्रेम है। आन्तरिक यात्रा में एक स्तर ऐसा भी आता है कि ईश्वर स्वयं ही मोह को दूर कर देते हैं परन्तु प्रेम का प्रवाह तो अनवरत है। इसी कारण ईश्वर आपको पूरी स्वतन्त्रता भी देते हैं परन्तु उस स्वतन्त्रता को प्रदान करने के पश्चात् उनका प्रेम कम नहीं होता परन्तु मोह सदैव बाध्यकारी है और बन्धन देता है। इस कारण कृष्ण ने कहा मोह से दूर हो जाना, अपनी ऊर्जा मोह में व्यर्थ मत करना क्योंकि मोह सिर्फ माया है और प्रेम सत्य।

समाज में हमें सदैव सिखाया जाता है कि मोह करो, अपनो से मोह करो, मोह बनाये रखो। वास्तव में जो लोग ये कहते हैं उन्हें भी मोह के गुण धर्मो के बारे में पता नहीं। यदि उन्हें पता हो कि मोह कष्ट और दु:ख देता है, तो वे निश्चित ही कहेंगे कि प्रेम बनाये रखना, प्रेम के प्रवाह को मत रोकना। परन्तु वे जानते हैं, कि मोह बने रहने में अपना स्वार्थ छिपा है। स्त्री-पुरूष का सम्बन्ध हो तो स्त्री मोह की मांग करती है क्योंकि यदि मोह उत्पन्न हुआ तो फिर सम्बन्ध भी बन्धन हो जायेगा और इस एक बन्धन से पुरूष का छूटना काफी कठिन है, समाजो में। जिन्हें हम प्रेम सम्बन्ध कहते हैं वह वास्तव में मोह सम्बन्ध ही है।

❖❖

समृद्धि खुशी का पर्याय नहीं

जो व्यक्ति अपने भौतिक तलों पर समृद्ध होता है, दूसरे उसे सदैव सुखी समझेंगे। उन्हें लगेगा कि सारी आवश्यकताओं की पूर्ति तो हो ही रही है तो निश्चय ही यह व्यक्ति सुखी ही होगा। परन्तु उस व्यक्ति से पूछा जाये तो वह यह बोलेगा कि अभी भी महत्वाकाक्षायें मरी नहीं हैं। जितना पा लिया उससे ज्यादा पाने की इच्छा है क्योंकि पा लेने को बहुत कुछ है, 'पूरा विश्व ही है'।

चंगेज खाँ अपनी सेना को लेकर निकला और मध्य यूरोप तक पहुँच गया इस क्रम में उसने ६ करोड़ लोगों का कत्ल कर दिया। इतनी भूमि जीतने के बाद भी बहुत सारी भूमि थी, जो जीत ली जानी बाकी थी। वह व्यक्ति जो बाहर से सुखी दिखेगा, उसे भौतिक तल पर स्थित वाह्य कक्षायें अपनी ओर आकर्षित करेंगी, जहाँ पर अभी भी भौतिक समृद्धि को पा लेने की सम्भावना है। साथ ही साथ उसका केन्द्र भी उसको आकर्षित करेगा ताकि वह केन्द्र से कहीं दूर न निकल जाये। अत: वह दो दिशाओं से खिंचाव महसूस करता है, बाहर से और भीतर से।

वह व्यक्ति देखने में भले ही सुखी लगे लेकिन उसके मन में हमेशा द्वंद चलता रहेगा क्योंकि उसकी दो कक्षायें अभी भी असंतृप्त हैं। वह व्यक्ति जो बाहरी जगत में बैठे हुए किसी अन्य व्यक्ति को अत्यंत सुखी प्रतीत होता है, वह वास्तव में द्वन्द में है क्योंकि उस पर उसके केन्द्र का भी प्रभाव है। साथ ही वह भौतिक तलों की कक्षाओं की तरफ भी जाना चाहता है इसलिए आपको अपने आस-पास ऐसे बहुत सारे लोग मिल जायेंगे जो भौतिक तल पर, समृद्धि के तल पर तो सम्पूर्णता के निकट या सम्पूर्ण हैं परन्तु वे फिर भी खुश नहीं हैं।

उन्होंने वाह्य जगत में प्रगति तो कर ली लेकिन उनका आन्तरिक जगत अभी भी सूना पड़ा है, असंतृप्त है, खाली है। जो अन्दर ही अन्दर उन्हें अपनी तरफ खींच रहा है। बाहर सब कुछ भरा-पूरा है, परिवार, सम्मान, धन-धान्य परन्तु अन्दर ही अन्दर एक कमीं, एक अधूरापन, अपूर्णता। यही कारण है व्यक्ति के पास यदि भौतिक सुख-सुविधा यदि एकत्र हो भी जाये तो भी वह उसे पूर्ण खुशी या सुख नहीं दे सकती। क्योंकि वाह्य तलों को तो आप भौतिक वस्तुओं से संतृप्त कर लेगें परन्तु आन्तरिक तल, आपकी चेतना का तल, उसे तो कुछ और चाहिए।

शान्ति पाने हेतु उसे तो जानना ही पड़ेगा, उसे संतृप्त करने हेतु प्रयास करने ही होंगे। इसी कारण यदि एक व्यक्ति अपने वाह्य तलों के साथ-साथ अपने आन्तरिक तलों की चिन्ता कर ले तो वह पूर्णता के कहीं ज्यादा निकट होगा, उन व्यक्तियों से जिन्होंने सिर्फ वाह्य तलों पर प्रगति की है।

दोनो तलों पर काम करने वाले व्यक्ति वाह्य तलों पर सुख तो महसूस करेंगे परन्तु उन्हें आन्तरिक तल के आनन्द की झलक भी प्राप्त होती रहेगी और आंतरिक स्रोत से आने वाला आनन्द उन्हें भी वाह्य जगत में भी प्रसन्न ही रखेगा। इसी कारण कृष्ण ने कहा कि तुम्हें कर्म करते रहना चाहिए क्योंकि यदि तुमने कर्म न किया तो तुम्हारी शरीर प्राप्ति का प्रयोजन भी पूर्ण नहीं होता। बस कर्म इस प्रकार करना कि उसमें लिप्त न होना, उन्हें सदैव मुझे समर्पित करते चलना।

इस तत्व को जान लेना कि तुम जो भी कर रहे हो, वह एक माध्यम के रूप में ही क्योंकि वास्तव में तो करने वाला कोई और है और जब तुम स्वयं को माध्यम के रूप में स्वीकार कर लोगे तो तुम असात्विक गतिविधियों में लिप्त न होना चाहोगे। वाह्य तलों पर काम करते हुए व अपने कर्मों की पूर्णता से तुम जीवन में जो कुछ भी सत्य है, उसे ढूँढ लेना। जीवन में जहाँ कहीं भी प्रेम है, उसे पा लेना। जीवन में जो कुछ अभी आनन्द है उसे समझ लेना।

इस प्रकार तुम्हारा शरीर प्राप्ति का प्रयोजन, वाह्य और आन्तरिक तलों दोनों को संतृप्त कर सकेगा और इस दशा में तुम्हारे पास सब कुछ होते हुए भी तुम दुखी न रहोगे। ये कदापि मत समझना कि ये भौतिक वस्तुएँ तुम्हारे लिए सुख भी खरीद पायेंगी या आनन्द भी ला पायेंगी क्योंकि खुशी तो बाहर से आयेगी, परन्तु आनन्द तो सदैव भीतर से ही आयेगा। खुशी तवे पर एक बूँद के बराबर होगी उसका जीवन उतना ही होगा परन्तु आनन्द की धारा सतत है अविरल है।

प्रतिदिन ईश्वर के नजदीक जाने का उपाय है, परिधि से अपने सारे सम्बन्ध सिकोड़ लो। जिस प्रकार कछुआ अपने सभी अंगों को सिकोड़ कर अपने कवच में ही स्थित हो जाता है, ठीक उसी प्रकार परिधि अर्थात् शरीर के तल पर स्थित सारे सम्बन्धों में मोह रहित रहना। उन कार्यों को छोड़ने का कोई अभिप्राय नहीं, कर्ता रहित रहकर और मोह रहित रहकर उन्हें क्रिया के रूप में करते जाना। जैसे ही परिधि से तुम अपने सम्बन्ध तोड़ दोगे, तुम केन्द्र की ओर खिंच जाओगे।

केन्द्र पर सत्वगुणों की प्रधानता है। केन्द्र पर आते ही समर्पण अर्थात् अपने सभी गुणों को भी त्याग देना और गुणहीन, गुणातीत अथवा गुणों से परे हो जाना। समर्पण की अवस्था में जीवात्मा अपनी बागडोर प्रभु के हाथ में दे देती है और जब बागडोर स्वयं प्रभु के हाथ में हो, तो जगत में उनके आदेशों को पूर्ण करते हुए जीना, यही केन्द्र पर स्थित होना है। दिनभर में यदि कुछ जाने-अनजाने सम्बन्ध परिधि से बन भी गये हों तो ध्यान में वो सम्बन्ध भी टूट जाते हैं। पुन: कछुआ अपने अंगो को सिकोड़ लेता है, इस कारण भक्ति अथवा ध्यान की प्रतिदिन आवश्यकता होगी। ध्यान के प्रयोग द्वारा व्यक्ति पुन: केन्द्र पर आ जाता है।

❖❖

वाह्य सम्बन्धों पर निर्भरता कम
परम सत्य पर ज्यादा

दुनिया में कष्ट देने वाले सबसे प्रमुख बंधनों में से एक है 'सम्बन्ध'। फिर सम्बन्ध चाहे बच्चों का माता-पिता से हो, पति का पत्नी से हो, कुछ सामाजिक सम्बन्ध हों या फिर मित्रता। इनमें भी वो सम्बन्ध सबसे ज्यादा कष्ट देते हैं जिनमें मोह सबसे ज्यादा होता है। उस सम्बन्ध में जिसमें जितनी मोह की मात्रा ज्यादा है यदि दुख प्राप्त होता है तो वह दुख भी सबसे प्रबल, सबसे विनाशकारी। जब कभी भी आप किसी से मोह जोड़ लेते हैं तो उसे अपने भावनाओं की और अपने मन की चाभी थमा देते हैं, अब यह उसके ऊपर है कि वह किस प्रकार से इस चाभी का इस्तेमाल करता है।

इसका उपयोग सुरूचिपूर्ण तरीके से भी किया जा सकता है और विनाशकारी भी हो सकता है क्योंकि वह व्यक्ति यदि अपने अहंकार से पीड़ित होकर प्रतिक्रिया करता है तो उस प्रतिक्रिया का प्रभाव सबसे ज्यादा उस व्यक्ति पर पड़ता है जिसने उसके साथ अपना मोह जोड़ लिया और यदि कहीं वह उस व्यक्ति विशेष के ही

विरूद्ध हो जाये तो यह अत्यन्त हानिकारक है। यह मनुष्य को पूरे तरीके से तोड़ देता है। फिर आपने वाह्य जगत में, अपनी यात्रा में जो कुछ भी कमाया, जो कुछ भी अर्जित किया, वो सब कुछ एक तरफ और वह महान कष्ट एक तरफ। यह कष्ट भी सिर्फ इस कारण उत्पन्न हुआ कि जाने-अनजाने में, आपने अपना मोह, उस एक व्यक्ति से जोड़ लिया।

उस एक व्यक्ति की क्रोध भरी प्रतिक्रिया आपके अन्तस को छिन्न-भिन्न कर सकती है। आपके चित्त के शान्त जल में अनियन्त्रित प्रचण्ड लहरें पैदा कर आपके चित को तहस-नहस कर सकती है और इसका कारण सिर्फ एक है कि आपने अपनी भावनाओं को उस व्यक्ति को यह सोचकर सुपुर्द कर दिया कि अवश्य ही वह इसका ख्याल रखेगा। मन जो स्वयं के नियन्त्रण में भी नहीं आता, उस मन को भी उसके हवाले कर दिया कि अब जिस प्रकार से चाहो इसे चलाओ, अब तुम जो कहो वही मेरी क्रिया होगी। अब तुम जो कहो वही मेरे लिये सत्य होगा, अब तुम जो कहो, वही मेरे लिए आदेश होगा ।

अपने मन की चाभी उसे देते हुए भी ये न सोच पाये कि जिसे चाभी दी वह भी अस्थिमज्जा का बना एक पुतला ही है, अहंकार से भरा पुतला। उसने अभी तक स्वयं को ही नहीं पहचाना तो मेरी भावनाओं को, मेरे मन को, किस प्रकार से पहचानेगा? कभी न कभी तो ठेस लग ही जायेगी। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे कि शेर को हिरन की रखवाली करने के लिये छोड़ दिया। एक शेर जो भूखा होने पर शायद ही कभी सोचे कि मैं रखवाली कर रहा हूँ। अत: इसमें कुछ तो कर्तव्य है, मेरा कुछ उत्तरदायित्व है, रक्षित की कुछ भावनाये हैं। भूख लगने पर शायद ही वो कभी सोच पायेगा तो मोह जोड़ने पर कष्ट होना तो स्वाभाविक है विशेषत: उस व्यक्ति से जो स्वयं अहंकार से भरा हुआ है।

यहाँ तो पहला कदम ही गलत पड़ गया, मार्ग ही गलत चुन लिया। मार्ग गलत चुना तो चुना, पहला कदम ही कीचड़ में रख दिया। गलत मार्ग चुना तो सही, पर हो सकता है कि पैर सम्भल-सम्भल के रखते तो कुछ दूर तक तो चले जाते या शायद वही मार्ग आगे चलकर सत्य मे मिल जाता परन्तु मार्ग भी गलत चुना और पहला पैर ही रखा तो दलदल में। यह तो दु:ख को स्वयं निमंत्रण देने जैसा है। यह महान कष्ट को स्वयं निमंत्रित करना नहीं बल्कि उसके सामने खुद जाकर खड़े

हो जाना है कि जब इच्छा हो, मार लो मुझे।

जीवन में यदि कभी मोह जोड़ने की आवश्यकता पड़ भी जाये तो उससे जोड़ना जो सत्य के सबसे ज्यादा नजदीक हो, जिसका अहंकार शून्य हो। कम से कम तुम्हारे प्रति तो शून्य ही हो और जिसे प्रेम और व्यापार के बीच का भेद पता हो। इस दशा में वो तुम्हें कष्ट न पहुँचायेगा परन्तु यदि गलत जगह मोह जोड़ा तो परिणाम भुगतना होगा। आन्तरिक तल के यात्री सबसे पहले मोह से ही पीछा छुड़ाते हैं। वे कहते हैं कि मोह की आवश्यकता ही नहीं।

कृष्ण ने कहा कि प्रेम करो, प्रेम सर्वथा सहज उपलब्ध है। ये इतनी मात्रा में है कि हर एक व्यक्ति जो तुम्हारे सामने है, हर एक पशु, हर एक वृक्ष, तुम उन सभी को प्रेम समान रूप से दे सकते हो। मोह की आवश्यकता नहीं, स्वयं ईश्वर भी तुम्हें मोह करने की सलाह न देंगे। वो कहेंगे कि प्रेम करना। यदि आपके लिए भौतिक जगत में बहुत कुछ पाना बाकी हो, बहुत सारी इच्छायें अपूर्ण हों, बहुत सारे लक्ष्य हों जिन्हें कदाचित् पूरा कर लिया जाना आवश्यक हो तो अवश्य करना परन्तु मोह किससे लगाना है इसका चयन बहुत सावधानी से करना। किसी को अपने मन की तिजोरी की चाभी न देना और यदि देना ही पड़े तो उसके पहले उसकी पात्रता अवश्य जाँच लेना। भावनाओं में आकर अपने भावों को ठेस न पहुँचने देना।

सत्य से चलोगे तो आगे बढ़ोगे ही असत्य के साथ गये तो कहीं पीछे चले जाओगे

एक बार राजू ट्रैफिक में विपरीत दिशा से आ रहा था। सोनू ने उसे रोका पूछा ये क्या कर रहे हो? उसने कहा भीड़ ज्यादा है अगर नियम से चला तो वहीं खड़ा रह जाऊँगा। सोनू ने कहा, नियम से चले तो कुछ देर वहाँ जरूर खड़े रह जाओगे लेकिन निकल भी जाओगे इसकी भी गारण्टी है लेकिन यदि गलत राह पकड़ी और एक्सीडेन्ट हुआ तो २-३ साल तो पीछे चले ही जाओगे। सोनू सही था अगर सत्य के साथ चलोगे तो हो सकता है लेट हो जाओ लेकिन पहुँच जरूर जाओगे। ट्रैफिक में कोई तुम्हे रूकने न देगा लेकिन यदि असत्य के साथ गये तो कहीं पीछे चले जाने की बहुत सम्भावनायें हैं।

नियम बहुत साफ है अपने खेत में तुमने जो बोया तुम उसे ही काट सकते हो। यदि किसी और के खेत में, उसके अन्न को काटने की कोशिश करोगे तो समस्या अवश्य आयेगी। यदि तुम कुछ गलत कर रहे हो किसी गलत तरीके से कुछ पैसा कमाया और लाभ लिया, कई बार दोहराने पर भी पकड़े न गये तो याद रखना एक बार जब इसका हिसाब होगा तो चुकाना कहीं ज्यादा पड़ेगा। यदि भरोसा नहीं तो कुछ वर्ष करके देख लो। प्रकृति बड़े साधारण और अटल नियमों पर चलती है जो तुमने किया उसी का फल मिलेगा किसी और के कर्म का फल तुम्हें न मिलेगा।

यदि तुमने कुछ ऐसा किया जिससे किसी को कुछ नुकसान हुआ, कष्ट पहुँचा, जानते-बूझते अन्याय किया तो अपने साथ न्याय की उम्मीद मत करना। यदि भौतिक जगत में तुम्हारी रूचि है तो इसमें कुछ गलत नहीं। पाओ-जो पाना है, करो-जो करना है। लेकिन कुछ नियमों को भूलना नहीं। कुछ एक नियम अपने लिए अवश्य बना लेना। उन्हें न लाँघना तुम्हारी स्वतन्त्रता जहाँ तक है, तुम उसमें कुछ भी कर सकते हो परन्तु किसी और की स्वतन्त्रता का हनन हो, वहाँ से स्वयं को समेट लेना ही उचित।

न्यायपूर्ण तरीके से कमाये गये धन और समृद्धि सन्तोष देती है परन्तु अनुचित तरीके से कमाया तो लाभ अवश्य होगा परन्तु उसकी भरपाई कभी न कभी तो करनी

ही पड़ेगी। इससे बचना मुश्किल है, इस जन्म में या अगले जनम में लेकिन करना अवश्य पड़ेगा। यदि अपने भौतिक जीवन को सत्यता से जिया, तो आज नहीं तो कल ईश्वर की कृपा होगी ही और वे तुम्हें आन्तरिक पथ की ओर, सत्य की ओर, अग्रसर कर देंगे परन्तु यदि भौतिक जीवन में ही ऊँच-नीच की गई, तब यह यात्रा अवश्य ही लम्बी खिंच जायेगी।

ईश्वर ने तुम्हें पूरी स्वतन्त्रता दी है, हर किसी को दी है, उस स्वतन्त्रता के दायरे में, तुम जो करना चाहो कर सकते हो लेकिन किसी और की स्वतन्त्रता हनन के बारे में सोचना भी मत। हनन करना तो दूर की बात है क्योंकि वह सोच भी तुम्हारे अन्तस पर एक रगड़ पैदा कर देगी जिससे छूटना ही होगा, आन्तरिक यात्रा के दौरान। कभी गलती से मानसिक रूप से भी हिंसा मत करना क्योंकि उसका परिणाम तुम्हें स्वयं भुगतना होगा वो किसी और को तो नुकसान नहीं पहुँचायेगी लेकिन तुम्हारे मन को जरूर एक जगह पर खरोंच देगी और स्वयं को नुकसान पहुँचाना कोई समझदारी नहीं।

जीवन में सुख प्राप्त करो, सुख का कोई विरोध नहीं है परन्तु तुम्हारा सुख किसी और की शान्ति के मूल्य पर नहीं आना चाहिए। किसी और को कष्ट देकर नहीं आना चाहिए। किसी और को दुख प्रदान करके न प्राप्त हो सुख, यदि कोई सुख प्राप्त हो भी तो उसे वहीं उसी वक्त त्याग देना उचित है क्योंकि सुख तो बहुत कम समय के लिए होगा लेकिन उसके दुख की अवधि ज्यादा हो जायेगी। अपनी भौतिक यात्रा में तुम्हें वो सब करने की आजादी होगी और ईश्वर तुम्हें आजादी देते हैं।

जिसे तुम जान लेना चाहो, हर भौतिक वस्तु को समझ लेना चाहो, इसमें किसी का विरोध, किसी का कोई हस्तक्षेप नहीं है, स्वयं ईश्वर भी तुम्हें नहीं रोकते परन्तु अपने लिए समस्यायें तुम जरूर पैदा कर लोगे, जब किसी अन्य को बाधा पहुँचायी। जीवन को पूर्ण आनन्द से जियो, पूर्ण रस के साथ जियो, पूरी मग्नता से जियो, पूर्ण रूप से भीगकर स्वयं को आत्मसात करके जियो परन्तु बस इतना ध्यान रखना कि किसी और को हानि न पहुँचे।

कभी तुम्हारे सुख से किसी को दुख हो जाये तो इसमें उसकी परेशानी। यदि तुमने दुख न दिया और फिर भी कोई व्यक्ति दुखी महसूस कर रहा है तो वह अपने मस्तिष्क मे उठने वाले विचारों से परेशान है। तुम्हें बस इतना देखना होगा कि जानते बूझते किसी से, किसी के प्रति कुछ गलत, कोई अन्याय न हो जाये। बस इतना ही काफी होगा।

❖❖

असत्यता में लिप्तता में कठिनाई

जितने आप केन्द्र और इसके आवेशित क्षेत्र के प्रभाव में होंगे, उतनी ही कठिनाई होगी वाह्य तलों के लोभ से स्वयं को जोड़ने में। एक परमाणु के सबसे बाहर की कक्षा में घूमते इलेक्ट्रॉन्स पर अन्य परमाणुओं और अणुओं का प्रभाव, केन्द्र की पास की कक्षा में उपस्थित इलेक्ट्रानों से कहीं ज्यादा होता है। केन्द्र के पास के इलेक्ट्रॉन अपने केन्द्र से ज्यादा सुदृढ़ रूप से बँधे होते हैं और वाह्य कक्षा के इलेक्ट्रॉन्स अन्य प्रभावों में भी घिरे हुये होते हैं। ठीक इसी प्रकार से शरीर और इसके केन्द्र अर्थात् आत्मा पर भी यही व्यवस्था देखी जा सकती है।

असहज सम्बन्ध जो लोभ से जुड़ा हो, ऐसे लोभ से जुड़ने से पहले अवश्य ही मानसिक द्वंद तीव्र हो जायेगा। ऐसी किसी भी वस्तु से, ऐसे किसी भी प्रयास से स्वयं को जोड़ना निश्चय आसान न होगा। तो वाह्य जगत में होते हुए भी माया से और विशेषत: वह माया जिसके कर्मफल के बन्धन कहीं ज्यादा मजबूत हैं, उनसे जुड़ने में सदैव ही कठिनाई हो सकती है।

एक सूचना पहले ही प्राप्त हो जाया करेगी कि यहाँ पर गडबड़ है, कुछ असत्य है, कुछ असहज है, कुछ ऐसा है जिसे छोड़ देना ही उचित। इसमें रस लेने की आवश्यकता नहीं, नहीं तो नहीं। इस दशा में इन विकृत लोभों में फँसने से स्वयं को बचाया जा सकेगा, इसकी सम्भावना तो निश्चित रूप से ज्यादा ही होगी। वास्तव में आध्यात्मिक तल निर्णय लेने में सहायक सिद्ध होता है। विशेषत:

वे निर्णय, जो भौतिक तलों से जुड़े हुए होते हैं। आध्यात्मिक तलों पर उनका कोई विशेष महत्व भी नहीं परन्तु फिर भी क्योंकि सत्य सभी बन्धनों से परे है तो वह भौतिक तलों पर भी, लिये जाने वाले निर्णयों में अपनी भूमिका खोज ही लेता है।

लोभ होना तो एक समस्या है ही परन्तु उस असत्यता से भी कौन जुड़ना चाहेगा जिसमें कुछ अपना लोभ भी न हो। एक फार्मूला वन रेस होने से कुछ दिनों पहले से ही सभी चालक उस ट्रैक पर अपनी गाड़ियाँ दौड़ाना शुरू कर देते हैं ताकि उस ट्रैक के हर कोने से वे परिचित हो सकें। वे जान सकें कि कहाँ पर मोड़ है? कहाँ पर रूकना होगा? कहाँ गाड़ी तेज की जा सकती है और किस स्थान पर कुछ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होगी? परन्तु आपको जीवन में ये सुविधा उपलब्ध नहीं है। आप जीवन जीने से पहले अभ्यास नहीं कर सकते उस पूरे जीवन को एक अभ्यास रूप में जीकर, कई अभ्यास करने के पश्चात, आप वास्तव में जीवन में नहीं उतर सकते। जीवन तो बस घटित होता है।

आपके आध्यात्मिक तल पर उपस्थित चेतना, वास्तव में उस अनुभव की साक्षी बनकर आपका मार्गदर्शन अवश्य कर सकती है क्योंकि चेतना के साथ जुड़ते ही आप उसके पूर्वजन्मों के अनुभवों से भी जुड़ जाते हैं। जाने अनजाने अवश्य ही वो अनुभव उपस्थित होते हैं, यदि आप केन्द्र के ज्यादा नजदीक हों। एक संकेत कहीं न कहीं से अवश्य प्राप्त हो जाता है। अन्त में यह बात उभर ही आती है कि इस कार्य को कर लेना उचित और इसे छोड़ देना उचित। कुछ कम लाभ हुआ तो भी कुछ बुरा नहीं परन्तु यदि लाभ भी ज्यादा हो और उसमें हानि की सम्भावना भी ज्यादा हो तो बेहतर यही है कि हानि की सम्भावना से बचें। कुछ कम में ही सही परन्तु हानि तो न होगी।

आपका आध्यात्मिक तल आपके मार्गदर्शन के लिये उपस्थित होगा यदि आप इसके ज्यादा नजदीक होंगे। विशेषत: ऐसी स्थितियों मे, जहाँ असत्यता में लिप्त होने की सम्भावनाएँ ज्यादा हो, निश्चय ही आपका आन्तरिक स्त्रोत आपको मना करेगा, आपको चेतावनी देगा कि रहने दो। ये अगर न भी किया तो कोई फर्क न पड़ेगा। इसमें हानि ही होगी, तुम्हारा लोभ इसे अवश्य ही कर लेना चाहता हो लेकिन यह जान लेना कि कुछ लाभ न होगा, पीछे चले जाओगे। तुम्हारी यात्रा लम्बी हो जायेगी

और कष्ट जो इसके कर्म बन्धनों के साथ आयेगें वो तो अलग ही होंगे। आध्यात्मिक तल उस दूर संवेदी यंत्र के समान होगा, जो दूर से ही आने वाले शत्रु जहाजों का पता लगाकर सूचित कर दे, कि अपनी तैयारी पूरी रखो समस्या आ सकती है।

❖❖

वाह्य जगत एक खेल है, इससे ज्यादा कुछ नहीं

बुद्ध व्यक्ति के लिए यह जगत उसी प्रकार है जैसे छोटे बच्चों के समूह का खेल। वह उसमें भाग लेकर करेगा भी क्या? उसका निंलिप्त भाव से खेल का अवलोकन करना ही उचित है। खेला जा रहा यह खेल, वह पहले ही खेल चुका है। इस खेल का अनुभव उसे है, इस खेल को पार करके ही वह बड़ा हुआ है। बुद्धि का उपयोग करके खेले जा रहे खेल का अवलोकन अब वह बुद्धि के पार जाकर कर सकता है। वह ज्यादा तटस्थ है, अब इस खेल में कौन जीते और कौन हारे इससे उसका कोई प्रयोजन नहीं है। वह सिर्फ अच्छे को अच्छा और सामान्य को सामान्य ही कह सकता है। वह अपने अनुभव ही बता सकता है सुझाव दे सकता है कि इस खेल को किस तरीके से और बेहतर ढंग से खेला जाये ताकि इस स्तर को पार कर अन्य बड़े खेलों की ओर गति हो जाये। वह इसके बारे में अपने अनुभव, अपनी अनुभूतियाँ बाँट सकता है। यदि कोई बालक अपने खेल के बारे में या इस खेल के नियमों के बारे में या इसके चरम के बारे में जानना चाहे तो निश्चय ही उस व्यक्ति से सम्पर्क कर सकता है।

यदि व्यक्ति साथ-साथ अपनी आन्तरिक यात्रा पर अग्रसर है तो वाह्य जगत के इस खेल में वह अपनी पूर्ण ऊर्जा तो देगा परन्तु कहीं न कहीं उसमें निंलिप्तता का भाव भी आ जायेगा, इसके परिणाम के लिए। अब जीत उसे सातवें आसमान पर न पहुँचायेगी और हार उसे पाताल पर न पहुँचायेगी। जीत के हर्ष में वह कोई गलती न कर बैठेगा और हार का गम भी उसे कम महसूस होगा क्योंकि कहीं न कहीं वह भीतर से यह जानता होगा कि यह मात्र एक खेल ही तो है।

अब खेल का खेलना, उसका अनुभव लेना, अब उसके लिए ज्यादा महत्वपूर्ण होगा, परिणाम गौंण हो जायेंगे। आन्तरिक जगत का यात्री अब इस बात को जान गया कि सिर्फ वही, जिसे हम अपनी दोनों आँखों से देख पाते हैं, वही उपलब्ध नहीं है परन्तु एक दुनियाँ उसके स्वयं के अन्दर भी है, जिसमें बहुत कुछ जानना, समझ लिया जाना और पाना बाकी होता है।

वाह्य जगत का व्यक्ति इसलिए अपनी पूरी ऊर्जा के साथ अपनी भावनाओं को समग्रता से उसमें झोंक देता है क्योंकि उसे लगता है कि सिर्फ एक यही तो चीज है, जिसे पाया जा सकता है इसके अलावा कुछ भी नहीं परन्तु ये उसकी अल्पज्ञता है।

इसी कारण आध्यात्मिक व्यक्ति, अपने कार्य को तो करते रहते हैं परन्तु उन्हें इस बात का भी ज्ञान होता है कि अति हर्ष और अति शोक की भी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि इन दोनों से वस्तुत: स्थिति में कोई परिवर्तन न किया जा सकेगा। घटनाएँ जैसे घटनी हैं, वैसे ही घटेंगी। अपने प्रयास जरूर किये जा सकते हैं और वह प्रयासों में कमीं न रखेगा। उसके लिए शोक अत्यन्त गहरा न होगा।

उसके लिए खुशी अत्यन्त फलदायी न होगी। वह कहीं न कहीं मध्य में खड़ा होगा क्योंकि वो जानता है कि इन दो किनारों के बीच, हर्ष और विषाद के बीच में एक संयमित धारा भी है, एक शान्ति की धारा भी है। जिन्हें उसके बारे में नहीं पता, वे हर्ष और विषाद के इन दोनों छोरों पर आते-जाते रहते हैं।

परन्तु वो जो बीच मे ठहर जाते हैं उस एक स्रोत की खोज कर लेते हैं उन्हें नदी के दोनों किनारों से कोई विशेष लगाव नहीं रह जाता। वे तो नदी के प्रवाह के साथ बहते चले जाते हैं। नदी के दो किनारे तो सदैव दो किनारे ही रहेंगे, मिल न पायेंगे परन्तु इस किनारे से उस किनारे तक पूरी नदी का अस्तित्व सिर्फ एक ही है, उसे सिर्फ नदी ही कहा जाता है।

एक एम्पायर खेल को ठीक प्रकार से संचालित कर सकता है। उसमें भाग नहीं ले सकता। यदि वह भाग ले तो वह एम्पायर नहीं रह सकता। यदि कोई खिलाड़ी एम्पायर बनना चाहे तो उसे खेल छोड़ना होगा। क्यूँकि खेल में भाग लेने के कारण वह तटस्थ नहीं रह पायेगा परन्तु आवश्यकता पड़ने पर यदि किसी

खिलाड़ी की आवश्यकता हो और यदि एम्पायर अपनी निर्लिप्तता के प्रति आश्वस्त हो। वह तटस्थ होकर खेल सके, खेल में सम्पूर्ण योगदान दे सके व साथ ही एम्पायर की भूमिका निभा सके तो विशेष परिस्थितियों मे वह ऐसा कर सकता है।

❖❖

प्रथम मुलाकात में ही अन्तस को छूने की कला जागृत

केन्द्र पर निर्गुण अनावेषित क्षेत्र सबसे मध्य में स्थित होता है और उसके चारों ओर धनात्मक आवेषित क्षेत्र । इस प्रकार केन्द्र की तरफ बढ़ते हुए सत्व गुणों की सघनता होती जाती है।

सत्वगुण अर्थात् धनात्मक गुण। वे सभी शरीर जो अभी अपने वाह्य तल पर स्थित हैं वाह्य जगत की गतिविधियों मे अत्यन्त उलझे हैं-व्यग्र है। उलझाव है कि सुलझने का नाम नहीं लेता और जैसे-जैसे केन्द्र से दूरी बढ़ती जाती है व्यग्रता भी बढ़ती जाती है।

इसी कारण वह व्यक्ति, ऐसे व्यक्ति की तरफ सहज रूप से ही आकर्षण महसूस करता है जिसमे धनात्मक गुणों की प्रधानता हो जिसमें वह व्यग्रता कम दिखाई दे। जिसमें वह छल कम दिखाई दे व मोह कम दिखाई दे, लोभ हिलोरें न लेता हो, कम से कम अनियंत्रित रूप से। जिनमें प्रेम की प्रधानता हो गयी हो प्रेम उपलब्ध हो और जब ऊर्जा स्वाधिष्ठान से अनाहत व विशुद्धि चक्र पर पहुँचे तो बातों में सौम्यता झलकनी शुरू हो गयी हो। ऐसे व्यक्ति की तरफ आकर्षण होना उसकी तरफ दृष्टि चले जाना, मन का खिंच जाना, कोई बहुत असहज बात नहीं है।

कुछ ऐसे गुण हैं जिनका भौतिक तलों पर भी उपयोग हो सकता है। कदाचित् कई कार्यों में, कई व्यवसायों में, साफ्ट स्किल्स की आवश्यकता होती हैं, इस प्रकार यदि साफ्ट स्किल्स बाहर से रोपी न जायें परन्तु अन्दर से ही उत्पन्न हो

तो ये ज्यादा जीवन्त प्रतीत होंगी और इसका फायदा वाह्य तल पर होगा। हर मिलने-जुलने वाला व्यक्ति एक जुड़ाव सा महसूस करेगा। कुछ सहजता महसूस करेगा क्योंकि अहंकार बाहरी तल पर उसके जुड़ाव को रोक न देगा, उसे सतत् बहने देगा भीतर तक।

प्रेम जो अन्दर से प्रवाहित होगा वो सामने वाले तक पहुँचेगा, महसूस किया जा सकेगा। भौतिक तल पर भी किसी न किसी रूप में, वह समृद्धि ही प्रदान करेगा। भौतिक लक्ष्यों को पूरा करने में कुछ योगदान ही देगा। संसार रूपी सागर में डुबकी लेकर उसे समझ लिये जाने में सहायक ही होगा। अनुभव में वृद्धि ही करेगा, सहजता के साथ आकर्षण बढ़ेगा। जिसे मानसिक स्तर पर उठने वाली कामनायें अपनी पूर्ति व अपनी संतृप्ति की ओर बढ़ेंगी और इस प्रकार उनसे मुक्त होने का एक मार्ग खुल जायेगा। अवश्य ही केन्द्र की ओर जाना, वाह्य जगत में भी उन्नति प्रदान करेगा।

मन पर निर्भरता में कमी

जीवन के लक्ष्यों को पूरा करने में दो चीजों पर निर्भरता है।
मन की कमजोरी और मन की चंचलता।

यदि मन चंचल है, तो एकाग्रता में कमी आयेगी और यदि मन कमजोर है तो अपने लक्ष्य निर्धारित करने में और उसे पा लेने में स्वयं ही भरोसा न होगा। दोनों ही परिस्थितियाँ व्यवधान उत्पन्न करती हैं। जीवन के उस काल खण्ड में जब व्यक्ति अपने लिए लक्ष्य निर्धारित करता है और उन्हें पाने की कोशिश करता है, उस समय मन अत्यधिक चंचल होता है। वो सभी दिशाओं में जाता है क्योंकि

उसके जान लेने योग्य और अनुभव कर लेने योग्य, बहुत सारी चीजें होती हैं। इस कारण जितनी ऊर्जा कार्य की सिद्धि में लगनी चाहिए वह ऊर्जा मन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति में लग जाती है। लक्ष्य को पाने के लिए व्यक्ति अपनी पूर्ण ऊर्जा नहीं दे पाता।

जितनी ऊर्जा उसे अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर लेने में आवश्यक है, यदि इस मात्रा में बढ़ोतरी हो जाये तो निश्चय ही लक्ष्य पाना पहले से ज्यादा आसान होगा। मन ही लक्ष्य निर्धारित करता है और इन्हें पाने से रोकता है। आप मन को अपने लक्ष्य निर्धारित करने दें और मन से ही निरपेक्ष होकर उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

मन की विशेषता है कि यह सभी दिखाई देने वाली चीजों के प्रति आकर्षित होता है। विशेषत: नव आय वर्ग में यह अत्यन्त सक्रिय होता है। हर वस्तु जो समाज में उपलब्ध है, वह उसे पा लेना चाहता है। मन द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए दो गुणों की आवश्यकता होती है 'एकाग्रता व बुद्धि' और मन की चंचलता ही इन दोनों चीजों को सक्रिय होने से रोकती भी है।

वह जीवन की एक ऐसी अवस्था है जिसमें हम पूर्णत: अपने मन द्वारा नियंत्रित होते हैं क्योंकि हम ये मानते हैं कि मन ही है जो उपस्थित है जो सत्य है। यदि किसी का अस्तित्व है तो वह मन है। युवा अवस्था में व्यक्ति में असीम ऊर्जा होती है जिसका उपयोग वह हर दिशा में करता है परन्तु यदि उसकी ऊर्जायें एक दिशा में बँध जायें, अपने लक्ष्य की ओर तो लक्ष्य पाना कहीं ज्यादा सरल होगा।

वे विद्यार्थी जो अपने लक्ष्यों को सरलता से पा लिया करते हैं और वे विद्यार्थी जिन्हें उन्हें पाने में सदैव ही परेशानी होती है उनमें मुख्य अन्तर सिर्फ इतना है कि एक का अपनी मन की चंचलता पर नियंत्रण ज्यादा है और दूसरे का कम । मेरा मानना है कि आध्यात्मिकता एक तल है जो मन के एक स्तर तक संतृप्त होंने के बाद क्रियाशील होने लगता है और इसकी क्रियाशीलता बढ़ने के साथ ही मन और उसके उपद्रवों पर व्यक्ति की निर्भरता पहले से कम हो जाती है।

मनुष्य जीवन भर लक्ष्य निर्धारित करता रहता है और एक लक्ष्य की पूर्ति होने के पश्चात् दूसरा लक्ष्य सामने होता है। लक्ष्यों का निर्धारण और अध्यात्मिकता अर्थात् आत्म का ज्ञान, दो बिल्कुल विपरीत स्थितियाँ हैं। लक्ष्य वाह्य जगत में निर्धारित किये जाते हैं, आन्तरिक जगत में लक्ष्य नहीं है। आन्तरिक जगत में यदि कुछ है तो सिर्फ प्रवाह और प्रवाह के साथ स्वयं को बहने देने का आनन्द। वाह्य जगत में लक्ष्यों को प्राप्त करने के दौरान व्यक्ति अपना नियंत्रण स्वयं अपने हाथ में रखता है। आन्तरिक जगत में उसे अपना नियंत्रण भी छोड़ देना होता है क्योंकि यहाँ पर नियंत्रण की कोई आवश्यकता नहीं।

वाह्य जगत में आप अपने शरीर के साथ होते हैं जिसे आप अपना अस्तित्व समझते हैं, साथ ही उसकी मुलाकात अन्य शरीरों से होती हैं। उन्हें भी ठीक ऐसा ही आभास है जो वास्तव में एक छद्म आभास है। इस कारण शरीरों का नियंत्रण अपने हाथ में लेना होता है, उन्हें लगता है कि इस प्रकार से वह अपने आप को ज्यादा बेहतर तरीके से संचालित कर पायेंगे क्योंकि वह स्वयं एक इकाई है परन्तु आन्तरिक जगत् में अस्तित्वों के भेद मिट जाते हैं।

किसी का अस्तित्व मेरे अस्तित्व से भिन्न नहीं, इस कारण यहाँ एक सतत् प्रवाह है। यहाँ स्वयं की चिन्ता नहीं करनी होती, यहाँ स्वयं को प्रवाहित कर देना, विसर्जित कर देना होता है। बहने देने को राजी कर लेना होता है और एक बार इस अवस्था की झलक प्राप्त होने पर मन का नियंत्रण ढीला पड़ने लगता है। यदि व्यक्ति वाह्य जगत में अपने लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहे तो निश्चय ही क्षीण मन उसके मार्ग में कम बाधक बनेगा।

प्रेम व्यापार नहीं, व्यापार प्रेम नहीं

हर व्यक्ति अपने जीवन में प्रेम पाना चाहता है और इसकी तलाश वो हर सम्भव दिशा में करता है। इसे पा लेने को वो हर कीमत चुकाने को तैयार है क्योंकि धारणा ही यह प्रचलित की गयी है कि प्रेम को हर कीमत पर पा लेना उचित है। हर प्रकार से, उसके लिए साम-दाम-दण्ड-भेद या चाहे किसी नीति का भी पालन क्यूं न करना पड़े तो चूकना मत।

कहा जाता है कि प्रेम और जंग में सब जायज है। इस दुनियाँ ने इतनी लड़ाइयाँ देखीं। प्रथम विश्व युद्ध, द्वितीय विश्व युद्ध देखे व उसमे किये गये असीम अन्याय की चर्चा आजतक होती है। जंग का तात्पर्य ही है कि वह जायज नहीं क्योंकि जंग सदैव अपनी अहंकार तुष्टि के लिए ही होती है। जो कर्म अहंकार के लिए, उसकी पूर्ति के लिए हो रहा हो, वह उचित कैसे हो सकता है? किसी न किसी एक पक्ष में अहंकार अवश्य होता है, जो बातों को इतना बिगाड़ देता है कि मामला युद्ध तक आ पहुँचता है तो क्या प्रेम भी ऐसा ही है कि इसमे सब जायज है? हर वो दाँवपेच जो युद्ध में अपनाये जाते हैं प्रेम मे भी अपना लेने चाहिए। बातें होती है प्रेम को पा लेने की किसी भी तरीके से। लेकिन इसकी चर्चा बहुत कम होती है कि प्रेम दो, प्रेम को फैलाओ। उसे पाने की कोशिश मत करो क्योंकि कोशिश से यदि कुछ आता है, तो वह प्रेम न होगा। वो कुछ भी हो सकता है, परन्तु प्रेम नहीं।

प्रेम प्रवाह, जैसा कि हम समझते हैं कि बाहर से भीतर की ओर होगा। यह पहला कदम ही गलत हो गया। इस तथाकथित प्रेम की नींव ही गलत पड़ गयी क्योंकि प्रेम बाहर से नहीं, सदैव भीतर से बाहर की ओर जाता है। आपके अन्दर प्रेम का अनन्य स्रोत मौजूद है। आत्मा जो स्वयं प्रेम स्वरूप है। क्राइस्ट ने कहा कि ईश्वर प्रेम है और उसका प्रेम तुम हर एक प्राणी में महसूस कर सकते हो।

उस ईश्वर का अंश जो आपके भीतर है आत्मा, वो स्वयं प्रेम की गंगा है। उसमें इतना प्रेम छुपा है कि आपके सानिध्य में आने वाला हर कोई उस प्रेम को महसूस कर सकता है उसे पा सकता है। ये ठीक उसी प्रकार की घटना है कि कस्तूरी नाभि में बसी है और हिरन उसे पूरे वन में ढूँढे। यदि प्रेम पाने की बजाय

प्रेम देने की बातें होने लगे तो परिदृश्य में गुणात्मक परिवर्तन आ जाये और यदि आपको लगता है कि आप प्रेम पा लोगे किसी भी तरीके से, तो आप शरीर पा सकते हो लेकिन प्रेम नहीं पाओगे।

यदि किसी प्रयास में स्वार्थ की लेश मात्र झलक भी आ जाये तो वहाँ सब कुछ हो सकता है परन्तु प्रेम वहाँ पर कदापि न होगा क्योंकि प्रेम सिर्फ देना जानता है वह बदले मे कुछ इच्छा नहीं करता। प्रेम कभी बन्धन मे नहीं बाँधता, वह अपने प्रेमी को सात दरवाजों के पीछे नहीं रखता। उसे वह मानसिक और वैचारिक बन्धन नही देता। प्रेम सदैव स्वतन्त्रता देता है, खुलने की आजादी देता है, बहने की आजादी देता है, समझने की आजादी देता है, पा लेने की आजादी देता है आगे बढ़ने की आजादी देता है, वह मार्ग अवरूद्ध नहीं करता और यदि कही कुछ अवरूद्ध है, तो वहां पर प्रेम तो न होगा।

वहाँ पर यदि कुछ होगा तो किसी न किसी का स्वार्थ छुपा होगा। प्रेम कभी नहीं चाहेगा कि कोई अवरूद्ध हो जाये। वह आन्तरिक जगत की यात्रा पर ले जायेगा। प्रेम स्वयं में एक यात्रा है और जहाँ बन्धन हो जाये वहाँ यात्रा किसी प्रकार भी सम्भव न होगी और यदि कहीं बन्धन है तो वहाँ स्वार्थ होगा, कुंठा होगी, मानसिक ग्रन्थि होगी, वैचारिक संकीर्णता होगी। प्रेम जब मोह रूप मे परिवर्तित हो जाये तो वह एक पाश बन जाता है। यह समझना कि मुझे किसी एक व्यक्ति से प्रेम है, यह समझना ही गलत हो गया। तुम्हें वास्तव में प्रेम नहीं, स्वार्थ है उसके साथ क्योंकि प्रेम किसी एक से नहीं हो सकता। यह एक प्रवाह है एक नदी की भाँति और नदी कभी चुनाव नहीं करती है, जो भी जल लेना चाहे उसे दे देती है, बिना पूछे, बिना उसकी पात्रता पर प्रश्न किये।

उसके लिए कोई सुपात्र नहीं कोई कुपात्र नहीं, वह सबके लिए सहज रूप से उपलब्ध है। मन्दिर में ईश्वर ने कभी किसी नशे में धुत प्राणी के आने पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया और न ही किसी मन में अत्यन्त श्रद्धा से भरे व्यक्ति के आने पर उसे वरीयता दी। वरीयता तो मनुष्यों ने दी, मंदिर के संचालको ने दी परन्तु ईश्वर ने कभी किसी को न रोका। उन्होंने सबको समानता दी, समत्व दिया।

स्वार्थ अल्पजीवी, सहजता दीर्घजीवी

सहजता स्वयं अपने पैरों पर खड़ी होती है परन्तु स्वार्थ को खड़े होने के लिए किसी अवलंबन की आवश्यकता होती है। स्वार्थपूर्ति के लिए सदैव किसी न किसी की आवश्यकता होगी परन्तु सहजता को किसी कि आवश्यकता नहीं, वह स्वयं में ही सम्पूर्ण है। सहजता में सौन्दर्य है, आकर्षण है, खिंचाव है, सुगन्ध है किन्तु स्वार्थ विकृत है, घृणित है और बदबूदार है। एक सहज और निर्मल व्यक्ति की ओर लोग खिंच जाया करते हैं और स्वार्थ की ओर विशेषत: किसी व्यक्ति विशेष की ओर कौन जाना चाहेगा?

सहजता का अर्थ ही है सम्पूर्णता, सम्पूर्णता के साथ सहजता उत्पन्न होती है। व्यक्ति यदि अपने आन्तरिक जगत में संतृप्त हो तो वह सामान्यत: सहज हो जाया करता है। आन्तरिक जगत की उथल-पुथल वाह्य जगत में भी कामनाओं की पूर्ति के लिए स्वार्थ पैदा करती है। सहजता कम पायी जाती है, स्वार्थ सदैव ही चारों ओर उपस्थित है। सहजता आन्तरिक गुण है और स्वार्थ बिल्कुल वाह्य तल पर स्थित। सहजता पूर्व जन्म में पा ली गयी संतृप्ति का परिणाम है और स्वार्थ पूर्व जन्मों की असंतुष्टि का। सहजता सत्य के कहीं करीब होगी होती और स्वार्थ सत्य से कहीं दूर। सहजता बाल सुलभ है और स्वार्थ बड़े हो जाने की निशानी, सहजता स्वतन्त्रता देती है और स्वार्थ नियंत्रण। सहजता प्रेम को बाहर लाती है और स्वार्थ घृणा को आमंत्रित।

❖❖

मनुष्य की तुलना कम्प्यूटर से करके देखिए- जिसमें हार्डवेयर 'शरीर', साफ्टवेयर 'अंतस', प्रोग्राम 'धर्म', बिजली 'चेतना', इंजीनियर 'कर्ता', हार्डडिस्क 'मस्तिष्क', वेबकैम और की-बोर्ड 'इंद्रियाँ', यू०पी०एस० 'भोजन', तार 'नब्ज़', मसल्स और सी०पी०यू फैन 'बॉडी टेम्प्रेचर कंट्रोलिंग मैकेनिज़्म' जैसे काम करते हैं। बुद्ध, महावीर, मोहम्मद, ईसा, वैदिक ऋषि, नानक और अनेकों तत्वदर्शियों ने जो प्रोग्राम बनाए उन्हीं पर आज के हार्डवेयर रन करते हैं। धर्म वे प्रोग्राम हैं जिन्हें व्यक्ति स्वयं में अपलोड कर उनके अनुसार अपने सिस्टम को रन करने की कोशिश करता है। एक से ज्यादा प्रोग्रामों की तरह ही कभी-कभी वो एक से ज्यादा

धर्मों के बारे में जानना चाहता है। कभी-कभी एक धर्म के खाँचे में पूर्णतया संतुष्ट ना हो पाने के कारण वो धर्म परिवर्तन अर्थात् अपना प्रोग्राम परिवर्तन भी करता है और इन प्रोग्राम्स् के माध्यम से वो स्वयं की पहचान प्राप्त करने की कोशिश करता है। धर्म मनुष्य में अपनी पहचान को पाने की आशा जगाते हैं। अपनी पहचान पाने की उत्कंठा इतनी तीव्र होती है कि धर्म की गलत व्याख्या को भी सही मानकर व्यक्ति उसे आँख मूँदकर पालन करने को तैयार हो जाता है।

धर्म के माध्यम से अपनी पहचान प्राप्त करने से पहले वे धर्म को ही अपनी पहचान मानने लगता है। धर्म से सम्बन्धित अपने प्रश्नों को वो धर्म के विद्वानों से पूछकर उनका समाधान चाहता है और इस प्रकार व्यक्ति एक व्यक्ति द्वारा दिए गए समाधानों पर निर्भर हो जाया करता है।

धर्म के सारे संदेश बुद्धि के पार के हैं और यदि कोई व्यक्ति अपनी बुद्धि के माध्यम से उनकी व्याख्या करने की कोशिश करेगा तो सदैव चूक जाएगा। यही कारण है कि गलत व्याख्या से प्रभावित होकर मनुष्य धर्म के नाम पर कई अधार्मिक कार्यों को करने से पीछे नहीं हटता। अपने धर्म से सम्बन्धित उसके मन में भले ही कई प्रश्न हों लेकिन किसी विधर्मी से विवाद की स्थिति में मनुष्य अपने धर्म को श्रेष्ठ साबित करने की कोशिश करता है।

❖❖

बाह्य जगत में काम करना जैसे हार्डवेयर पर काम करना और आंतरिक जगत् में काम करना अर्थात् सॉफ्टवेयर पर काम करना है। जिस प्रकार सॉफ्टवेयर दृश्य नहीं है उसी प्रकार आंतरिक जगत् भी दृश्य नहीं है लेकिन उनका पूरा प्रभाव दृश्य जगत पर पड़ता है।

सनातन धर्म में छिपे विज्ञान को वर्ण आश्रमों में भी देखा जा सकता है। वर्णाश्रम के पहले दो आश्रमों का तात्पर्य हार्डवेयर पर काम करने से है, बाद के दो आश्रम सॉफ्टवेयर पर काम करते हैं ताकि अगले जन्म की क्वालिटी बढ़ाई जा सके। नए सॉफ्टवेयर वर्जन आते रहें जिन्हें अपडेप किया जाता रहे। इस जन्म में अपने सॉफ्टवेयर पर काम न करने की स्थिति में हमारा सॉफ्टवेयर अपडेट नहीं होगा और अपडेट न होने की स्थिति में हम आगे की ओर प्रगति नहीं कर पाएँगे।

उन्नति को आप जंतु जगत् से लेकर कंप्यूटर जगत् तक देख सकते हैं। जंतुओं की नई जातियों को अपने वातावरण से प्रारम्भ में संघर्ष करना पड़ा, तत्पश्चात् वातावरण के अनुसार उन्होंने स्वयं में परिवर्तन किया। गलतियाँ कीं और उन गलतियों से सीखा भी। नुक्सान हुआ लेकिन रुके नहीं और इस प्रकार जल से उत्पन्न होकर जंतु 'पृथ्वी और आकाश' में चारों ओर फैल गए।

सॉफ्टवेयर जगत् भी कुछ ऐसा ही है, वो अपनी पुरानी गलतियों को चुनकर उन पर काम करता है। पुरानी गलतियों को भूलकर वो नए-नए सॉफ्टवेयर बनाता है और उन्हीं साफ्टवेयरों को अपडेट भी करता है और इस प्रकार वो उन्नत होता चला जाता है।

मनुष्य ने पक्षियों को देखकर ही हवाई जहाजों का आविष्कार किया तथा पक्षियों की कार्यकुशलता को देखते हुए ही वह उन हवाई जहाजों को उन्नत करता चला गया। इस प्रकार बुद्धि भी प्रकृति से प्रेरणा लेती है। जिस प्रकार मनुष्य कम्प्यूटर के सॉफ्टवेयर को अपडेट करता है, ठीक उसी प्रकार उसे अपने सॉफ्टवेयर को भी अपडेट करना होता है। अपनी पुरानी गलतियों से सीखकर वह उन्हें स्वयं से अलग करता जाता है। अपने मन की इच्छाओं की पूर्ति कर, वह पुरानी इच्छाओं से संतुष्ट होता जाता है। अपनी बुद्धि के लक्ष्यों को प्राप्त कर वह अपनी बुद्धि से भी आगे जाने की कोशिश करता है। एक लक्ष्य के पूर्ण होने के पश्चात् वह दूसरे लक्ष्य को ढूँढता है और फिर उसे पूर्ण करने का प्रयास करता है। वह कभी पीछे नहीं लौटता और न कभी पीछे मुड़कर देखना चाहता है। स्वयं पर ही कार्य करते हुए, वह आगे की ओर बढ़ता रहता है और इस प्रक्रिया के पूर्ण होने में कई जन्मों की आवश्यकता होती है। अपने पुराने जन्मों के अनुभवों को वह अगले जन्म में साथ ले जाता है और यही कारण है कि हर एक व्यक्ति अपने विकास के अलग-अलग चरणों पर स्थित है। एक व्यक्ति को जीवन से जो चाहिए, दूसरे व्यक्ति के लिए कदाचित् वह मायने भी नहीं रखता हो। एक व्यक्ति के लिए जिस चीज का परम् महत्व है कदाचित् दूसरे व्यक्ति के लिए उसकी कोई महत्ता भी नहीं हो।

❖❖

मशीनें पॉवर को एनर्जी अर्थात् ऊर्जा में परिवर्तित करती हैं और इस क्रम में वे ऊष्मा का उत्पादन करती हैं। 'ऊष्मा' शक्ति के ऊर्जा में परिवर्तित होने की प्रक्रिया में निकला एक बाय प्रोडक्ट है। ये ऊष्मा मशीन के लिए हानिकारक होती है। जो मशीन की आयु को कम करती है। इसी कारण इंजीनियर मशीनों को ठण्डा रखने की प्रक्रिया पर भी विशेष ध्यान देते हैं। हर मशीन में ऐसे उपकरण लगाए जाते हैं जो उसे ठंडा रख सके और तापमान को बढ़ने न दे।

एयर कंडीशन में लगा पंखा, सी०पी०यू० में लगा फैन और गाड़ियों के इंजन में लगे पंखे इसी ताप नियंत्रण प्रक्रिया पर कार्य करते हैं। इंजन की तरह ही हमारा शरीर भी भोजन से प्राप्त शक्ति को ऊर्जा में परिवर्तित करता है और इस प्रक्रिया में ऊष्मा निकलनी स्वाभाविक है। इसी कारण श्रमिक और खिलाड़ी के शरीर ज्यादा मात्रा में ऊष्मा का उत्पादन करते हैं और इसी ऊष्मा को नियंत्रित करने के लिए शरीर पसीने के रूप में द्रव को बाहर निकालता है। यह शरीर की ताप नियंत्रण प्रक्रिया का अंग है। स्नान के माध्यम से इसी ऊष्मा को शरीर से बाहर निकाला जाता है। जिससे शरीर को ताप नियंत्रण में सहायता प्राप्त होती है। इस कारण शरीर को ताप नियंत्रण करने के लिए अधिक शक्ति का व्यय नहीं करना पड़ता। धर्मों में स्नान को महत्व दिए जाने का कारण इसी शक्ति की बचत करना है ताकि ये शक्ति कर्मयोग या ध्यानयोग में लगाई जा सके।

❖❖

चुम्बक अपने आवेशित क्षेत्र के कारण आकर्षण या विकर्षण रूपी क्रिया या प्रतिक्रिया करता है और इस क्रिया के फलस्वरूप वो दूसरी आवेशित वस्तु से युगल बनाता है। परंतु इस युगल प्रक्रिया के फलस्वरूप उसका आवेशित क्षेत्र समाप्त नहीं होता। युगल से अलग होते ही वह फिर से आवेशित रूप में हो जाता है। इस प्रकार वह क्रिया कर अपने आवेशों को त्याग नहीं करता। आवेशों का त्याग करने के लिए उसे आंतरिक रूपांतरण की प्रक्रिया से गुजरना होगा। इसी प्रकार साधक अपने मन पर काम कर, समाज के प्रति अपने आकर्षण और विकर्षण को नियंत्रित करने का प्रयास करता है। समाज का कार्य आकर्षण उपलब्ध करवाना है ताकि जो कोई भी मनुष्य क्रिया करना चाहे, उसके लिए एक प्रतिक्रिया का कारक

उपस्थित हो। हमारे आवेशों की उत्पत्ति का कारण या उद्‌गम स्थल हमारे भीतर छुपा है। मनुष्य अपनी इच्छाशक्ति और अपने विवेक द्वारा तथा मन द्वारा दिए गए उद्दीपनों पर नियंत्रण प्राप्त करने का प्रयास करता है परंतु केवल अपनी इच्छा शक्ति के बल पर ही पूर्ण रूप से मन को नहीं जीता जा सकता। इस समस्या का समाधान कृष्ण ने गीता में दिया है, उन्होंने बताया कि ईश्वर का साक्षात्कार करके अंतत: व्यक्ति शांत मन को भी प्राप्त कर लेता है। ठीक वैसे ही जैसे चुम्बक अपने आवेशित क्षेत्र का त्याग करके उदासीन हो जाता है।

❖❖

एक वैज्ञानिक की प्रयोगशाला उसके शरीर के बाहर है जिसमें वह मन में उठे विचारों और बुद्धि से उपजे परामर्श पर कार्य करता है। इस प्रकार अपने भीतर उपस्थित मन और बुद्धि तथा बाहर उपस्थित पदार्थ और प्रयोगों द्वारा वो सत्य के निकट पहुँचने का प्रयास करता है। वहीं एक साधक अपने शरीर को ही अपनी प्रयोगशाला बना लेता है, जिसमें वह ऊर्जा के रूपांतरण सम्बन्धित प्रयोग करता है। इस प्रकार साधक बाह्य पदार्थों पर निर्भर न रहकर अपने प्रयोगों को आकार देता है। वह शरीर में उपस्थित शक्ति को ऊर्जा में परिवर्तित किया करता है परंतु ये कार्य वह किसी इच्छापूर्ति के लिए नहीं अपितु शरीर को ही स्वस्थ और लचीला बनाए रखने के लिए करता है। जिसे आसन और प्राणायाम कहते हैं। वहीं वो अपने काम और क्रोध पर नियंत्रण प्राप्त करने का अभ्यास कर अपनी ऊर्जा को पुन: शक्ति में परिवर्तित करने के प्रयोग करता है। साथ ही साथ क्रोध और काम पर नियंत्रण स्थापित कर अनावश्यक रूप से उसे अपनी शक्ति को ऊर्जा में परिवर्तित नहीं करना पड़ता और इस प्रकार वह अपनी बहुत सारी शक्ति को अपने आंतरिक जगत में प्रयुक्त किए जाने के लिए बचा लिया करता है।

अष्टांग योग का अभ्यास इस शरीर रूपी प्रयोगशाला में ही किया जाता है। इस प्रकार साधक स्वयं के पास उपलब्ध संसाधनों में ही सत्य को पाने का प्रयास करता है।

❖❖

मशीनें चाहे जितनी भी हों, उन्हें चलाने वाली बिजली एक ही है। ठीक वैसे ही शरीर चाहे जितने भी हों, उन्हें चलाने वाली 'चेतना' मात्र एक ही है। जिस प्रकार बिना बिजली के मशीनें मात्र डब्बा हैं, ठीक उसी प्रकार बिना चेतना के शरीर मात्र मृतक है। जिस प्रकार मशीनों के लिए बिजली महत्वपूर्ण है ठीक उसी प्रकार शरीर के लिए 'चेतना' महत्वपूर्ण है। हर मनुष्य चाहे कितना भी भिन्न क्यों न दिखाई दे, स्थान बदलने के साथ-साथ विभिन्नताएँ क्यों न बढ़ती जाती हों लेकिन इन सभी विभिन्नताओं के भीतर एक समानता छुपी है और वह है शरीर को चलाने वाली शक्ति। एक नया शरीर, एक नए व्यक्तित्व को जन्म देता है। इस व्यक्तित्व के भ्रमजाल से निकलकर अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही आत्मसाक्षात्कार है। इस शरीर के भीतर छिपी उस समानता को ही ढूँढ लेना, अपने भीतर उपस्थित अध्यात्म को ढूँढ लेना है।

❖❖

वृक्ष वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड लेकर उसे ऑक्सीजन में परिवर्तित करते हैं। धूप लेकर उसे भोजन में परिवर्तित करते हैं। हम भोजन लेकर उसे मल-मूत्र में परिवर्तित करते हैं। ऑक्सीजन लेकर उसे कार्बन डाइऑक्साइड में परिवर्तित करते हैं। पानी को पसीने में और खुशबू को बदबू में बदल देते हैं। ये ठीक वैसे ही है जैसे कोई मशीन काइनेटिक एनर्जी को इलेक्ट्रिकल एनर्जी में परिवर्तित कर दे। ये परिवर्तन की प्रक्रिया, प्रकृति का हमें बताने का एक तरीका है कि शरीर मात्र मशीन है, एक साधन है।

इस शरीर का सबसे सुंदर उपयोग अपने लक्ष्यों को ढूँढकर उन्हें प्राप्त कर लेने में है अन्यथा हम इस शरीर को अपना समझकर प्रकृति द्वारा दी गई शक्ति को मात्र ऊर्जा में परिवर्तित कर ही, अपना शेष जीवन बिता देंगे। यदि ये शरीर हाईटेक मशीन है तो फिर हम क्या हैं? हर व्यक्ति अपने जीवन में जिन लक्ष्यों को लेकर आगे बढ़ता है वे उसके मानसिक लक्ष्य हैं। उसके मस्तिष्क ने या फिर उसके परिवार के मस्तिष्क ने या फिर समाज ने उसे ये लक्ष्य दिए कि उसे जीवन में क्या प्राप्त करना चाहिए। लेकिन ये हमारे वास्तविक लक्ष्य नहीं हैं। हमारे वास्तविक लक्ष्य अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेने के पश्चात् हमें प्राप्त होते हैं। इस प्रकार हमारे व्यक्तित्व के लक्ष्य और स्वयं के लक्ष्य दोनों ही अलग-अलग

हैं। हमारे व्यक्तित्व के लक्ष्य व्यक्तित्व को पोषण देंगे और हमारी चेतना के लक्ष्य चेतना को समृद्ध करेंगे।

❖❖

हमारा दिमाग एक वी०एफ०एक्स० स्टूडियो के समान है। ये पूरे जीवनभर बिना थके, हमारे लिए विजुअल इफेक्ट्स और साउंड शोज़ चलाता रहता है। इसका मतलब हम एक ऐसे स्टूडियो में बैठे हैं जो बहुत ही परिष्कृत है और इसमें चलने वाले कार्यक्रम भी इतने उन्नत हैं कि वे आपको एक मिनट भी चैन न लेने देंगे। ये मात्र टू डायमेंशनल नहीं बल्कि मल्टी डायमेंशनल अनुभव हमारे लिए बनाता है। जिन्होंने भी ऐसे शो देखे हैं वे ये बात जानते हैं कि व्यक्ति अपने चारों ओर के महौल से इतना घुल मिल जाता है कि उसे सामने स्क्रिन पर चलने वाला चित्र बिल्कुल वास्तविक लगने लगता है। साथ ही साथ दर्शक को एक ऐसी सीट पर बिठाया जाता है जो हिलती रहती है। इस प्रकार सामने चलने वाले चित्र और कुर्सी के हिलने में एक सांमजस्य बना होता है। व्यक्ति चाहकर भी खुद को इस पूरी प्रक्रिया से अलग नहीं कर पाता। कभी-कभी देखता है कि वह समुंदर में एक स्पीड बोट पर सवार है, कभी पहाड़ से छलांग लगाता हुआ दिखाई देता है, कभी पत्थर से टकराते हुए तो कभी तेज गति से गाड़ी चलाते हुए स्वयं को पाता है। ये शो कितना भी आधुनिक क्यों न हो लेकिन उस सीट पर बैठा हुआ व्यक्ति इस शो का हिस्सा नहीं है। वह एक स्वतंत्र इकाई है जो इस समय इस शो में पूरी तरह डूबा हुआ है।

वैज्ञानिक अंतरिक्ष में ढूँढ रहे हैं और तत्वदर्शी शून्य में। अंतरिक्ष अर्थात् अंतर इच्छा। इच्छा जुड़ती है सिर्फ पदार्थ से। इस प्रकार अंतरिक्ष अर्थात् शून्य में उपस्थित विभिन्न ग्रह और ग्रहिकाएँ। शून्य अर्थात् अंतरिक्ष में उपस्थित रिक्त स्थान, जो अपरिमित और अज्ञेय है। वह खाली स्थान जिसमें वैज्ञानिकों की कोई रुचि नहीं लेकिन इसी खाली स्थान में तत्वदर्शियों की रुचि होती है।

एक गुरु ने अपने शिष्यों को बुलाया और उनके सामने दो बर्तन रखे। एक में पानी भरा था और एक यूँ ही खाली था। एक-एक करके अपने शिष्यों से वे जानना चाहते थे कि इनमें क्या भरा है? सभी शिष्यों ने एक ही उत्तर दिया कि एक

बर्तन में पानी है और दूसरा बर्तन खाली है। अंत में एक शिष्य बचा जो सबसे ज्यादा शांत था। उसने गुरु से कहा एक में पानी भरा है और दूसरे में हवा। गुरु ने उससे पूछा यदि इसमें हवा भी भरी नहीं होती तो क्या होता?

शिष्य ने कहा यदि इसमें हवा न होती तो इसमें शून्य भरा होता। शिष्य का उत्तर सुन गुरु बहुत प्रसन्न हुए क्योंकि उन्हें अपना सर्वश्रेष्ठ शिष्य मिल चुका था। वास्तव में इस सृष्टि का कोई भी कोना खाली नहीं। चूँकि हम अपनी समझ और इंद्रियों द्वारा इस सृष्टि से जुड़े हैं इसी कारण हम सृष्टि को समझने में चूक जाया करते हैं क्योंकि हमारी समझ इस सृष्टि के एक बहुत छोटे कोने के बारे में ही हमें बतलाती है और जहाँ हमारी समझ नहीं जाती, उस जगह के बारे में भी यदि कोई जानता है तो वह है परमात्मा। इसी कारण सभी सद्गुरु इस बात पर जोर देते हैं कि अपनी समझ से नहीं, अपनी सजगता से इस सृष्टि से सम्बन्ध बनाओ।

❖❖

जिस प्रकार इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन है; ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं वैसे ही सत्य, प्रकृति और माया है। पूरे संसार में मात्र एक पुरुष, एक स्त्री और एक परिष्कृत कार्यक्रम है। वह है सत्य, प्रकृति और माया। मात्र इन्हीं की उपस्थिति है शेष सभी भ्रम है। शेष में आते हैं व्यक्तित्व।

इस संसार में जितने व्यक्ति हैं लगभग उतने ही व्यक्तित्व भी और सभी को अपनी-अपनी एक स्वतंत्र सत्ता होने का भ्रम है। यही भ्रम कारण है कि हम व्यक्तित्वों को ही मान्यता देते हैं। व्यक्तित्वों के परे स्थित दुनियाँ से हम पूरी तरह कटे हुए हैं। उसके प्रति हम बिल्कुल भी सजग नहीं। यही कारण है कि हमारा पूरा जीवन भ्रम में ही बीत जाया करता है और इस जीवन का अंत दु:ख के साथ होता है। हर व्यक्तित्व की मात्र एक ही समस्या है, जो भी हैं वे अपने स्रोत से कटे हुए हैं। माया की यही विशेषता है कि वह हर एक व्यक्ति को अपनी स्वतंत्र सत्ता होने का अनुभव देती है। हर एक व्यक्ति जीवन खुद से शुरू कर अपने और अपनों के साथ ही सदा जीना चाहता है। अपनी इच्छाओं को वो कभी समाप्त करना ही नहीं चाहता क्योंकि जितनी विभिन्नताएँ हैं उतनी ही इच्छाएँ हैं। हर कोई समस्या का समाधान ढूँढना चाहता है।

हर व्यक्ति के मन में यही प्रश्न उठता है कि अंत है ही क्यों? इस अंत का ही अंत क्यों नहीं हो जाता? इस उम्मीद में वह विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान की ओर देखता है। नए-नए आविष्कारों के बारे में जानना चाहता है, जो उसे अंत से बचाकर रखें किन्तु कोई भी व्यक्ति अपने भ्रम का अंत नहीं चाहता। हर कोई चाहता है कि मेरी सत्ता बनी रहे। बस इस अंत से बचने का कोई उपाय हो जाए।

❖❖

न्यूटन ने सेब के नीचे गिरने का कारण जानना चाहा; जेम्स वॉट ने भाप द्वारा केतली के ढक्कन के उठने का कारण जानना चाहा। उनके कारण के प्रति जिज्ञासा ने ही उनका नाम इतिहास में लिख दिया। आप अपने होने का कारण कब जानना चाहेंगे? वास्तव में व्यक्ति का मन उसे यह विकल्प ही नहीं देता कि वह अपने कारण के बारे में जान सके। मन हमें सदैव यह बताता है कि हम एक कृति हैं इसलिए वे व्यक्ति जो अपने मन और बुद्धि पर पूरी तरह निर्भर हैं उनके अंतस में स्वयं के कारण से सम्बन्धित कभी कोई प्रश्न भी नहीं जागता और जब प्रश्न ही नहीं होगा तो उसका उत्तर कहाँ से आएगा? उत्तर की खोज कैसे होगी? न्यूटन ने जब सेब को नीचे गिरते देखा होगा तो उनके मन ने उन्हें अवश्य कहा होगा कि लपको और पा लो इसे। इससे पहले कि कोई और इसे पा ले लेकिन उन्होंने अपने मन को अनदेखा कर दिया।

जेम्स वॉट ने भी जब केतली के ढक्कन को उठते देखा होगा तो उनके मन ने उन्हें अवश्य कहा होगा कि केतली को अब चूल्हें पर से उतार कर अलग रख दो लेकिन जेम्स वॉट ने मन को अनसुना कर दिया। उन्होंने देखते रहने का निर्णय लिया और इस दौरान उनकी बुद्धि इस घटना का स्पष्टीकरण ढूँढ रही थी। उनकी बुद्धि ने उन्हें बताया कि भाप में ताकत है। ये पदार्थ को धकेल सकती है और आगे चलकर उन्होंने भाप की इसी विशेषता का उपयोग रेलगाड़ी को आगे की ओर धकेलने के लिए किया। जिसने भी कारण जानना चाहा उसने अवश्य कुछ न कुछ पाया है। आप भी अपने प्रश्नों के उत्तर को और प्रकृति के पीछे छुपे कारण को जानने का प्रयास अवश्य कीजिएगा क्योंकि मन बहुत दिनों तक हमें अपने प्रश्नों के उत्तरों से दूर नहीं रख सकता।

❖❖

अंतरिक्ष अर्थात् अंतर इच्छा। जहाँ तक अंतरिक्ष है, वहाँ तक इच्छा है लेकिन इच्छाओं के बीच अंतर भी है। पदार्थ की इच्छा है। ग्रह पदार्थ द्वारा निर्मित है, पृथ्वी से निकलकर आप सीधे चाँद या बृहस्पति पर जाना चाहते हैं। बीच में ऐसा कुछ नहीं जिसे आप देख सकें। इसी कारण आप उसमें इच्छुक भी नहीं। अंतरिक्ष में ग्रह हैं और ग्रह के बीच है शून्य।

❖❖

विज्ञान के नियम भी प्रकृति का अवलोकन कर प्राप्त किए गए। जैसे गुरुत्व का नियम। राइट ब्रदर्स के मन में पक्षियों को उड़ते हुए देख कर ही उड़ने की इच्छा जागृत हुई। हवाई जहाज के पंखों का डिजाइन भी पक्षियों के पंखों से ही प्रेरणा प्राप्त कर बनाया गया। आजकल रोबोट्स के डिजाइन भी कैटरपिलर और अन्य जंतुओं के शरीर की रचना से प्रेरणा प्राप्त कर बनाए गए हैं। जेम्स वॉट को भाप की शक्ति का अंदाजा पानी के उबलने से मिला। जब किसी ने रेगिस्तान में रातों के ठण्डे होने तथा दिन के अत्यधिक गर्म होने का कारण जानना चाहा होगा तब उसे ज्ञात हुआ होगा की गर्व हवा ऊपर उठती है।

रेगिस्तान में बनने वाले मिराज, जिसमें व्यक्ति को दूर सतह पर पानी होने का आभास होता है, को देखकर ही किसी ने इसके पीछे के विज्ञान को जानने की कोशिश की होगी। वर्षा-वनों को देखकर किसी ने जाना होगा कि वृक्ष वर्षा को आकर्षित करते हैं। वृक्षों की पत्तियों को देखकर ही किसी को सोलर पैनल्स द्वारा सूर्य की ऊर्जा को अवशोषित करने का और उसे विद्युत में ऊर्जा में परिवर्तित करने का ख्याल आया होगा। किण्वन की प्रक्रिया को देखकर ही किसी ने शराब बनाने का तरीका ईजाद किया होगा। किताबों में विज्ञान की अलग-अलग विद्याओं के पिताओं का वर्णन है। ये वो वैज्ञानिक हैं जिन्होंने सर्वप्रथम उस विद्या में कार्य प्रारंभ किया। पिता चाहे कितने भी हों लेकिन विज्ञान की माता तो बस एक ही है जिसने विज्ञान को जन्म दिया और वह है प्रकृति।

❖❖

सभी कारणों के परम कारण कृष्ण ही हैं। जैसे स्टैटिक, काइनेटिक, इलेक्ट्रिक, मेकैनिकल, वॉइस, लाइट इत्यादि ऊर्जा के ही प्रकार है लेकिन अंतत: हैं तो वो ऊर्जा ही। जैसे ऊर्जा को आप विभिन्न रूपों में परिवर्तित कर सकते हैं। ठीक उसी प्रकार जगत् में उपस्थित हर एक कृति और प्रतिकृति कृष्ण के ही कारण उपस्थित है। जैसे कि पानी तालाब का हो, नाले का हो, जलाशय का हो, नदी का हो, समुद्र का हो, बोतल में बंद मिनरल वॉटर हो या फिर कोई फ्लेवर्ड वॉटर हो लेकिन अंतत: है तो वह पानी ही। कारण से, परम कारण तक की यात्रा विज्ञान और विभिन्न कारणों से लेकर असंख्य कृतियों तक विभिन्नताएँ बढ़ती ही जाती हैं। लेकिन इन सभी विशेषताओं के पीछे भी मात्र एक ही परम कारण है।

❖❖

पृथ्वी अपने अक्ष पर भी घूमती है तथा अपनी कक्षा में भी और ये चक्र वह एक वर्ष में पूरा करती है। इस एक वर्ष में ३६५ दिन या १२ महीने होते हैं। समय दिन और रात के चक्र में घूमता आगे बढ़ता रहता है और दिन और रात का ये एक चक्र पूर्ण होता है तो तारीख बदल जाती है। जीवन की परिणति भी अंतत: शून्य से प्रारंभ होकर शून्य में ही विलीन हो जाना है। एक वर्ष में जैसे कई दिन होते हैं और एक दिन में कई घण्टे, ठीक वैसे ही शून्य से लेकर शून्य तक की यात्रा में कई व्यक्तित्वों से होकर जीव गुजरता है। ये विभिन्न व्यक्तित्व उसे विभिन्न जन्मों से प्राप्त होते हैं। जैसे हर सुबह एक नए दिन का जन्म होता है, वैसे ही हर मृत्यु के बाद एक नए जीवन का जन्म होता है। एक ही जीव की ये यात्रा विभिन्न जीवनों में अलग-अलग व्यक्तित्व को धारण करती है। ये यात्रा तब तक चलती रहती है जब तक जीव स्वयं में विखण्डित नहीं हो जाता।

जिस प्रकार रॉकेट को पृथ्वी के गुरुत्व के परे शून्य में जाने को अपार शक्ति की आवश्यकता होती है वैसे ही हमें पदार्थ के बल से मुक्त होने को व शून्य की यात्रा करने को आंतरिक शक्ति की आवश्यकता होती है। जो तप से प्राप्त होती है। हमारी चेतना और एक रॉकेट की कार्यप्रणाली बिल्कुल समान है। दोनों को ही गुरुत्व के विपरीत ऊपर की ओर उठना होता है और इस कार्य के लिए अत्यधिक शक्ति की आवश्यकता होती है।

टर्मिनल वेलॉसिटी, ऐसी वेलॉसिटी है जिसे पा कर ही रॉकेट पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से मुक्त हो सकता है और टर्मिनल वेलॉसिटी प्राप्त करने के लिए इंजन को पर्याप्त मात्रा में शक्ति की आवश्यकता होती है। यह शक्ति उसे प्राप्त होती है रॉकेट में भरे गए ईंधन द्वारा। ठीक इसी प्रकार भोजन द्वारा प्राप्त शक्ति को मनुष्य तपस्या द्वारा क्रमश: संघनित करता चला जाता है और जब शक्ति एक नियत स्तर तक पहुँच जाती है तब चेतना धीरे-धीरे इस शरीर के आकर्षण से मुक्त हो ऊपर की ओर उठने लगती है। रॉकेट को यात्रा करने को एक मुक्त आकाश मिलता है परंतु चेतना के मार्ग में छ: विभिन्न चक्र हैं। सातवें चक्र पर वह स्वयं आसीन रहती है। इन छ: विभिन्न चक्रों पर क्रम से पहुँचती हुई वह ऊपर बढ़ने का क्रम जारी रखती है। इसी कारण स्वयं के जागरण की प्रक्रिया में यह समय लेती है। व्यक्ति को सतत् अपने मन पर नियंत्रण स्थापित कर अपनी शक्ति को संघनित करते रहना चाहिए। कभी-कभी ये प्रक्रिया दैव योग से हो जाती है। व्यक्ति तपस्या करके इसे प्राप्त करे या दैव योग से, यात्रा का मार्ग एक ही होता है। चेतना एक ही मार्ग से ऊपर की ओर उठती है। इसी कारण दोनों ही दशाओं में प्राप्त फल एक ही समान होता है।

❖❖

मार्केटिंग भीड़भाड़ में होती है लेकिन आर०एण्ड०डी (रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट) एकांत में। अपने गुणों को बाजार में ही बेचा जाता है लेकिन स्वयं को खोजना हो तो एकांत की आवश्यकता होती है। व्यापार व्यक्तित्वों के बीच होता है लेकिन आत्मसाक्षात्कार एकांत में। रिसर्च करने वाले वैज्ञानिक एक प्रयोगशाला में अकेले रहकर या कुछ लोगों को साथ लेकर ही अपने प्रयोग और आविष्कार किया करते हैं। तत्पश्चात् उस आविष्कार पर काम करके वे उसे और परिष्कृत रूप दिया करते हैं और जब आविष्कार की गुणवत्ता एक नियत स्तर तक पहुँच जाती है जब वे उसे डेवलपमेंट विभाग को सौंप देते हैं। अब आगे का कार्य मार्केटिंग और सेल्स डिपार्टमेंट का होता है। एकांत में किए गए कार्य के बारे में शोर-शराबे के बीच लोगों को बताया जाता है। उससे होने वाले फायदे जीवन में किस प्रकार से बदलाव ला सकता है। इस प्रकार मार्केटिंग डिपार्टमेंट का काम लोगों को

प्रभावित करना होता है और सेल्स डिपार्टमेंट का काम उत्पाद को बाजार में बेचना लेकिन हर खोज, हर आविष्कार होता तो एकांत में ही है इसलिए स्वयं की खोज करने के लिए स्वयं को प्रतिदिन कुछ घण्टे एकांत के अवश्य दीजिए। इस एकांत में यदि प्रकृति का साथ मिल जाए तो आत्म-अनुसंधान की प्रक्रिया तेज हो जाया करती है। हर एक उत्पाद वैज्ञानिकों से व्यापारियों तक पहुँचता है। यदि जीवन में उपस्थित व्यापार से आपका मन भर गया हो तो यह संकेत है कि अब आप आत्म-अनुसंधान की ओर मुड़ सकते हैं।

ग्राहम बेल ने एकांत में जिस फोन की संरचना के विचार पर कार्य किया, बाद में उसी फोन ने कई पीढ़ियों के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। हो सकता है एकांत से जो आप खोज कर लाएँ, आगे आने वाले समय में कई लोगों के जीवन में वह परिवर्तन का कारक बने।

❖❖

जीवन के वसंत में व्यक्ति असीम इच्छा, ऊर्जा और संभावनाओं से भरा होता है। इसी कारण कम्पनियाँ प्रोडक्शन, मार्केटिंग और सेल्स के डिपार्टमेंट में युवाओं की भर्ती करना चाहती हैं। वो उनकी ऊर्जाओं का भरपूर इस्तेमाल करना चाहती हैं। वर्ण आश्रम में भी युवाओं के जिम्मे सीखने और पढ़ने का कार्य, परिवार और समाज के विकास का कार्य दिया गया। आधी उम्र बीत जाने के बाद वर्ण आश्रम में यह व्यवस्था की गई कि व्यक्ति अपनी ऊर्जाओं को अपने भीतर मोड़ने का प्रयास करे। अब वह प्रोडक्शन, मार्केटिंग, सेल्स से हटकर, रिसर्च की ओर मुड़े। कम्पनियाँ भी चाहती हैं कि उनके रिसर्च विंग में ऐसे अनुभवी लोग हों जिनकी रिसर्च में गहन रुचि है।

एक कम्पनी तभी प्रगतिशील होती है जब उसका रिसर्च डिपार्टमेंट मजबूत हो। ठीक उसी प्रकार यदि हम अपने जीवन में आत्म अनुसंधान की ओर न मुड़े तो कुंद हो जाने का खतरा होता है। जीवन की पूर्णता के लिए स्वयं को जानना जरूरी है। अपने व्यक्तित्व के विकास के बाद अब अपने कारण को खोजने की बारी होती है और जब तक ये खोज पूरी न होगी तब तक हम इस जीवनरूपी कम्पनी को पूर्ण रूप से समझ नहीं पाएँगे। व्यक्तित्व को विकसित करके मात्र आधे

जीवन को ही पूर्णता दी जा सकती है। चेतना को विकसित करने पर ही इस जीवन का चक्र पूर्ण होता है।

❖❖

रॉकेट को गुरुत्व के विरुद्ध उठने में टर्मिनल वेलॉसिटी की जरूरत होती है। ये वेलॉसिटी रॉकेट के इंजन और उसमें भरे गए ईंधन दोनों ही मिलकर प्रदान करते हैं। ईंधन के जलने पर बल उत्पन्न होता है जो रॉकेट को ऊपर की ओर धकेलता है। कल्पना कीजिए एक ऐसे रॉकेट की जिसमें ना तो इंजन हो और न ही ईंधन लेकिन इसके बजाय रॉकेट को एक अत्यंत शक्तिशाली स्प्रिंग से सम्बन्धित किया गया हो। स्प्रिंग जो कम्प्रेस्ड स्टेट में है और खुलने पर रॉकेट को इतना बल प्रदान कर सके कि वह पृथ्वी के गुरुत्व के विरुद्ध उठकर अंतरिक्ष तक के अपने यात्रा को पूर्ण कर सके। हमारे शरीर में चेतना को ऊपर उठाने के लिए ऐसी ही प्रणाली की व्यवस्था होती है जिसे कुण्डलिनी कहते हैं।

चेतना को 'मैं' से परे उठने में कुण्डलिनी की कम्प्रेस्ड पॉवर की जरूरत होती है लेकिन इस कम्प्रेस्ड कुण्डलिनी को अनलॉक करने के लिए भी एक नियत प्रारंभिक शक्ति की आवश्यकता होती है। इस शक्ति को मनुष्य निष्काम कर्म, प्रेम, ध्यान, योग और सेवा, यम, विवेक, समर्पण इत्यादि के माध्यम से प्राप्त करता है। तात्पर्य यह है कि हर एक व्यक्ति के भीतर यह कम्प्रेस्ड कुण्डलिनी उपस्थित है। आवश्यकता मात्र इतनी है कि हम अपने जीवन में प्राप्त शक्ति को एक नियत मात्रा तक संघनित कर, इस कम्प्रेस्ड कुण्डलिनी को अनलॉक करने के लिए प्रारंभिक शक्ति की व्यवस्था कर लें।

❖❖

परमाणु में केंद्रक के चारों ओर चक्कर काटते इलेक्ट्रॉन और आकाशगंगा में सूर्य के चारों ओर चक्कर काटते ग्रहों पर एक ही समान बल लगता है। पहला सेन्ट्रीपिटल फोर्स (वह बल जो इलेक्ट्रॉन को केन्द्र की ओर ग्रहों को सूर्य की ओर खींच सकता है) तथा दूसरा सेन्ट्रीफ्युगल फोर्स (वह बल जो इलेक्ट्रॉनों को केन्द्र से दूर और ग्रहों को सूर्य से दूर धकेलता है)। मनुष्य की चेतना पर भी दो प्रकार के बल कार्य करते हैं। एक वो जो उसे मन की ओर खींचता है अर्थात् बाहर की

ओर और दूसरा वह जो उसे केन्द्र की ओर खींचता है अर्थात् आत्मा की ओर।

यदि चेतना मन की ओर खिंच रही है, इसका तात्पर्य है कि सेन्ट्रीफ्युगल फोर्स ज्यादा है और इस कारण व्यक्ति बाहरी आकर्षणों और बाहरी दुनियाँ की ओर खिंच जाता है। इस दशा में वह स्वयं से दूर खिसकता है। अब बाहरी दुनियाँ जैसी उसे दिखाई देती है, वही उसे वास्तविक लगने लगती है। मन द्वारा बताए गए आकर्षणों के पीछे भागते-भागते वह खुद को ही खो देता है। खुद को खोने से बड़ा कोई दुख नहीं और खुद को पाने से बड़ी कोई खुशी नहीं।

इस दशा में व्यक्ति भ्रम और भय से ग्रस्त हो जाया करता है। मन के पूरे नियंत्रण में आ जाने के पश्चात् मन उसे केन्द्र से दूर की ओर धकेलता चला जाता है। इस दशा में व्यक्ति भ्रमित और खिन्न होकर अपना जीवन त्यागता है। यदि चेतना मन द्वारा बताए बाहरी आकर्षणों में रुचि नहीं लेती तो वह केन्द्र की ओर खिंचने लगती है। इस प्रकार वह स्वयं के और निकट जाकर प्रसन्नता प्राप्त करती है। उसके भ्रम धीरे-धीरे छँटने लगते हैं। भय धीरे-धीरे विलुप्त होने लगता है। अपने केन्द्र की ओर जाना, अपने वास्तविक घर की ओर जाने जैसा है। अपने केन्द्र की ओर बढ़ता व्यक्ति अंततः अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेता है। सेन्ट्रीपिटल फोर्स ज्यादा होने की दशा में व्यक्ति अंतर्मुखी व सेन्ट्रीफ्युगल फोर्स ज्यादा होने की दशा में व्यक्ति बहिर्मुखी हो जाया करता है।

❖❖

प्रकृति हर मनुष्य को पूर्ण बनाती है अपूर्ण नहीं, क्योंकि एक ही शरीर में वह स्त्री और पुरुष दोनों ध्रुवों को एक साथ लेकर आती है। एक चुम्बक की भाँति शरीर में भी यह दोनों ध्रुव अलग-अलग दिशाओं में स्थिर होते हैं- ठीक विपरीत दिशा में। जिस प्रकार प्रकृति की दिशाएँ स्थिर हैं उसी प्रकार मनुष्य शरीर की दिशाएँ भी स्थिर हैं। कपाल में स्थित मस्तिष्क, रीढ़-रज्जु का ही विस्तार है। मनुष्यों में रीढ़-रज्जु उत्तर-दक्षिण दिशा में स्थित होती है। जिसके सबसे निचले भाग में दक्षिण भाग और सबसे ऊपरी भाग में उत्तर दिशा होती है। मस्तिष्क उत्तर दिशा की ओर स्थित होता है।

दोनों नेत्रों के मध्य में स्थित आज्ञाचक्र, पूर्व दिशा की ओर इंगित करता है

और इस प्रकार पीठ की ओर पश्चिम दिशा होती है। मनुष्य शरीर में काम का क्षेत्र दक्षिण दिशा में स्थित है और ज्ञान का उत्तर दिशा में। मनुष्य जीवन का प्रारंभ काम से होता है। कारण यह है कि चेतना दक्षिण दिशा में स्थित मूलाधार चक्र से अपनी जीवन यात्रा प्रारंभ करती है और धीरे-धीरे ऊपर उठते हुए अंततः उत्तर दिशा में स्थित सहस्त्रार चक्र से, शरीर से बाहर निकल जाया करती है।

❖❖

इस जगत् की संरचना के केन्द्र में सत्य है। सत्य के चारों ओर प्रकृति और प्रकृति के चारों ओर है माया। जिस प्रकार परमाणु के केन्द्र में उपस्थित न्यूक्लियस, परमाणु के अस्तित्व का कारण है। ठीक उसी प्रकार इस जगत् के केन्द्र में उपस्थित सत्य ही, इसकी उपस्थिति और इसके सम्यक् रूप से चलने का कारण है। उपस्थित सभी मनुष्य परिधि पर स्थित माया से जुड़े होने के कारण, इसके चक्र में घूमते रहते हैं। माया के अस्तित्व का कारण है प्रकृति। प्रकृति ही माया को जन्म देती है। साथ ही प्रकृति ही उपस्थित सभी मनुष्यों का भरण-पोषण भी करती है।

जब तक बच्चा गर्भ में होता है वह प्रकृति में छुपा होता है और गर्भ से निकलते ही प्रकृति से उसका सम्बन्ध टूटकर मायावी जगत् से जुड़ जाता है। इसके ठीक विपरीत, मनुष्य जब मायावी जगत् से सम्बन्ध तोड़कर प्रकृति से सम्बन्ध पुनः जोड़ लेता है तब इस अवस्था को बुद्धत्व प्राप्ति कहा जाता है। इस प्रकार माया और प्रकृति के बीच में स्थित है - 'ज्ञान का द्वार'। प्रकृति में उपस्थित चेतना माया और असत्य दोनों को ही देख सकती है। इस कारण उसे दृष्टा कहा जाता है।

❖❖

मायावी जगत् में दो प्रकार की भावनाएँ प्रमुख हैं - 'सुख और दुःख', जिनका क्रम लगातार चलता रहता है। सुख ही दुःख में परिवर्तित होता रहता है और दुःख सुख में। दुःखी मनुष्य सुख को ढूँढता है और सुख में स्थित मनुष्य उस अवस्था को छोड़ना नहीं चाहता। सुख और दुःख के भीतर है शांति का क्षेत्र। ये प्रकृति का भी स्थल है। शांति के क्षेत्र में ना सुख का ही अतिक्रमण है और न ही दुःख का प्रदूषण। इसी कारण व्यक्ति की मृत्यु के बाद हर धर्म में प्रार्थना बस एक ही होती है कि मृतक को शांति प्राप्त हो। उसके शरीर को जलाकर या

दफनाकर प्रकृति के ही सुपुर्द कर दिया जाता है। ऐसी इच्छा रखते हुए कि मरने वाला अवश्य शांति प्राप्त करे। अर्थात् शरीर प्रकृति के सुपुर्द हुआ और चेतना भी प्रकृति के ही सुपुर्द हो जाए। वापस उसे लौटकर मायावी जगत् में आना न पड़े। शांति के ठीक भीतर है 'आनंद'। चेतना जब शांति में पूर्णतया स्थित हो जाती है तो वह आनंद का अनुभव करती है। शांति आनंद का विस्तार है तथा सुख और दु:ख शांति के। मनुष्य की पूरी अंतरयात्रा सुख और दु:ख से लेकर आनंद तक की है।

❖❖

मनुष्यत्व और बुद्धत्व में अंतर है। मनुष्य में चेतना मन से जुड़कर एक युगल बनाती है। इस युगल और आत्मा के बीच में एक दीवार होती है। ये दीवार संचित कर्मफलों की दीवार है। इसके टूटे बिना चेतना का आत्मा से मिलना संभव नहीं। बुद्धत्व में ये संरचना उलट जाती है। चेतना आत्मा से मिलकर एक युगल बनाती है लेकिन अभी भी वो आत्मा में विलीन नहीं। इस युगल और मन के बीच में एक दीवार होती है। ये दीवार है शक्ति की दीवार।

चेतना शरीर में शक्ति को सतत् संघनित कर मन से एक नियत दूरी बनाए रखती है। मनुष्य अपनी इस दीवार को तोड़ता है और बुद्ध अपनी इसी दीवार को बचाए रखने का यत्न करते हैं। यही कारण है कि महात्मा बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के बाद भी अपने राज्य लौटकर वापस नहीं गए। ठीक यही कार्य महावीर ने भी किया। दोनों ही नहीं चाहते थे कि वापस लौटकर वे अपने राज्य और परिवार के मन से दुबारा जुड़ें। जब अपने मन से ही दूरी हो गई हो फिर समाज के मन से जुड़ने का कोई प्रयोजन नहीं। अपनी शक्ति की दीवार को सुदृढ़ रखते हुए ही वे समाज की चेतना के लिए ज्यादा सक्षम तरीके से योगदान कर सकते हैं।

❖❖

अध्यात्मिक यात्रा के चरण : हर व्यक्ति की स्वयं को पहचानने और स्वयं को पाने तक की यात्रा के तीन चरण हैं – 'कर्ता, दृष्टा और साक्षी'। जैसे एक फ्रीज के विभिन्न भाग हैं– 'कंप्रेसर, बॉडी, फ्रीजर, बॉटल रेक, शेल्फ, वेजिटेबल स्टोर इत्यादि लेकिन एक सामान्य मनुष्य के लिए वो मात्र एक फ्रीज है। ठीक उसी प्रकार

एक मनुष्य के भी विभिन्न भाग हैं – 'शरीर, मन, बुद्धि, व्यक्तित्व, चेतना, आत्मा'। लेकिन इन अवयवों को न जानते हुए स्वयं को बस एक नाम से पहचानता है। उसका नाम उसके व्यक्तित्व की पहचान होता है। हर एक कार्य को वह व्यक्तित्व के द्वारा ही किया करता है। उसका हर एक प्रयास अपने व्यक्तित्व के लिए होता है। इस प्रकार अपने अवयवों को न जानता हुआ वो मात्र अपने व्यक्तित्व का भ्रम पाले हुए ही जीता रहता है।

दूसरा है द्रष्टा, वह जो अपने विभिन्न अवयवों को जानता है। शरीर को यंत्र और माध्यम समझता है। प्रकृति को कर्ता और चेतना को पहचानते हुए वह अपने मूल स्वरूप में स्थित होता है। अब वह प्रकृति जनित गुणों और उसके द्वारा निर्मित मायावी संसार की ओर नहीं, अपितु अपनी आत्मा के साथ समय बिताना चाहता है। साक्षी वो है जो द्रष्टा और कर्ता दोनों पर दृष्टि रखता है। जो कर्ता की प्रकृति और दृष्टा के उद्विकास दोनों को ही देखता है। वह जो कर्ता और दृष्टा को पूर्णतया जानता है। जो कर्ता को विकास के लिए और दृष्टा को उद्विकास के लिए प्रयत्नशील देखता है। वह जो विभिन्न भावनाओं को भी जानता है और सभी भावों को भी। वह जो बहिर्यात्रा और अंतर्यात्रा दोनों का ही साक्षी है। वह जिससे यह सम्पूर्ण जगत् विस्तार लेता है। जिससे प्रकृति शक्ति प्राप्त करती है और माया ऊर्जा। जो उन सभी कारणों का परम कारण है। साक्षी में लीन होकर ही दृष्टा की अंतर्यात्रा पूर्ण होती है।

❖❖

जैसे बंदूक में लोहा, रिक्वायल स्प्रिंग और स्क्रू 'बंदूक' के होने का कारण है। स्क्रू बंदूक को बाँधते हैं और स्क्रू के खुलने पर बंदूक को खोला जा सकता है। ठीक इसी प्रकार इस शरीर में जीव कारण है। जीव मिलकर बना है ज, ई और व से। ज अर्थात् जन्म, जन्म होता है चेतना का। ई अर्थात् शक्ति और व अर्थात् वर्तमान। इस प्रकार सत्य, शक्ति और समय मिलकर जीव का निर्माण करते हैं। चेतना चैतन्य का विस्तार है। माया प्रकृति का विस्तार है और अतीत तथा भविष्य वर्तमान के विस्तार हैं। चेतना, शक्ति और वर्तमान के साथ आने पर ही जीव का निर्माण होता है। जीव एक शरीर को आकार देता है। जीव के अपने तीनों अवयवों

में विखण्डित होने पर इस शरीर के होने का कारण भी समाप्त हो जाता है लेकिन ये कैसे पता चले कि जीव अब विखण्डित हो चुका? जब आपको अपने मूल स्वरूप का ज्ञान हो जाए, आप वर्तमान को प्राप्त कर लें और शक्ति को पहचान लें। व्यक्तित्व जब टूट जाए और चेतना प्राप्त हो जाए। यह संकेत होता है कि चेतना अब मुक्त हुई। अब यह चैतन्य की ओर गमन करने को स्वतंत्र है। चेतना शक्ति के माध्यम से वर्तमान अर्थात् समय से जुड़ती है और शक्ति के माध्यम से ही इस शरीर से बँधी होती है। अंतत: शक्ति को ही माध्यम बना, वह इस शरीर से मुक्त भी होती है।

❖❖

आवेशित होने के साथ ही अशुद्धियाँ बढ़ती चली जाती हैं। विज्ञान हमें बताता है कि आवेशित कण अपने वातावरण से प्रतिक्रिया करता है और प्रतिक्रिया कर वो पदार्थ का निर्माण करता है। अपने वातावरण से की गई क्रियाएँ ही अशुद्धियों को निमंत्रित करती हैं। जब कहा जाता है कि मान और अपमान में सम रहो, उसका तात्पर्य है कि अपने वातावरण से कोई क्रिया मत करो। एक बल्ब में उपस्थित अक्रिय गैस अपने वातावरण से प्रतिक्रिया नहीं कर पाती। इसी कारण बल्ब जल सकता है। अक्रिय गैसों के समान ही, एक व्यक्ति भी अपने मूल स्वरूप के ज्यादा निकट तब ही रह सकता है, जब वह वातावरण से अपने सम्बन्धों को सीमित कर ले।

जिस प्रकार एक लोहा अपने वातावरण से क्रिया कर जंग का निर्माण करता है और अंतत: टूटकर खण्डित हो जाता है। ठीक उसी प्रकार एक जीवात्मा मन से क्रिया कर एक व्यक्तित्व का निर्माण करती है। व्यक्तित्व मृत्यु के साथ विखण्डित हो जाया करता है। जीवन में यदि व्यक्ति, चेतना को अनावेशित कर पाए तो मृत्यु के पश्चात् वो मन और बुद्धि को अपनी ओर आकर्षित नहीं करता। इस प्रकार व्यक्ति पुन: शरीर लेने से बच जाता है। एक अनावेशित चेतना अर्थात् जीवात्मा ही शरीर लेने के लिए बाध्य होती है। भारत में साधुओं के एक अखाड़े को उदासीन अखाड़ा भी कहा जाता है। उदासीन अर्थात् वे जो न पक्ष में होते हैं और न ही विपक्ष में। वे मन को ये स्वतंत्रता नहीं देते कि मन उनके लिए किसी विचारधारा का निर्माण करे। जिसका पालन करने के लिए वे बाध्य हों।

❖❖

चेतना किसी देवमूर्ति में जड़े उस आभूषण के समान है जिसे पुजारी सहेजना चाहता है और चोर चुराना। पुजारी है शक्ति और चोर है मन। चेतना को शक्ति की ओर खींचता है विवेक तथा मन की ओर खींचते हैं विचार। विचार इच्छाओं की सघनता पर निर्भर करते हैं। जितनी सघन और तीव्र इच्छाएँ, उतनी ही ज्यादा संघनित और चंचल विचार। शक्ति या मन में से जो कोई भी ज्यादा प्रबल होता है, चेतना उसी की ओर झुक जाती है। समस्त साधनाओं और तपस्याओं का एक ही फल होता है और वो है शक्ति। शक्ति से बड़ा कोई दूसरा फल नहीं है। शक्ति के माध्यम से ही व्यक्ति मन के चंगुल से मुक्त हो सकता है तथा इस सृष्टि और सृष्टि के निर्माता से जुड़ सकता है।

वहीं मन का कार्य इस योग की प्रक्रिया को होने से रोकना है। मन पूरा प्रयास करता है कि इस जीवन में आप योग प्राप्ति न कर सकें। यही कारण है कि हर व्यक्ति के जीवन में विवेक का बहुत महत्व है क्योंकि व्यक्ति को हर कठिन समय में एक निर्णय लेना होता है। व्यक्ति को जो दो विकल्प मिलते हैं वो ठीक एक दूसरे से विपरीत होते हैं। मन जो साधन या समाधान देता है, विवेक ठीक उससे उल्टा समाधान देता है। अब ये व्यक्ति की इच्छाशक्ति पर निर्भर करता है कि दोनों विकल्पों में से कौन-सा विकल्प चुने। विकल्पों को अपनाने पर उनसे प्राप्त हुए परिणाम एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हैं। जहाँ मन द्वारा दिए गए विकल्प को अपनाने से व्यक्तित्व का तुष्टिकरण होता है, वहीं विवेक द्वारा दिए गए विकल्प को अपनाने पर चेतना शांति प्राप्त करती है।

❖❖

चेतना अतीत और भविष्य से लेकर वर्तमान तक और फिर वर्तमान से समय हीनता तक की अपनी यात्रा पूरी करती है। मनुष्यों में चेतना अतीत और भविष्य से बँधी होती है। अतीत और भविष्य के कारक हमारे भीतर उपस्थित होते हैं। जो हैं मन और बुद्धि। होश संभालने से लेकर मृत्यु तक, व्यक्ति अपना जीवन मन और बुद्धि द्वारा बुने गए उधेड़बुन में ही बिताता है। वह या तो अतीत की ओर देखता रहता है या फिर भविष्य की ओर। बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् चेतना का अतीत और

भविष्य से सम्बन्ध टूट जाता है। अब यह वर्तमान से जुड़ जाती है। इसी कारण अतीत के और भविष्य के सभी बुद्ध, वर्तमान में स्थित होते हैं। वे वर्तमान की बातें करते हैं। इस अवस्था में वे मन और बुद्धि का अवलोकन कर सकते हैं। इसी कारण मनुष्यों को वे मन और बुद्धि की विशेषताएँ और उनके क्रियाकलापों को समझाते हैं। साथ ही साथ वर्तमान में स्थित हुए, समय हीनता की ओर देखते रहते हैं। एक नियत स्तर तक उदासीन और अनावेशित होकर चेतना अपने द्वारा ईश्वर के निमित्त कार्यों को आकार लेते हुए देखते रहती है तथा उचित समय आने पर यह वर्तमान को छोड़कर अंतत: समय हीनता में विलीन हो जाती है।

❖❖

सच १८० डिग्री व्यू है तो सत्य ३६० डिग्री। जो हम अपने सामने घटित होते देखते हैं उसे सच कहते हैं। झूठ वो है जैसा कभी घटित हुआ नहीं लेकिन उसके घटित होने का दावा किया जाए। सच की ओर नजर गड़ाए हुए, हम तस्वीर का मात्र एक भाग देखते हैं। सच और झूठ दोनों ही व्यक्तियों से जुड़े होते हैं। व्यक्तित्व ही इनमें रुचि लेता है। प्रकृति को सच और झूठ में कोई रुचि नहीं। सच सदैव दृश्य जगत से जुड़ा है। हो सकता है सच हमारे सामने घटित तो हो रहा हो लेकिन हमारे पीछे खड़े किसी व्यक्ति की दृष्टि में वो न आ पाए। इस दशा में वो सदैव भ्रम का शिकार ही रहेगा कि वास्तव में अमुक घटना घटी थी या नहीं। लेकिन सत्य घटित नहीं होता वह स्थित है, सदैव चारों ओर। हम उसे इन नेत्रों द्वारा देख भी नहीं सकते। वो हमारी सभी इंद्रियों से परे है। जिस प्रकार ईश्वर हमारी सभी इंद्रियों से परे है। हमारी दृष्टि एक क्षेत्र विशेष में सिकुड़ी होती है। हमारी आँखें एक ही समय में अपने चारों ओर घटित होने वाली सभी घटनाओं को और साथ ही साथ वे घटनाएँ जो कभी घटित नहीं होतीं लेकिन स्थित सदैव रहती हैं, उन्हें देख नहीं सकती इसलिए हमारा वही भाग सत्य को प्राप्त कर सका है, जो इंद्रियों के बँधन से मुक्त हो सके और वो है हमारी चेतना।

❖❖

अगर हम रॉकेट साइंस की भाषा में समझने का प्रयास करें तो साइंटिस्ट है भगवान या निर्माणकर्ता; रॉकेट है शरीर; इंजन है मन; ईंधन है शक्ति और उपग्रह

है आपकी चेतना।

साइंटिस्ट या भगवान पृथ्वी पर उपस्थित संसाधनों, जो प्रकृति से प्राप्त किए जाते हैं उनसे शरीर रूपी रॉकेट का निर्माण करता है। फिर उसमें एक मन रूपी इंजन फिट किया जाता है और ईंधन रूपी शक्ति को इसमें भरा जाता है। इंजन ईंधन का उपयोग कर उसे ऊर्जा में परिवर्तित कर इसे शरीर को देता है। जिससे शरीर गतिमान होता है। इस प्रकार रॉकेट, शक्ति का उपयोग कर अंतत: पृथ्वी के गुरुत्व से ऊपर की ओर उठता है। निर्माणकर्ता यह चाहता है कि आप अंतरिक्ष की शांति में स्थित हुए पृथ्वी की विचारधाराओं से दूर रहें। आप वहाँ से पृथ्वी के मौसम, पहाड़, नदियाँ, समुद्र, धरती इत्यादि का अवलोकर करें और अपने अवलोकन को वापस पृथ्वी पर भेज दें। जिसका उपयोग मानव सभ्यता की प्रगति में किया जा सके। उपग्रह को अंतरिक्ष में स्थापित किए जाने का कारण है कि पृथ्वी पर स्थित हुए वे दृश्य, उपग्रहों को प्राप्त नहीं हो सकते जो दृश्य उसे अंतरिक्ष से प्राप्त हो सकते हैं।

वे दृश्य अंतत: सभी मनुष्यों के लिए फायदेमंद होते हैं। निर्माणकर्ता ने उपग्रहों को जितनी अवधि के लिए बनाया होता है, उतनी अवधि तक उपग्रह यही एक नियत कार्य करता रहता है। वह पृथ्वी के लिए कार्य करते हुए, पृथ्वी से मुक्त भी होता है। विचारधाराओं से उसका कोई लेना-देना नहीं। वो तो मात्र अवलोकन में व्यस्त है और साथ ही साथ अंतरिक्ष की अनंत शांति को भी महसूस कर सकता है। अंतत: अपना कार्य समाप्त करके एक दिन वो उसी अनंत अंतरिक्ष का ही एक भाग हो जाता है।

❖❖

पहले चेतना के चारों ओर गुण होते हैं। अब वह बाहर देखे या भीतर, सभी ओर गुण ही दिखाई देते हैं। आँखें खुलने पर दुनियाँ और आँखे बंद करने पर मन की पिक्चर। अर्थात् बाहर से भीतर तक चारों ओर विकल्प ही विकल्प। मनुष्य होने की सबसे बड़ी समस्या यही है कि वो विकल्पों को चुनने के लिए बाध्य है। मनुष्यों की समस्या ही दूसरे प्रकार की है। उनके पास विकल्प न होने की समस्या नहीं है। समस्या है बहुत सारे विकल्प होने की। जिस एक विकल्प को मन चुन देता

है, उस विकल्प पर काम करना मनुष्य के लिए बाध्यकारी हो जाता है। हो सकता है कि कई वर्षों तक और कभी-कभी तो पूरे जीवन वह एक ही विकल्प पर काम करता रहे। वहीं प्रकाश प्राप्ति के बाद चेतना के बाहरी ओर गुण होते हैं और भीतरी ओर निर्गुणता। बाहर स्थित गुण भी अब बाध्यकारी नहीं होते क्योंकि आत्म-साक्षात्कार के बाद आसक्ति का भी विनाश हो जाता है। इस प्रकार गुणों से सम्बन्ध बाध्यकारी न होकर वैकल्पिक हो जाता है और जब भी चेतना भीतर की ओर देखती है उसके पास एक ही विकल्प होता है, जो है शांति में और डूबते जाने का और आनंद को समेट लेने का। अपने व्यक्तित्व को खो देने का और पूर्ण संतृप्ति प्राप्त कर लेने का।

❖❖

परतंत्रता और स्वतंत्रता : परतंत्रता वह अवस्था है जब आत्मा और चेतना के बीच में मन हो। इस दशा में आत्मा की सारी शक्ति, मन और माध्यम से होते हुए चेतना तक पहुँचती है। मन दिनभर चेतना के कानों में बुदबुदाता रहता है कि ये वस्तु चाहिए, वो लड़की या लड़का आकर्षक है, ऐसे कपड़े होने चाहिए, इस जगह पर घूमने जाना है, ये गाड़ी चाहिए, इस स्कूल में एडमिशन चाहिए, इस कोर्स में दाखिला जरूरी है, नाम होना चाहिए, पैसा होना चाहिए, आय का एक निश्चित साधन होना चाहिए जिससे सारी की सारी इच्छाएँ पूरी होती रहें। जीवन सुखी होना चाहिए, सम्बन्ध बेहतर होने चाहिए, दूसरों से इस होड़ में हमेशा आगे रहना चाहिए। पैसा नहीं कमाया तो क्या कमाया? समाज में नाम न हुआ तो क्या खाक हुआ, बच्चों का भी सफल होना जरूरी है और इसी से मेरा परिवार का नाम ऊँचा उठेगा। मेरे पूर्वजों की आत्मा को गर्व होगा। लोग कहेंगे कि 'हाँ, तुम सफल हुए!' इत्यादि। चेतना इन आवाजों पर ध्यान देकर ठीक वैसा ही करती चली जाती है, जैसा की वो सुनती है। मन सब कुछ बताता है बस एक बात नहीं बताता कि ये जो मेरी आवाज सुन रहे हो वास्तव में ये तुम्हारी अपनी आवाज नहीं है। क्योंकि तुम यही मानते हो कि ये तुम्हारी अपनी आवाज है। इसी कारण इस पर अमल किए जाते हो लेकिन वास्तविकता ये नहीं जो मैं बोल रहा हूँ। मैं विजातीय हूँ - मैं तुम्हारा भाग नहीं।

वहीं स्वतंत्रता में ये क्रम बदल जाया करता है। अब आत्मा और मन के बीच में चेतना आ जाती है। इस दशा में आत्मा की शक्ति सीधी चेतना को पहुँचती है और अब उसके कानों में बोलने वाला मन उसके आगे खड़ा होता है। इस दशा में उसे आवाज सुनाई देती है तो अपनी अंतरात्मा की। आत्मा की आवाज को सुनकर और उसकी शक्ति को प्राप्त कर, अब चेतना मन को निर्देश देती है कि आगे यह कार्य संपन्न करना है। अब चेतना उतनी ही शक्ति को ऊर्जा में बदल कर मन को देती है जितनी की आवश्यक हो। बाकी को वह शक्ति रूप में संचय कर, स्वयं में संतुष्ट रहती है, जिसे संतृप्त होना कहते हैं।

❖❖

बिग बैंग की घटना से समय की अवधारणा प्रारंभ होती है, समय की गणना तभी से की जाती है। अर्थात् बिग बैंग के पहले समय नहीं था लेकिन समय का कारण तो मौजूद था। जो तत्व बिग बैंग का कारण बना, वही तत्व बाद में समय का भी कारण बना। बिग बैंग से ही विभिन्नताओं का क्रम प्रारंभ हुआ। तत्व में भी और समय में भी। तत्व विभिन्न भागों में बँटते चले गए और समय भूत, भविष्य और वर्तमान के रूप में विभाजित हो गया। बुद्धि के विकास के साथ-साथ मनुष्य ने समय पर ध्यान देना प्रारंभ किया। उसने बीते हुए कल से सीखना और आने वाले कल से उम्मीदें जोड़ लीं। इस प्रकार एक ही कारण से विभिन्नताएँ बनीं और फिर वे बढ़ती चली गई। जानवरों में विभिन्नताएँ सीमित हैं, भोजन, नर-मादा, कुटुंब और प्रजाति तक।

मनुष्यों में बुद्धि जब और विकसित हुई तब विभिन्नताएँ भी विकसित हुईं। अब पुरुषों और स्त्रियों के भी विभिन्न वर्गीकरण बनने लगे। रंग-रूप, ऊँचाई, स्थान, जाति, गोत्र, धर्म, संप्रदाय, क्षेत्रियता, राष्ट्रियता, वर्ण, इत्यादि। इसी प्रकार एक ही कारण से विभिन्न विभिन्नताओं ने जन्म लिया और वे फैलती चली गईं। विभिन्नताओं की दिशा में जाने पर वे बढ़ती हैं और विपरीत दिशा में जाने पर ही वे सिकुड़ती हैं। जहाँ पर विभिन्नताएँ समाप्त होती हैं वहाँ से कारण प्रारंभ हो जाता है। इस प्रकार कारण जानना ज्यादा जरूरी है बजाय कृति के। लेकिन दुर्भाग्य ये है कि हमारा जीवन अक्सर कृति के पीछे ही घूमते बीत जाता है और कारण से हम वंचित ही रह जाते हैं।

❖❖

रिसर्च शब्द क्यों? क्योंकि हर एक व्यक्ति की शुरुआत वहाँ से हुई जहाँ वे अपने वास्तविक स्वरूप को जानते थे और अब अपनी जीवन सम्बन्धित हर एक खोज को करते हुए वे वास्तव में खुद को ही ढूँढ रहे हैं। हर एक खोज का मूल अपनी खोज में है। इसी कारण वैज्ञानिक मैटर से पार्टिकल फिजिक्स तक और फिर क्वांटम फिजिक्स तक पहुँच गए ताकि जीवन की उत्पत्ति के रहस्य को ढूँढा जा सके और हमारी ये खोज तब तक पूर्ण नहीं होती, जब तक हम खुद को ना ढूँढ लें। अपने स्वरूप को जानने, उत्पत्ति के रहस्यों को जानने, इस सृष्टि के रहस्य को जानने के पश्चात् ही ये खोज पूर्ण हो सकती है। हर एक रिसर्च के मूल में सिर्फ सर्च है और हर एक प्रयोग के मूल में योग है। वैज्ञानिक सूक्ष्म कणों में जीवन की उत्पत्ति के रहस्य को ढूँढ रहे हैं और साधक सूक्ष्म शरीर में, जैसे सूक्ष्म शरीर व सूक्ष्मता में ही विस्तार के रहस्य छुपे हैं। वैसे ही हर विज्ञान के मूल में ज्ञान ही है।

❖❖

मन से चेतना जुड़ती कैसे है? श्री कृष्ण गीता में कहते हैं कि जीवात्मा प्रकृति में उपस्थित मन और बुद्धि को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। जीवात्मा स्वयं आवेशित है तो उसका अशुद्धियों से जुड़ना स्वाभाविक है। जीवात्मा शक्ति के माध्यम से मन से जुड़ती है। प्रकृति में उपस्थित शक्ति ही जीव को शरीर लेने हेतु उपयुक्त माध्यम और वातावरण उपलब्ध कराती है। शक्ति की अनुपस्थिति में पृथ्वी पर जीवन का चक्र चलना असंभव है और अंतत: प्रकृति रूपी शक्ति ही, जीव को एक शरीर का आकार प्रदान करती है। इस प्रकार हर जीव की यात्रा, प्रकृति से ही प्रारंभ होती है। हर जीव का जीवन भी प्रकृति से ही संचालित होता है। जीव शरीर से तभी तक जुड़ा रह सकता है जब तक जीवनीशक्ति उपलब्ध है। जीवनीशक्ति के समाप्त होने पर, जीव का शरीर से सम्बन्ध तो टूट जाता है लेकिन मन से सम्बन्ध बना रहता है। यही कारण है कि वो अगले शरीर की ओर पुन: गमन कर जाता है। शरीर लेने और छोड़ने की ये प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक जीव और मन के बीच उपस्थित शक्ति बंधन ना टूटे। जिस प्रकार अणु

में उपस्थित परमाणुओं के बीच उपस्थित बँध में, ऊर्जा उपस्थित होती है और जब तक बाह्य ऊर्जा न प्राप्त हो ये बँधन नहीं टूटते। ठीक उसी प्रकार जीवात्मा और मन के बीच उपस्थित, शक्ति रूपी बँध जब तक नहीं टूटता तब तक व्यक्ति अपने भीतर की सुषुप्त शक्ति को जागृत नहीं करता।

❖❖

उद्विकास से विकास और फिर विकास से उद्विकास तक। प्रागैतिहासिक मानव से लेकर आधुनिक मानव तक। मनुष्य ने अपना उद्विकास देखा और ये प्रक्रिया लाखों सालों में पूरी हुई। एक-कोशिकीय से लेकर बहु-कोशिकीय और फिर जंतु से लेकर मानव तक जीवों का उद्विकास हुआ क्योंकि उद्विकास सतत् स्वत: ही होने वाली प्रक्रिया है। इसमें मानव का अपना कोई दखल नहीं। इस कारण उसने अपनी ऊर्जा विकास की ओर मोड़ दी। पहली मानव सभ्यता से लेकर आधुनिक मानव सभ्यता तक मनुष्य ने अपनी विकास यात्रा कुछ हजार सालों में आगे की ओर बढ़ाई परंतु विकास तभी तक स्थिर है जब तक वह प्रकृति के विरोध में नहीं है।

पिछले सौ वर्षों की मनुष्य की विकास यात्रा ने प्रकृति को बहुत नुकसान पहुँचाया और उसका परिणाम आज हमें जलवायु परिवर्तन, तापमान वृद्धि, बाढ़-सूखे, सुनामी और चक्रवात इत्यादि जैसी प्राकृतिक आपदाओं के रूप में झेलना पड़ रहा है। इसका तात्पर्य ये है कि विकास की भी अपनी एक परिधि है। जब भी यह अपनी परिधि को लाँघने का प्रयास करेगा, मनुष्य को ही नुकसान पहुँचाएगा। ठीक उसी प्रकार जैसे अनियंत्रित मन मनुष्य को नुकसान पहुँचाता है। वैसे ही मनुष्य जब अपनी विकास यात्रा से स्वयं को संतुष्ट नहीं कर पाता, तब वह अपने प्रश्नों के उत्तर, विकास से परे जाकर ढूँढने का प्रयास करता है। विकास मनुष्यों के सभी प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता। ये बात जानकर मनुष्य अपने आंतरिक उद्विकास की ओर मुड़ जाता है। मनुष्यत्व से बुद्धत्व और फिर बुद्धत्व से शिवत्व तक की यात्रा, मनुष्य की इसी आंतरिक उद्विकास की यात्रा है। विकास के माध्यम से एक नियत स्तर के विकास व एक नियत स्तर की संतुष्टि प्राप्त होने के पश्चात् मनुष्य अध्यात्मिकता के माध्यम से अपने शेष प्रश्नों के उत्तर ढूँढने का प्रयास करने लगता

है। जिस प्रकार हर बीमारी का इलाज सिर्फ दवा नहीं, ठीक उसी प्रकार हर प्रश्न का उत्तर सिर्फ विकास में ही नहीं छुपा।

❖❖

इस सृष्टि की संरचना कुछ ऐसी है कि इसमें अनंत तक फैला खाली स्थान, जिसे स्पेश या शून्य कहते हैं विद्यमान है। इस शून्य में जगह-जगह पर पदार्थ अथवा ग्रहों की उपस्थिति है। सृष्टि में शून्य और पदार्थ का अनुपात यदि देखा जाए तो पदार्थ १ गुणे $१०^{-२२}$ भाग में ही उपस्थित है। शेष ९९.९९ प्रतिशत भाग शून्य से भरा है। योगी ब्रह्माण्ड के ९९.९९९९ प्रतिशत भाग से जुड़ना चाहता है और मनुष्य ब्रह्माण्ड के १ गुणे $१०^{-२२}$ भाग से ही संतुष्ट है, क्योंकि हमारी सारी इच्छाएँ पदार्थ से ही जुड़ी हैं और पदार्थ सृष्टि के अत्यंत अल्प भाग में ही स्थित है। इस प्रकार सृष्टि जो हमें दे सकती है उसके अत्यन्त अल्प भाग से ही हम संतुष्ट हैं।

सृष्टि के पास हमें देने को बहुत कुछ है लेकिन हमने स्वयं को इसके अत्यंत अल्प भाग के मोह में उलझा रखा है। योगी सृष्टि से समग्र रूप से जुड़ना चाहता है और भूमि का मोह तो अत्यंत सीमित दायरे में सिमटा है। शून्य इस पूरी सृष्टि में एक समान है। पृथ्वी के चारों ओर उपस्थित शून्य और यदि इस सृष्टि की कोई परिधि है तो वहाँ तक उपस्थित शून्य में कोई अंतर नहीं। लेकिन ग्रहों के गुण और विशेषताएँ थोड़ी-थोड़ी दूर पर बदल जाया करती हैं। यही कारण है कि अंतरिक्ष वैज्ञानिकों की अंतरिक्ष में रुचि बनी रहती है क्योंकि वैज्ञानिक गुण और विशेषताओं को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं और योगी निर्गुणता को।

❖❖

मन मनुष्य में उपस्थित एक इंजन के समान है। जो आप की शक्ति बाहर की ओर और धुआँ भीतर की ओर फेंकता है। जीवन का लक्ष्य इसी इंजन के प्रवाह को मोड़ देने में है, जब वह शक्ति भीतर की ओर और धुआँ बाहर की ओर फेंके। मन के शक्ति को बाहर की ओर फेंक देने के कारण हम अपनी ही शक्ति से वंचित रह जाते हैं और धुएँ को भीतर की ओर फेंकने के कारण हमारे भीतर भ्रम बढ़ता जाता है। जैसे कोहरे में उपस्थित मनुष्य भ्रम में घिरा रहता है। कोहरे के कारण एक ड्रॉइवर की क्षमता अत्यंत घट जाती है। ठीक वैसे ही भीतर उपस्थित भ्रम के

कारण एक मनुष्य की कार्य क्षमता भी अत्यंत सीमित हो जाती है। भ्रम के कारण, मनुष्य जीवनभर अपनी गाड़ी इसी कोहरे में चलाने के लिए बाध्य रहता है। वो अपनी क्षमताओं का कभी भी पूर्ण उपयोग नहीं कर पाता। एक सेनापति यदि भ्रम में है तो उसकी सेना और सेना के प्रदर्शन पर सेनापति के भ्रम का प्रभाव पड़ना निश्चित है। वहीं इंजन के इस प्रवाह दिशा बदल जाने पर, शक्ति कई गुणा बढ़ जाती है और भ्रम कई गुणा घट जाता है। अब परिदृश्य साफ है- पास में शक्ति और संसाधन है। सेनापति अब समर्थ और दृढ़ है। अब वह अपने लक्ष्यों को भी जानता है और उन्हें प्राप्त करने की योजना को भी। उसे अपनी सेना पर भी भरोसा है और सेना को अपने सेनापति पर पूर्ण विश्वास है। अब भ्रम नहीं अब दृढ़ता है। दूर उपस्थित लक्ष्य जो साफ दिख रहा है और उस लक्ष्य तक पहुँचने की आप में शक्ति भी है। अब कोई अवरोध भी नहीं, रुकने का कोई कारण भी नहीं।

❖❖

अच्छे और बुरे कर्मों का रिकॉर्ड भगवान के किसी सेन्ट्रली लोकेटेड सर्वर में नहीं रखा जाता। ये हमारे भीतर ही हमारी चेतना के ऊपर उपस्थित आवेशों में संचित रहता है। हिन्दू पुराणों में चित्रगुप्त का उल्लेख होता है। जिनके पास उपस्थित एक विशाल डॉयरी में सभी के कर्म संचित होते हैं। जब कभी भी आवश्यकता हो, वे अपनी डॉयरी खोलकर अमुक व्यक्ति के रिकॉर्ड को खंगाल लेते हैं और उसके आधार पर निर्णय कर दिया करते हैं कि आगे तुम्हें किस दिशा में जाना है। स्वर्ग की ओर या नर्क की ओर। वास्तव में चित्रगुप्त भी हिन्दू धर्म में प्रयुक्त अनेक प्रतीकों में से एक प्रतीक हैं। चित्रगुप्त अर्थात् गुप्त रूप से जो चित्त में ही सभी कर्मों को संचित करके रखे। हमारे चित्र हमारे भीतर हैं। हमारी सारी कामनाएँ हमारे चित्त में हिलोरे लेती रहती हैं। यह सदैव हमें नए-नए विकल्प देता रहता है। चित्त के ऐसा करने का तात्पर्य है कि तुम सत्य को मत ढूँढो। अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाओ। ये विकल्प जो मैं तुम्हें दे रहा हूँ इसके पीछे जाओ। यदि तुम्हें ये विकल्प पसंद नहीं तो तुम्हें मैं एक दूसरा विकल्प दूँगा। चित्त तब शांत होना प्रारंभ होता है, जब चित्त में उपस्थित संचित कर्मफल धीरे-धीरे शांत होने लगें। सभी संचित कर्मफल जीवात्मा के ऊपर उपस्थित आवेशों में संचित रहते हैं और यही कारण है कि जीवात्मा अपने वातावरण से प्रतिक्रिया करती रहती है।

जीवन की जो गहरी समझ रखते हैं वे दूसरों को आवेशित न होने की सलाह देते हैं और यही सलाह वे खुद को भी दिया करते हैं क्योंकि वे जानते हैं जब भी आवेश आएगा, तब प्रतिक्रिया होगी। यदि प्रतिक्रिया होगी तो कर्मफल संचित होंगे। व्यक्ति आवेशित, सदैव अपने व्यक्तित्व की रक्षा करने को होता है या फिर अपने व्यक्तित्व को स्थापित करने के लिए। इस दशा में वह स्वयं से ही दूर चला जाता है और साथ ही साथ स्वयं को कष्ट भी देता है। स्वयं को अनावेशित करना ही साधना है।

❖❖

ग्रह, उपग्रह, धूमकेतु, सूर्य इत्यादि सभी समय से बँधे हैं लेकिन शून्य पर समय का कोई जोर नहीं। परिवर्तन समय से स्थाई रूप से जुड़ा है। जो कुछ भी परिवर्तनशील है वो समय के दायरे में है और जिसमें समय के साथ कोई परिवर्तन नहीं होता, उस पर समय का कोई प्रभाव नहीं। सूर्य स्वयं खुद में उपस्थित गैसों द्वारा प्रकाशित है। नाभिकीय संलयन प्रक्रिया द्वारा, जब परमाणु आपस में प्रतिक्रिया करते हैं तब प्रकाश और ऊर्जा निकलती है। जैसे-जैसे इन गैसों का भण्डार समाप्त होता जाएगा, सूर्य की आयु भी कम होती जाएगी। मनुष्य अपने भीतर में होने वाले परिवर्तनों से बँधा है और इन्हीं परिवर्तनों को धीमा करने या रोकने का प्रयास करता हुआ वह सतत् इनसे जूँझता रहता है। पृथ्वी भी परिवर्तनशील है। आज से कुछ हजार सालों पहले और अब के पर्यावरण और तापमान में काफी अंतर आ चुका है। समय-समय पर पृथ्वी पर हिमयुग आते रहे। रेगिस्तान और समुद्र अपना स्थान बदलते रहे। इस प्रकार यदि समय है तो परिवर्तन भी।

घड़ियाँ दिन और रात के परिवर्तन से जुड़ी हैं। मनुष्य सदैव अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन लाने और उसे बेहतर करने का प्रयास करता रहता है क्योंकि वह जानता है कि समय सीमित है लेकिन शून्य पर समय का कोई प्रभाव नहीं। इसी कारण समय की कोई भी गणना शून्य पर आधारित नहीं है। शून्य में व्यक्ति और व्यक्तित्व दोनों ही क्षीण होने लगते हैं। शरीर की मसल्स (माँसपेशियों) और उनकी क्रियाविधि पर प्रभाव पड़ता है। उन्हें पहले जैसी स्थिति में रखने हेतु अंतरिक्षयात्री व्यायाम का सहारा लेते हैं। अंतरिक्ष यान जो एक उपग्रह की भाँति कार्य करता है,

उसमें भीतर रहकर ही अंतरिक्ष यात्री सुरक्षित रह सकते हैं। यदि वे अपने अंतरिक्ष यान से बाहर निकलकर अंतरिक्ष भ्रमण या गमन करते भी हैं तो विशेष प्रकार के सूट पहनकर ही। कारण सिर्फ इतना सा है कि शून्य किसी भी परिवर्तनशील वस्तु को स्वीकार नहीं करता। परिवर्तनशील प्राणियों को परिवर्तनशील वातावरण चाहिए और शून्य में कुछ भी नहीं बदलता। अनंतकाल से आज तक कुछ नहीं बदला।

❖❖

'मन: चिकित्सा' मन, व्यवहार और भावनात्मक समस्याओं की रोकथाम और उपचार से सम्बन्धित विभाग है। यह मस्तिष्क और उससे सम्बन्धित समस्याओं से निपटती है। हाँलाकि मन शब्द मस्तिष्क से ज्यादा गहरा है क्योंकि मस्तिष्क आपके अगले जीवन तक नहीं जाता लेकिन मन अवश्य जाता है। कुछ बच्चे शुरुआत से ही अपने व्यक्तित्व पर कार्य करना प्रारंभ कर देते हैं। वहीं कुछ बच्चे इस बात से निश्चिंत होते हैं। कुछ का मन ज्यादा चंचल और वहीं कुछ का मन ज्यादा ठहरा व शांत होता है। कुछ अपने लक्ष्यों के प्रति ज्यादा सचेत हैं और वहीं कुछ भ्रमित। कुछ अपनी सीढ़ियों पर ज्यादा तेजी से चढ़ना चाहते हैं और वहीं कुछ अपनी सीढ़ियों पर खेला करते हैं। कुछ के लिए व्यक्तित्व अति महत्वपूर्ण है और कुछ के लिए सामान्य। कुछ व्यक्तित्व सम्बन्धित प्रश्नों में ही मग्न हैं और वहीं कुछ व्यक्तित्व से इतर बातों में जिज्ञासा प्रकट करते हैं। कुछ काल्पनिक कथाओं में अति रुचि लेते हैं, वहीं कुछ दूसरे जिन्हें काल्पनिक कथाओं में बिल्कुल भी रुचि नहीं। किसी को दूसरे के मन से उपजी कहानियों में अत्यंत रुचि है, वहीं कुछ को इन में बिल्कुल भी रुचि नहीं। कुछ को परिवार की अवधारणा, इसके कर्तव्य और आसक्ति अत्यंत प्रिय हैं, वहीं कुछ के लिए ये समय व्यर्थ करना है। कुछ के लिए बुद्धि पैसे कमाने का माध्यम है, वहीं कुछ के लिए रचना का। कुछ आविष्कारों के व्यापार में रुचि लेने हैं और वहीं दूसरे कुछ उनके अविष्कारों में। कुछ कही-सुनी बातों को मानने के लिए तैयार हैं। वहीं कुछ सुनी हुई बातों पर ज्यादा जानकारी एकत्र करना चाहते हैं और फिर ही वो उसे मानेंगे। वहीं तीसरे कुछ हैं जो स्वत: ही जानना चाहते हैं, मानने में उनका कोई विश्वास नहीं।

❖❖

मन के स्तर पर जब तक आप दमित, व्यग्र और सताए हुए नहीं हैं तब तक जो कुछ भी आपके पास है उसके साथ आराम से हैं। आपका दमन एक अवसर बन जाता है। दमनकारी से परे देखने का और दमन के इस पूरे चक्र से बाहर निकलने का। यदि आवश्यकता आविष्कार की जननी है तो दमन संघर्ष और फिर बँधन मुक्ति का कारण है। जब तक दमन न होगा तब तक अमन की आवश्यकता न होगी। अवसाद भी कभी-कभी परम स्वाद का कारण बन जाता है। अवसाद का कारण मन ही तो है और मन ने जब तक सताया नहीं तब तक उससे कोई समस्या भी न हुई। मन उठाता है तो गिराता भी है और गिर ही कर यह बात पता चलती है कि शिखर पर इतना सुख क्यों न था, जितना गिरन पर दु:ख हुआ। यही कारण है कि बुद्ध कहते हैं कि यह संसार दु:ख के समान है।

❖❖

सूर्य के प्रकाश में सात रंग उपस्थित होते हैं - 'बैंगनी, जंबुकी, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल'। धरती सूर्य से जुड़ी है उस रंग के माध्यम से जो प्रकाश के ठीक मध्य में स्थित है। वो है हरा। धरती ने भी प्रकाश के दोनों छोरों (बैंगनी और लाल) को न चुना। वह मध्य में आ गई और उसने स्वयं के ऊपर हरियाली बिखेर ली। हरी पत्तियाँ उस सोलर पैनल की भाँति कार्य करती हैं जो सूर्य की ऊर्जा के माध्यम से भोजन का निर्माण करती है। धरती का हरे रंग को चुनना, आपको यह संकेत है कि आप किसी एक विचारधारा को चुन स्वयं को परिधि पर न ले जाएँ। वो चाहती है कि आप मध्य में रहें।

विचारधाराओं के बँधन से बँधना आवश्यक नहीं है। जब भी आप परिधि पर नहीं होते, अपने केन्द्र के ज्यादा निकट होते हैं। जैसे रेलिंग पर झूलने वाले व्यक्तियों को ये चेतावनी दी जाती है कि वे सावधान रहें अन्यथा नीचे गिरने का भय है। ठीक उसी प्रकार यदि विचारधाराओं से जुड़कर यदि कोई व्यक्ति स्वयं को कट्टरपंथ की परिधि पर धकेल देता है तो वह अपने लिए ही खतरे पैदा कर लिया करता है। बीच में होना अर्थात् आसक्ति रहित होना। परिधि पर व्यक्ति सदैव आसक्ति के कारण ही जाता है। मध्य के रंग अर्थात् हरे को चुनकर प्रकृति, जंतुओं के लिए भोजन निर्माण कर लिया करती है। वहीं आसक्ति रहित होकर मध्य में रहने वाला व्यक्ति अपने आसपास के प्राणियों के लिए ज्यादा लाभप्रद है और उपयोगी भी।

❖❖

पदार्थ से निकलते हैं, प्रकाश और ऊष्मा। चयन हमारा है कि हम किस मार्ग पर आगे बढ़ते हैं? प्रकाश के या ऊष्मा के। मनुष्य को दोनों ही उपलब्ध हैं। प्रकाश भी और ऊष्मा भी। काम ऊष्मा पैदा करता है पर ज्ञान प्रकाश। जिस प्रकार प्रकाश अंधकार से सम्बन्धित सभी भ्रमों को और भयों को समाप्त कर देता है। ठीक उसी प्रकार ज्ञान का प्रकाश अपने व्यक्तित्व से सम्बन्धित भ्रम और भय को मिटा देता है। वहीं काम से सम्बन्धित ऊष्मा सदैव इस भ्रम को बनाए रखती है कि इंद्रिय के माध्यम से सुख प्राप्य है। ऊष्मा बढ़ने के साथ ताप नियंत्रण की आवश्यकता पड़ती है और प्रकाश बढ़ने के साथ आत्मनियंत्रण की। प्रकाश ही नियंत्रण देता है। जब तक प्रकाश न था तब तक नियंत्रण मन के हाथों में था। प्रकाश आने के साथ ही अपना नियंत्रण अपने हाथों में आता है और इस प्रकार स्वाधीनता का युग प्रारंभ होता है। स्वाधीनता के साथ ही इस यंत्र का नियमन भी हमारे ही हाथों में होता है – 'यंत्र अर्थात् शरीर'। शरीर के स्वस्थ न रहने के पीछे एक कारण है और वो है मन की स्वच्छंदता। वहीं शरीर के स्वस्थ रहने का भी एक कारण है और वो है आत्मनियंत्रण। आसन और प्राणायाम कर व्यक्ति अपने शरीर को स्वस्थ रखना चाहता है। शरीर के माध्यम से कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहता है। इस कारणवश अपनी ऊष्मा को शरीर में नहीं, वातावरण में मुक्त करना चाहता है क्योकि ऊष्मा ही प्रकाश है और प्रकाश ही ऊष्मा। दोनों ही आपस में परिवर्तनशील हैं। इसलिए कोई कारण नहीं कि उसे स्वयं तक सीमित करके रखा जाए।

❖❖

दीपक में प्रकाश भी है तथा पदार्थ भी। साथ ही पदार्थ की तीनों अवस्थाओं के बीच तालमेल भी। ठोस है 'बाती', द्रव है 'तेल', गैस है 'ऑक्सीजन'। जिस प्रकार सूर्य दिन में पृथ्वी को प्रकाशित करता है। वैसे ही एक दीपक रात्रि में अपने वातावरण को प्रकाशित करता है। इस प्रकार दीपक रात्रि का सूर्य है और सूर्य दिन का दीपक। दीपक में उपस्थित पदार्थ प्रकाश के रूप में परिवर्तित हो, वातावरण में समा जाता है। इस प्रकार दीपक हमें बताता है कि प्रकाश के रूप में हम अपने वातावरण को काफी कुछ दे सकते हैं। पदार्थ के भीतर प्रकाश में परिवर्तित होने

का गुण है और यही गुण मनुष्यों के भीतर भी है। सूर्य प्रकृति का भाग है, यह स्वयं को जलाकर दूसरों को प्रकाशित करता है; दूसरों को जीवन देता है। इसी प्रकार मनुष्य भी अपने भीतर की शक्ति को जब प्रकाश में परिवर्तित करने योग्य हो जाता है, तब वह प्रकृति के साथ साम्य में आ जाता है। इस दशा में उसने स्वयं को प्रकृति के साथ पुन: जोड़ लिया और अब वो वही काम कर रहा है जो बाहर प्रकृति कर रही है। इस प्रकार यदि प्रकृति शांति में पूर्णतया स्थित है तो उस व्यक्ति का भी शांति लाभ करना स्वाभाविक है। पार्वती ने तपस्या कर जब स्वयं को प्रकृति रूप में परिवर्तित किया तभी शिव का सानिध्य प्राप्त कर सकीं। इस प्रकार प्रकृति ही वह माध्यम है जो परम से जोड़ती है। दीया, मनुष्य के लिए अनुकरणीय है। यही कारण है कि दीये को धार्मिक आयोजनों में सम्मिलित किया गया। बिना दीप प्रज्ज्वलन के आरती संभव नहीं। बिना दीप प्रज्ज्वलन के कोई आयोजन का प्रारंभ नहीं। इसी प्रकार स्वयं का दीप प्रज्ज्वलित किए बिना, मनुष्य भी पूर्ण नहीं।

❖❖

भोजन शृंखला के हर चरण पर, प्राणी स्वयं को प्राप्त मात्र दस प्रतिशत ऊर्जा ही अगले चरण तक पहुँचा पाते हैं। स्वयं को प्राप्त सुख को जब आप दूसरों में फैलाएंगे तो खुद को प्राप्त सुख का मात्र दस प्रतिशत ही किसी दूसरे व्यक्ति तक पहुँचा सकेंगे। इस प्रकार मूल सुख का मात्र दस प्रतिशत ही हर स्तर पर आगे बढ़ पाता है।

वहीं जब आप भौतिक सुख को प्राप्त करने में उपयुक्त ऊर्जा को भीतर की ओर मोड़ देते हैं तो शक्ति पूर्ण रूप से शांति में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार आपका आनंद, आपसे मिलने वाला हर व्यक्ति महसूस कर सकता है और आनंद का लाभ दूसरों को अल्पजीवी कामसुख की अपेक्षा कहीं ज्यादा होता है। इसी घटना को 'बुद्ध क्षेत्र' कहते हैं। आनंद संक्रामक है लेकिन सुख नहीं। बुद्ध के चारों ओर रहने वाले शिष्य उनके आनंद का कुछ भाग अवश्य प्राप्त कर सकते थे। वहीं राजकुमार सिद्धार्थ के राज सुख का शायद ही कोई भाग, उनकी प्रजा को मिल सका होगा। शक्ति संक्रामक है लेकिन ऊर्जा नहीं। जब तक कि वो किसी को प्रदान न की जाए। शरीर में ऊर्जा पदार्थ रूप में होती है और शक्ति तरंग रूप में। इस

प्रकार आप स्वयं को प्राप्त ऊर्जा और आनंद दोनों को ही दूसरों तक पहुँचा सकते हैं। बस मार्ग अलग-अलग है।

❖❖

आँखें सीसीटीवी कैमरे की भाँति हैं। जिसमें वे हर वो दृश्य उतार लेती हैं जो उसके सामने है और हमारा मन मॉनिटर पर बैठा वो खोजी है, जो सिर्फ काम लायक और महत्वपूर्ण बातों पर ही ध्यान देता है। शेष सभी सामान्य बातों को वह छोड़ देता है। इस प्रकार हमारी आँखें और हमारा मन, एक साथ तारतम्य में आकर हमारे व्यक्तित्व के लिए काम करते हैं। इस प्रकार मन नेत्रों के माध्यम से उपलब्ध सूचनाओं पर कार्य कर महत्वपूर्ण सूचनाओं के आधार पर विचारों का निर्माण करता है और उस विचार को वो चेतना की ओर आगे भेज देता है। साथ ही साथ उन्हीं सूचनाओं को वो बुद्धि की ओर भी भेजता है और बुद्धि अपने निष्कर्ष, चेतना की ओर अग्रसारित कर देती है। जैसे व्यक्ति किसी घटना को देखकर उसके सम्बन्ध में अपनी धारणा बना लेता है। यहीं किसी दूसरी घटना में उसे अपने लिए संभावना नजर आ सकती है। किसी तीसरी घटना को देखकर वो निर्णायक बन सकता है। वहीं किसी चौथी घटना के सम्बन्ध में उसके पास सलाह मौजूद है।

यदि नेत्र और मस्तिष्क में से नेत्र उपस्थित ना हो तो मन कानों द्वारा उपलब्ध सूचनाओं पर यही प्रक्रिया आरंभ कर देता है। सुनी गई ध्वनि के अनुसार वह चित्त में एक काल्पनिक चित्र खींच देता है। ये चित्र और चित्र से सम्बन्धित अपने निष्कर्ष को चेतना की ओर भेज देता है। इस प्रकार नेत्रों के अनुपस्थित होने पर भी व्यक्ति, अपने वातावरण से जुड़ा रहता है। मात्र जुड़ा ही नहीं, बल्कि पक्ष और विपक्ष में खड़ा होता है। अन्य इंदियों के माध्यम से प्राप्त सूचनाओं का प्रसंस्करण भी मन ही करता है लेकिन यदि इंदियाँ तो उपस्थित हों लेकिन मन ना उपस्थित हो, तब व्यक्ति आसपास घटने वाली घटनाओं के सम्बन्ध में न तो निर्णायक ही बनना चाहता है और न अपने विचार ही रख पाता है। न आसक्ति ही होती है और न लिप्तता ही । इस दशा में व्यक्ति इंद्रियों के माध्यम से बाहरी जगत् से सम्बन्ध तो रखता है लेकिन स्वयं उनमें मिश्रित नहीं होता।

❖❖

लक्ष्मण को शक्ति लगी थी। शक्ति ही क्यों? जीवात्मा शरीर से शक्ति के माध्यम से जुड़ी होती है। बाहर से अत्यधिक शक्ति देकर, जीवात्मा से शरीर के बँध को तोड़ने की कोशिश की जाती है ताकि जीवात्मा और शरीर अलग हो सके। जीवात्मा से शरीर के अलग होने की अवस्था को मृत्यु कहा जाता है। बम और आई०ई०डी० डिवाइसेस भी इसी सूत्र पर कार्य करती हैं। इसी कारण कहा जाता है कि धमाका शक्तिशाली था। जितना शक्तिशाली धमाका उतनी ही ज्यादा जानों का नुक्सान। एटम बम बहुत कम समय में अध्यधिक शक्ति का उत्सर्जन कर बहुत अधिक जाने ले लेने की क्षमता रखता है। इस प्रक्रिया को उबलते हुए पानी से समझा जा सकता है। पानी को उबलने पर उसका तापमान बढ़ता है। तापमान बढ़ने पर बाहर से अत्यधिक ऊर्जा जल में प्रवेश करती है। जल में हाइड्रोजन और ऑक्सीजन बँध से जुड़े होते हैं। ये अत्यधिक ऊर्जा इन्हीं बँधों को तोड़ने का कार्य करती है। बँध के टूटते ही हाइड्रोजन और ऑक्सीजन दोनों अलग हो जाते हैं। इस प्रकार जल का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

लक्ष्मण को शक्ति लगना मनुष्य जाति के लिए एक संकेत है कि हमारे भीतर के बँध, शक्ति के माध्यम से जुड़े होते हैं। अब संजीवनी बूटी किस प्रकार लक्ष्मण की सहायता कर सकती थी?

संजीवनी बूटी वास्तव में शरीर में शक्ति का नियमन करती है। यह अत्यधिक शक्ति को एक नियत स्तर पर ला सकती है और यदि जीवनीशक्ति अत्यधिक कम हो जाए तो यह जीवनीशक्ति की मात्रा को बढ़ा सकती है। इस प्रकार शक्ति का नियमन करके ये व्यक्ति के जीवन को बचा सकती है।

❖❖

एक सामान्य व्यक्ति डॉक्टर या इंजीनियर, दोनों में से कुछ भी बन सकता है। एक इंजीनियर किसी विश्वविद्यालय से डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की डिग्री ले सकता है या फिर अपने अंतस में उतर कर फिलोसीफिकल बन सकता है। वहीं एक डॉक्टर इंटरनल इंजीनियर बन सकता है। गौतम बुद्ध मन के वैज्ञानिक थे। उन्होंने मन का अध्ययन किया था। मन को जाना था। इस प्रकार बुद्धत्व आप को मन का इंजीनियर बनने का एक अवसर प्रदान करता है। इस अवस्था में आप मन

रूपी इंजन के बारे में ज्यादा बेहतर समझ पैदा करते हैं।

इस प्रकार एक व्यक्ति डॉक्टर या इंजीनियर बनने के पश्चात् अपने भीतर का डॉक्टर या इंजीनियर भी बन सकता है। इस प्रकार विकल्प बाहरी दुनियाँ में जाने के भी हैं और भीतरी दुनियाँ में उतरने के भी हैं। बुद्ध का मार्ग अलग था। उन्होंने अपना अध्ययन किसी विश्वविद्यालय में नहीं, वरन् अपनी आत्मा के सानिध्य में बैठकर किया। अपने स्वरूप से सम्बन्धित सभी जानकारियाँ उन्होंने आत्म से प्राप्त कीं। हर एक बुद्ध यही करता है। विश्वविद्यालय प्रमाण पत्र देते हैं और आत्मा उन्नयन देती है। आपको एक स्तर से उठाकर दूसरे स्तर पर बिठा देती है। डॉक्टर या इंजीनियर बन आप शरीरों और मशीनों को ही ठीक कर सकते हैं या उनपर काम कर सकते हैं। लेकिन संसाधनों की अनुपस्थिति में एक डॉक्टर या इंजीनियर दोनों ही निष्प्रभावी हो जाते हैं। बाहरी सर्टिफिकेट आपको इसी दुनियाँ में काम आएंगे लेकिन आंतरिक उन्नयन, शरीर से अलग होने के बाद भी आपके साथ रहेगा।

बुद्धत्व प्राप्ति के पहले मनुष्य के मन में यही प्रश्न होते हैं। वो कहता है कि मुझे शार्ट टर्म सॉल्यूशन मत दो, मुझे वास्तविकता बताओ। मेरी बीमारी को दवाओं से कुछ समय के लिए दबाओ मत। मुझे बताओ कि रोग क्या है? यह क्यों होता है और कैसे इससे छुटकारा पाया जा सकता है?

❖❖

पंचतत्व अर्थात् 'पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश' हार्डवेयर के समान कार्य करते हैं। जिनसे इस शरीर का निर्माण होता है। वहीं मन बुद्धि व अहंकार सॉफ्टवेयर की भाँति होते हैं। जो इस शरीर पर अपना नियंत्रण रखते हैं। जब भी कम्प्यूटर को बिजली के सॉकेट से जोड़ा जाएगा और उसमें विद्युत प्रवाहित होगी, वो वही सॉफ्टवेयर रन करेगा जो उसमें पहले से ही इंस्टॉल है। ठीक उसी प्रकार मनुष्य जब सोकर उठता है और उसे भोजन से ऊर्जा प्राप्त होती है, तब वह मन बुद्धि और अहंकार के प्रभाव में आकर, बरतना प्रारंभ कर देता है। यदि इन तीनों सॉफ्टवेयर्स को डिलीट कर दिया जाए तो हार्डवेयर अब उस प्रोग्राम को रन करेगा जो फैक्ट्री में इंस्टॉल किया गया था, अर्थात् वो प्रोग्राम जो कम्प्यूटर बनाने वाले

का अपना प्रोग्राम है। इस दशा में शरीर, मन का दास न रहकर चैतन्य का माध्यम बन जाता है। बाहरी सॉफ्टवेयर के प्रभाव में आकर कार्य करने से बेहतर है कि हम अपने सॉफ्टवेयर पर कार्य करें।

मन द्वारा सुझाए गए उपायों पर अपनी ऊर्जा और समय लगा देना, मन रूपी सॉफ्टवेयर को अपडेट करने जैसा है। जब आप अपने मन को ऊर्जा और समय नहीं देते तब उस समय रेगुलर अपडेट न होने के कारण सॉफ्टवेयर पुराना पड़ता चला जाता है। लेकिन कुछ है जो हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर दोनों से परे है। जिसकी उपस्थिति के बिना न सॉफ्टवेयर हो सकता था और न ही हार्डवेयर और न ही सॉफ्टवेयर में होने वाले अपडेट और वो है बिजली अर्थात् शक्ति। स्वयं की खोज पूर्ण होने पर प्राप्त होनेवाले निष्कर्ष भी इसी प्रकार के होते हैं। व्यक्ति तब जाकर यह जानता है कि न तो वह शरीर था तथा न ही मन या बुद्धि और न ही मन और बुद्धि के मेल से बना हुआ व्यक्तित्व। वो तो इन सब से परे था; कुछ और ही था। हार्डवेयर रूपी शरीर और सॉफ्टवेयर रूपी मन के सानिध्य में रहता हुआ, वो स्वयं को कभी पहचान ही नहीं पाया था। इस प्रकार से स्वयं को जानकर ही वो हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर के मोह से छूट पाता है क्योंकि तभी वह जान पाता है कि वो सीमित न था। एक डेस्क पर रहने वाले कम्प्यूटर जैसी परिधि न थी उसकी। वह तो सभी जगहों पर उपस्थित था।

❖❖

हेलीकॉप्टर को उड़ान भरने के लिए स्थिर और समतल भूमि की आवश्यकता होती है। यदि स्थिर भूमि न हो तो उड़ान भरने से पहले ही अनियंत्रित होकर वो गिर सकता है और यदि समतल भूमि न हो तो वह गलत दिशा में ऊपर की ओर उड़ सकता है। जिससे उसके पंख जमीन से टकराकर टूट सकते हैं और इस दिशा में हेलीकॉप्टर क्रैश हो सकता है। ठीक उसी प्रकार चेतना को ऊपर की ओर उठने के लिए वर्तमान में स्थिर होना होता है। वर्तमान में स्थिर हुए बिना वह स्वयं को ऊपर की ओर नहीं उठा सकती। यदि वर्तमान में पूर्ण स्थिरता न हो तो वह पुन: अतीत और भविष्य की ओर गिर सकती है। इसी कारण सबसे पहले वह अपने आधार को स्थिर करना चाहती है और इस स्थिरता को प्राप्त करने के लिए उसे

शक्ति की आवश्यकता होती है। इस कारण उसका पूरा जोर शक्ति संवर्धन पर होता है। वो नहीं चाहती कि अनावश्यक रूप से शक्ति ऊर्जा में परिवर्तित होकर व्यर्थ हो। शक्ति संवर्धन में 'यम' उसकी सहायता करता है। यम अर्थात् अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अस्तेय और ब्रह्मचर्य।

पतंजलि ने अष्टाँग योग की आठ सीढ़ियों में यम को सबसे पहली सीढ़ी बनाया ताकि एक स्थित समतल भूमि का निर्माण किया जा सके। जो उस उपजाऊ भूमि की तरह हो, जिसमें बीज पड़ते ही पनपना प्रारंभ कर देता है। उपजाऊ भूमि और यम दोनों एक ही समान हैं। दोनों ही शक्ति प्रदान करते हैं, जिसे पाकर चेतना समृद्ध हो सकती है। जिस प्रकार किसान फसल बोने से पहले भूमि पर काम करता है। सिंचाई, निराई, गुड़ाई और उर्वरकों के छिड़काव द्वारा वो अपनी मिट्टी को समृद्ध बनाना चाहता है ताकि फसल मुक्त रूप से विकसित हो सके। इसी कारण हर व्यक्ति को अपनी उर्वरता पर काम करना चाहिए। शरीर की नहीं, अंतस की। शरीर उपजाऊ हुआ तो बच्चे पैदा करेगा। अंतस उपजाऊ हुआ तो वह चेतना को पैदा करेगा। पैदा होने वाला शरीर भ्रम की ओर अपनी यात्रा में आगे बढ़ जाएगा और जन्म लेने वाली चेतना भ्रम से परे समाधान की ओर गमन कर जाएगी।

❖❖

चेतना के ऊपर उठने की क्रियाविधि : इसे बच्चों के एक छोटे से खिलौने के द्वारा समझते हैं। ये वो खिलौना है जिसमें एक पाइप होती है जो आगे जाकर समकोण पर ऊपर की ओर उठ जाती है। ऊपर एक छोटी बास्केट और उसमें एक छोटी सी गेंद। जब पाइप में जोर से हवा फूँकी जाती है तब गेंद ऊपर की ओर उठती है परंतु बाहर नहीं गिरती। तेजी से बहती हवा, एक कम दबाव का क्षेत्र बनाती है। जिसे भरने के लिए बाहरी हवा, इस कम दबाव के क्षेत्र की ओर आती है। ये दबाव गेंद पर भी पड़ता है जिससे गेंद बाहर की ओर नहीं गिरती। फूँकी गई हवा शक्ति की भाँति कार्य करती है, जो हवा का दबाव एक नियत क्षेत्र में कम कर देती है। गेंद चेतना जैसी है और बाहरी हवा मन जैसी। जिसमें वायुमण्डलीय दबाव जितना ही दबाव होता है। यदि पाइप में हवा का सतत् प्रवाह हो तो गेंद सदैव हवा में लटकी होगी। वो नीचे बास्केट में नहीं लौटेगी। ठीक उसी

प्रकार एक योगी भी अपने शरीर में शक्ति का एक नियत प्रवाह स्थापित कर अपनी चेतना को शरीर से ऊपर स्थापित रखना चाहता है। इस दिशा में चेतना सभी विकल्पों से दूर चैतन्य लाभ प्राप्त करती है। यदि वे सदैव ऊपर ही बनी रहे तो इस अवस्था को निर्विकल्प समाधि कहा जाता है, जब चेतना वायु रूपी प्रकृति में पूर्णतया स्थित होकर ज्ञानरूपी स्थित प्रज्ञता प्राप्त करती रहती है।

❖❖

रॉकेट उपग्रह को शून्य में छोड़ता है और शक्ति, चेतना को शून्य में छोड़ती है। रॉकेट और शरीर में बहुत सारी समानता है। दोनों ही साधन की भाँति कार्य करते हैं। अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु रॉकेट धरती और शून्य के मध्य अपनी सेवाएँ देता है। वहीं शरीर कर्ता जगत् और दृष्टा जगत् के मध्य, व्यक्तित्व और अस्तित्व के मध्य। रॉकेट के बिना उपग्रह शून्य में नहीं जा सकता। वहीं शरीर के बिना सत्य के क्षेत्र में, चेतना प्रवेश नहीं कर सकती। रॉकेट और शरीर दोनों को ही चलने के लिए शक्ति की आवश्यकता पड़ती है और ये शक्ति दोनों को प्रकृति से ही प्राप्त होती है। रॉकेट धरती से ऊपर की ओर उठता है और वहीं शरीर धरती पर स्थित रहता है लेकिन शरीर में चेतना ऊपर की ओर उठती है। रॉकेट के निचले भाग से ऊष्मा और धुआँ निकलता है। वहीं शरीर के निचले भाग से मल और मूत्र। रॉकेट में उपग्रह को उसके शीर्ष के भाग में रखा जाता है जिसे नोज़ कहते हैं। वहीं शरीर में चेतना आधार भाग से मस्तिष्क तक अर्थात् शीर्ष तक की यात्रा तय करती है। रॉकेट और शरीर दोनों ही एक मशीन हैं। रॉकेट का दिमाग कम्प्यूटर है और शरीर का दिमाग मस्तिष्क। रॉकेट और शरीर दोनों ही पदार्थ से बने हैं। रॉकेट पर वैज्ञानिकों के दिमाग का काम करते हैं, वहीं इस शरीर पर परिवार और समाज के। रॉकेट के कम्प्यूटर का सॉफ्टवेयर रॉकेट को ऊपर उठाने और एक नियत कक्षा में उपग्रह को छोड़ने के लिए प्रोग्राम किया जाता है। वहीं इस शरीर के सॉफ्टवेयर 'मन और बुद्धि' ठीक विपरीत कार्य करते हैं। वे अपने उपग्रह अर्थात् चेतना को ज्यादा से ज्यादा देर तक अपने पास ही रोके रखना चाहते हैं। इसे कुछ इस प्रकार प्रोग्राम किया गया है कि यह उड़ान को जहाँ तक संभव हो सके रोकने का प्रयत्न करे।

❖❖

उपग्रह की अपनी कक्षा में पहुँच जाने पर भी वह पृथ्वी के गुरुत्व से पूर्णतया मुक्त नहीं होता। शून्य में लुप्त होने के लिए उसे अपने आंतरिक इंजन को चालू करना होगा अर्थात् अंतिम प्रयास अभी भी बाकी होगा। इस क्रिया में भी उसे शक्ति की आवश्यकता है। शक्ति के माध्यम से ही वह पृथ्वी के गुरुत्व से पूर्णतया मुक्त हो सकता है। रॉकेट के उपग्रहों को मुक्त करने और उसे एक नियत कक्षा में स्थापित करने की घटना को आप 'ज्ञान प्राप्ति' की घटना से तुलना कर सकते हैं। उपग्रह रॉकेट से मुक्त होता है और चेतना व्यक्तित्व से। अपनी कक्षा में पहुँचने के बाद ही उपग्रह स्वतंत्र है। ठीक उसी प्रकार चेतना भी मुक्त होने के पश्चात् ही स्वतंत्रता का अनुभव कर सकती है। अपनी कक्षा में पहुँच जाने के पश्चात् भी उपग्रह शून्य में पूर्णतया लुप्त नहीं होता। अभी भी वह पृथ्वी के गुरुत्व के प्रभाव में है, जो उसे शून्य में विलीन हो जाने से रोकने का प्रयास करता है। ठीक उसी प्रकार मुक्त होने के पश्चात् चेतना अपने आगे की यात्रा की ओर प्रस्थान कर जाती है। जो उसे चैतन्य की ओर ले जाता है। चैतन्य अवस्था में भी चेतना स्वयं पर लगातार कार्य रहती है। उपग्रह की भाँति चेतना का शून्य में स्थित होना पृथ्वी के समान, समाज के लिए अत्यंत लाभदायक है। इसी कारण प्रकृति के समान ही वह स्वयं को पूर्ण रूप से समर्पित कर देना चाहती है। ताकि सभ्यता द्वारा उसका उपयोग किया जा सके।

❖❖

चूल्हे पर रखे एक बर्तन को कल्पना कीजिए- जिसमें पानी भरा है। नीचे बर्नर पर आग जल रही है। जिससे पानी का तापमान बढ़ रहा है। बर्तन के ऊपर एक ढक्कन रखा है। बर्तन में कोई ऐसा छिद्र नहीं, जिससे रिसकर पानी बाहर की ओर निकल सके। तापमान बढ़ने के साथ पानी धीरे-धीरे वाष्प में बदलता चला जाता है और यह वाष्प समय के साथ संघनित होती जाती है। वाष्प के एक नियत मात्रा तक संघनित होने पर यह ढक्कन को ऊपर की ओर धकेलकर, बाहर निकलने का रास्ता ढूँढ लेती है। हमारा शरीर भी कुछ इसी बर्तन जैसा है। जिसमें भोजन के माध्यम से लगातार ऊर्जा आती रहती है। यह ऊर्जा शक्ति के रूप में कई ऐसे बिन्दु हैं जहाँ से वापस बाहर की ओर निकल सकती है। इन बिन्दुओं के लगातार उपयोग होने से शरीर की शक्ति ऊर्जा में परिवर्तित होकर, वापस वातावरण

में जाती रहती है। यह कभी भी इतनी संघनित नहीं हो पाती कि ऊपर की ओर उठ सके। बर्तन पर रखे ढक्कन के समान हमारे शरीर का सर्वोच्च बिंदु है सहस्त्रार। यदि शक्ति कभी इतनी मात्रा में संघनित हो सके कि यह सहस्त्रार तक पहुँच कर उसे खोल सके। तब यह सहस्त्रार के माध्यम से वापस प्रकृति से जा मिलती है।

शक्ति भी प्रकृति है। इस प्रकार प्रकृति का प्रकृति से वापस मिलन हो जाता है। शरीर में इंद्रियों के रूप में उपस्थित अन्य बिन्दु प्रकृति को माया में परिवर्तित करके शरीर से बाहर निकाल देते हैं। ये वो बिन्दु है जो मायावी है। जिनका सम्बन्ध माया जगत् से है। बर्तन के ऊपर रखा ढक्कन जैसे ही खुलता है, वैसे ही प्रकाश बर्तन के भीतर प्रवेश करता है। ठीक उसी प्रकार हमारे शरीर में जब सहस्त्रार खुलता है, तब व्यक्ति की चेतना का सम्बन्ध चैतन्य से स्थापित हो जाता है। भीतर की अँधेरी जगह में अब प्रकाश प्रविष्ट हो चुका है। अपने भीतर को अब ज्यादा स्पष्ट रूप से देखना सम्भव है। इस ज्ञानरूपी प्रकाश में स्वयं को पूर्ण रूप से देखा और जाना जा सकता है। इसलिए हर वह व्यक्ति जो अपनी शक्ति को वापस प्रकृति से मिलाना चाहता है, शरीर में ऊपर की ओर उठाना चाहता है, उसे अपने इंद्रियों पर काम करना ही होगा। प्रकृति से प्रकृति का मिलन होने पर ही चेतना शांति का अनुभव करती है क्योंकि अब वह मायावी लोक में नहीं बल्कि प्रकृति लोक में प्रवेश कर चुकी है।

❖❖

योगियों के पास ज्यादा शक्ति क्यों होती है? शक्ति ही सिद्धि है। भारतीय जनमानस ये बात जानता है कि योगी के पास सामान्य मनुष्य की अपेक्षा ज्यादा शक्ति होती है और वह ज्यादा प्रकृति सम्बद्ध जीवन जीता है। लेकिन यह किस प्रकार संभव हो पाता है? इसे सूत्र द्वारा समझा जा सकता है 'पावर बराबर एनर्जी/टाइम'। योगी और सामान्य मनुष्य दोनों ही के पास ऊर्जा तो लगभग समान है लेकिन अंतर है समय का। योगी समय के प्रति संवेदनशील होता जाता है। जबकि मनुष्य समय के प्रति अतिसंवेदनशीन है क्योंकि वह मानता है कि समय ही पैसा है। यदि समय पर ध्यान न दिया या समय से न चला तो चूका जा सकता है। उसे अपने सांसारिक लक्ष्यों को एक निर्धारित समय सीमा में पूरा करना होता है। इसी

कारण उसका व्यक्तित्व अतीत से लेकर भविष्य तक फैला होता है। वहीं योगी को अपने व्यक्तित्व पर काम नहीं करना होता। इसी कारण अतीत और भविष्य से उसका कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं। वह स्वयं पर कार्य करता है ताकि वर्तमान के ज्यादा निकट आ सके।

वर्तमान में आप कोई कर्म नहीं कर सकते हैं। वर्तमान में तो मात्र उपस्थित हुआ जा सकता है। वास्तव में व्यक्ति का अपना अस्तित्व ही वर्तमान में स्थित है। इसी कारण वह कभी भी स्वयं को अतीत या भविष्य में ढूँढ नहीं पाता। जहाँ सामान्य मनुष्य की ऊर्जा, समय को पकड़ने में व्यर्थ होती है। वहीं एक योगी समय के प्रति आसक्ति छोड़कर अपनी ऊर्जा को व्यर्थ होने से रोकता है। ध्यान दीजिए वर्तमान मात्र इस एक सेकेण्ड में है। वहीं अतीत और भविष्य पिछले अरबों-खरबों सालों से, अगले अरबों-खरबों सालों तक फैले हुए हैं। इस प्रकार योगी समय पर अपनी निर्भरता कम करके, अपनी शक्तियों को सामान्य से ज्यादा संगठित करने की दिशा में प्रयास करता है।

❖❖

ईश्वर के पास असीमित शक्ति क्यों है? यह सूत्र पॉवर बराबर एनर्जी/टाइम या शक्ति बराबर ऊर्जा/समय, हमें ईश्वर की शक्ति के बारे में समझने में मदद करता है। जीव काल के बँधन से बँधे हुए हैं। उनके जीवन को ही समय में व्यक्त किया जाता है। आयु समय की गणना पर ही आधारित है। अपने जीवनभर वे समय से द्वंद करते रहते हैं। उन्हें लगता है कि समय कम है, काम ज्यादा। पढ़ाई, विवाह, बच्चे, व्यापार सभी कुछ समय से ही बँधे हैं। कोई समय के पीछे दौड़ता है तो कोई समय के साथ और कोई समय से आगे दौड़ना चाहता है। लेकिन समय से निर्लिप्त कोई होना नहीं चाहता। मृत्यु को भी काल कहा गया अर्थात् समय पूर्ण हुआ। ये ठीक वैसे ही है जैसे परीक्षा देता कोई बच्चा तीन घण्टे के समय में अपने सभी उत्तरों को लिख लेना चाहता है क्योंकि वह जानता है कि तीन घण्टे के बाद उत्तर पुस्तिका को वापस करना पड़ेगा। वहीं ईश्वर या सत्य समय के बँधन से पूर्णतया निर्लिप्त हैं। वे समय के बँधन के उस पार खड़े रहकर या उपस्थित होकर समय के बँधन से बँधे प्राणियों को निर्लिप्त भाव से देखते रहते हैं। प्राणी ऊर्जा

से ओतप्रोत है व सत्य शक्ति से। समय की बाध्यता और बँधन, दोनों ही सत्य को छू नहीं सकते। उपरोक्त सूत्र में जब समय के स्थान पर आप शून्य लिखेंगे तो सूत्र बताएगा कि शक्ति अनंत हो गई, यही कारण है कि सत्य सर्वशक्तिमान है।

❖❖

काम और क्रोध की क्रियाविधि एक समान है। किसी नियत अवस्था में जब मन 'काम या क्रोध' का विकल्प देता है, तब मनुष्य के पास दो विकल्प होते हैं– या तो वह इस निमंत्रण को स्वीकार कर ले या फिर अस्वीकार कर दे। यदि वह इस इच्छा को अस्वीकार कर देता है तो अपनी बहुत सारी शक्ति बचा लेता है। यदि वह इस इच्छा को स्वीकार कर लेता है तो अपनी शक्ति के एक भाग को खर्च कर देता है। जैसे ही मनुष्य काम या क्रोध का निमंत्रण स्वीकार करता है, उस दशा में उसका मन एक प्रतिक्रिया को जन्म देता है। इस प्रतिक्रिया में बहुत कम समय में शक्ति तेजी से ऊर्जा में परिवर्तित होने लगती है। शरीर का तापमान बढ़ने लगता है। रक्तदाब और उत्तेजना बढ़ जाती है। विचारों का प्रवाह तेज हो जाता है। तापमान बढ़ने के कारण शरीर की ताप नियंत्रण प्रणाली कार्यान्वित हो जाती है। इस कारण पसीना आना स्वाभाविक है। विवेक निष्फल हो जाता है। शरीर का नियंत्रण मन के हाथों चला जाता है। काम की अवस्था में ओज वीर्य में परिवर्तित होने लगता है। सभी इंद्रियाँ सक्रिय हो उठती हैं। तनाव बढ़ जाता है। यदि इस प्रक्रिया को रोका न जाए तो काम और क्रोध की समाप्ति तक बहुत सारी शक्ति व्यर्थ हो चुकी होती है। परंतु कृष्ण बताते हैं कि काम और क्रोध का वेग बढ़ जाने के पश्चात् भी आप इस प्रक्रिया को रोक सकते हैं।

आत्म–नियंत्रण और इच्छाशक्ति की मदद से आप मन को कह सकते हैं कि इस प्रक्रिया को रोक दो। इस प्रकार नियंत्रण जो मन के पास चला गया था, उसे आप वापस अपने हाथों में ले लेते हैं। लेकिन इस समय अवधि में जो शक्ति ऊर्जा में परिवर्तित हो गई और जिसका प्रभाव शरीर महसूस करने लगता है, उस ऊर्जा का क्या? स्वयं को शांत कर और ध्यान के माध्यम से आप इस अतिरिक्त ऊर्जा को पुन: शक्ति में बदल सकते हैं। जिस प्रकार एक टरबाइन जल या वायु ऊर्जा को विद्युत में बदल देता है और एक जनरेटर डीजल को बिजली में परिवर्तित कर

देता है। ठीक उसी प्रकार आप अपने शरीर में भी शक्ति का स्तर बढ़ा सकते हैं। कृष्ण का इशारा शरीर में स्थित इसी टरबाइन या जनरेटर की ओर है। शरीर में स्थित यह एक छिपी हुई कार्यप्रणाली है।

❖❖

भोगी के पास इन्वर्टर और चार्जर है। योगी के पास जनरेटर भी है। एक कामी और क्रोधी व्यक्ति को मात्र इन्वर्टर और चार्जर की आवश्यकता होती है। इन्वर्टर वो जो उसकी शक्ति को ऊर्जा में परिवर्तित कर दे और चार्जर वो जो भोजन के माध्यम से शरीर को पुन: शक्ति से भर दे। श्वसन व पाचन क्रिया शरीर की चार्जर है। यह प्रकृति में उपलब्ध ऊर्जा को शरीर तक पहुँचा देती है और शरीर में उपस्थित इन्वर्टर के माध्यम से इसी शक्ति का उपयोग मनुष्य कर्ता बनने में, कर्म करने में, काम और क्रोध में करता है। स्वयं में उपस्थित शक्ति को वह ऊर्जा के रूप में परिवर्तित कर अपने व्यक्तित्व निर्माण में लगा देता है। इस बात से बिल्कुल अंजान कि व्यक्तित्व प्रकृति के साथ साम्य में नहीं है।

प्रकृति में व्यक्तित्व नहीं होते परंतु फिर भी प्रकृति आपकी स्वतंत्रता के लिए समर्पित है। आप उसी की शक्ति का उपयोग अपने व्यक्तित्व निर्माण में लगा सकते हैं और वह आपको इसकी पूरी स्वतंत्रता भी देती है। स्वतंत्रता ही नहीं हर पल और हर क्षण आपके लिए उपलब्ध है। बिना उसे पहचाने हुए, बिना उसे जाने हुए, मनुष्य सतत् उसकी मदद लेता रहता है और एक वह पूर्ण समर्पित माँ के रूप में अपना पूरा योगदान बिना कोई प्रश्न किए, देती रहती है। वहीं योगी के पास जनरेटर भी है। जनरेटर शरीर में उपस्थित ऊर्जा को शक्ति में बदल देता है। प्राणायाम भी जनरेटर का ही एक प्रकार है। यह शारीरिक ऊर्जा को प्राण शक्ति में परिवर्तित करता है। प्राणशक्ति जो शरीर के स्वास्थ्य के लिए उत्तरदायी है। प्राणायाम के माध्यम से इस प्रकार मनुष्य अपनी स्वास्थ्य की रक्षा करता है। मन नहीं चाहता कि आप अपने शरीर में उपस्थित जनरेटर के बारे में जानें और यदि कहीं से आज जान भी जाएँ तो आप उसका सतत् उपयोग न करें। प्राणायाम और ध्यान जैसी भी प्रक्रियाएँ जो जनरेटर की भाँति कार्य करती हैं। मन उनके बारे में उद्दीपन देता है कि यह प्रक्रियाएँ बड़ी ही उबाऊ हैं, इनमें कोई रस नहीं। जो मनुष्य मन के तर्क

को स्वीकार कर लेते हैं, वे अपने जनरेटर के प्रयोग से वंचित रह जाते हैं और जो मनुष्य इस मन के तर्क को स्वीकार नहीं करते वे अपने शरीर में उपस्थित जनरेटर का लाभ लेते रहते हैं।

❖❖

गोस्वामी तुलसीदास के विषय में एक कथा प्रचलित है कि उनका ससुराल नदी के उस पार था। पत्नी ससुराल में थी। पत्नी के मोह में फँसे, शारीरिक आकर्षण में जकड़े, तुलसीदास रात्रि में नदी पार कर अपने ससुराल पहुँच गए। यह था शक्ति का ऊर्जा में परिवर्तन। नाव खेने के लिए बल चाहिए, रात्रि में नदी पार करने के लिए साहस चाहिए लेकिन मन ने शक्ति को बल और साहस में परिवर्तित कर तुलसी को दे दिया और तुलसी पहुँच गए ससुराल। ये उदाहरण है इन्वर्टर का। तुलसी की स्त्री ने जब रात में तुलसी को देखा और आने का कारण पूछा तो ज्ञात हुआ कि काम ने तुलसी को रात्रि में ससुराल पहुँचा दिया। तुलसी की स्त्री पहुँची हुई महिला थी। उन्होंने तुलसी को धिक्कारा और कहा कि इस हड्डी और माँस से बने शरीर में आपको इतनी आसक्ति है कि रात्रि में नदी पारकर आप यहाँ तक पहुँच गए। अभी आपको ज्ञात नहीं कि आपने इस प्रक्रिया में कितनी शक्ति व्यर्थ की। यदि इसी शक्ति को आप ईश्वर प्राप्ति में लगा देते तो कदाचित् आप भवसागर पार कर जाते।

हर एक व्यक्ति के भीतर विवेक भी होता है, तुलसी में भी था। कदाचित् ज्यादा ही था। वह तुरंत इस बात का आशय समझ गए और इस घटना के बाद उन्होंने स्वयं को उपलब्ध सारी शक्ति को अपने भीतर ही मोड़ दिया। उस शक्ति के माध्यम से रामायण की रचना हुई। ऐसा ग्रंथ जो विश्व के प्रमुख ग्रंथों में से एक है। विभिन्न काल में करोड़ों-अरबों लोगों ने इस ग्रंथ से प्रेरणा प्राप्त की है। तुलसी की शक्ति सिर्फ उनके काम ही नहीं आई बल्कि वह उन सभी लोगों के काम आई जो कभी न कभी, किसी न किसी काल या किसी न किसी जन्म में रामायण से जुड़े। तुलसी की शक्ति और किसी साधारण मनुष्य के भीतर उपस्थित शक्ति में बिल्कुल भी अंतर नहीं। शक्ति ही चमत्कार करती है। यदि वह तुलसी के लिए कर सकती है तो आपके लिए भी कर सकती है। बल्कि आपको उपलब्ध ही इस कारण

से है कि आप इसके उपयोग से अपना रूपांतरण कर सकें। तुलसीदास की भाँति अपनी शक्ति के प्रयोगों में पारंगत हो सकें।

❖❖

हममें से कई अपना जीवन सी-सॉ की तरह व्यतीत करते हैं। सी-सॉ बच्चों का एक खिलौना है जिसमें एक गेंद इलास्टिक धागे से बँधी होती है। धागे को हाथ में बाँध, गेंद दूर फेंकी जाती है। इलास्टिक से बँधे होने के कारण कुछ दूर जाकर गेंद, क्षणभर रुककर वापस हाथ की ओर आ जाती है, जिसे कैच कर लिया जाता है। हम अपने व्यक्तित्व को ऊर्जा देना प्रारंभ करते हैं ताकि वो विस्तृत हो सके। साथ ही साथ बीच में तम्बाकू या शराब के रूप में नशे का सेवन करते हैं ताकि कुछ क्षण व्यक्तित्व से दूर हो, व्यक्तित्व मुक्त रहा जा सके। इस तरह हम व्यक्तित्व भी चाहते हैं और साथ ही साथ व्यक्तित्व मुक्त अवस्था का सुख भी लेना चाहते हैं। इस प्रकार हम किसी एक दिशा में नहीं बढ़ रहे। दो कदम व्यक्तित्व की ओर और दो कदम व्यक्तित्व से दूर।

❖❖

इस शरीर के रूप में हमें एक छोटी सृष्टि मिली हुई है। जिसमें मन है तो ईश्वर भी। मन की ओर जाने हेतु ऊर्जा है तो सत्य की ओर जाने हेतु शक्ति भी। विद्या है और ज्ञान भी। व्यक्तित्व निर्माण के अवसर हैं तो सत्य प्राप्ति के साधन भी। इच्छाएँ हैं तो इच्छाशक्ति भी। काल है और कालातीत भी। माया है तो शक्ति भी। समस्या से भरा मन है तो समाधान से भरी चेतना भी।

❖❖

चेतना के साथ अनंतता जुड़ी है, यह अनंत व्यक्तित्व ले सकती है, साथ ही अनंत शरीर ले सकती है। अनंत जीवों का रूप धारण कर सकती है। अलग-अलग नाम ले सकती है। इसमें स्वतंत्रता भी है और इसमें संभावनाएँ भी। जीवन में उपस्थित हर एक संभावना का मूल कारण चेतना ही है। संभावना ही विकल्प है और विकल्प ही व्यक्तित्वों को आकार देता है तथा जब चेतना के साथ संभावना समाप्त हो जाती है या स्वयं को वह संभावनाओं से अलग कर लेती है, तब मात्र

अनंतता ही बचती है अर्थात् चेतना अनंत है।

❖❖

मृत्यु की प्रक्रिया रिवर्स ऑसमोसिस (आर०ओ०) जैसी है। ऑसमोसिस अर्थात् वह प्रक्रिया जिसमें प्रवाह कम सांद्रता के क्षेत्र से, अधिक सांद्रता के क्षेत्र की ओर होता है। ये प्रवाह तब तक चलता रहता है जब तक दोनों ही क्षेत्रों की सांद्रता एक समान नहीं हो जाती। रिवर्स ऑसमोसिस, ऑसमोसिस प्रक्रिया से ठीक उलट होती है। इसमें तरल का प्रवाह अधिक सांद्रता के क्षेत्र से कम सांद्रता के क्षेत्र की ओर होता है क्योंकि ये सामान्य प्राकृतिक प्रक्रिया नहीं है। इस कारण इस प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए, बाह्य दबाव की आवश्यकता होती है। आर०ओ० (रिवर्स ऑसमोसिस) उपकरण में एक कंटेनर में पानी भरा होता है। उस कंटेनर के एक ओर पतली झिल्ली होती है और दूसरी तरफ से दबाव डालने हेतु एक उपकरण लगा होता है। झिल्ली के छिद्र अतिसूक्ष्म होते हैं। ये सारी अशुद्धियों को एक तरफ रोक लिया करते हैं। सिर्फ पानी को बहकर दूसरी ओर जाने की स्वतंत्रता होती है। इस छने हुए साफ पानी का उपयोग अब मनुष्य कर सकते हैं।

पानी में अशुद्धि जितनी ज्यादा होगी इसे शुद्ध करने के लिए उतने ही ज्यादा दबाव की आवश्यकता होगी। जहाँ सामान्य पानी को शुद्ध करने के लिए २५० से ४०० पी०एस०आई० की दबाव की आवश्यकता होती है वहीं समुद्री पानी को शुद्ध करने के लिए ८०० से १००० पी०एस०आई० दबाव की आवश्यकता होगी। तात्पर्य साफ है जितनी ज्यादा अशुद्धि उतना ही ज्यादा दबाव।

मृत्यु की प्रक्रिया में शरीर में उपस्थित शक्ति, हमारी चेतना को इस शरीर से बाहर की ओर ढकेलती है। चेतना मन, बुद्धि, अहंकार और इस शरीर द्वारा जुड़ी होती है। मृत्यु की दशा में चेतना पर दो प्रकार के दबाव पड़ते हैं। एक तो शक्ति का दबाव, जो उसे सभी बँधनों से मुक्त कर इस शरीर से पृथक करने को तैयार है। साथ ही मन, बुद्धि, अहंकार और इस शरीर से बँधनों का दबाव, जो मृत्यु की प्रक्रिया को और कठिन बनाता है। व्यक्ति जितना मोह और आसक्ति से बँधा होता है, ये बँधन उसे उतनी ही दृढ़ता से खींचते हैं। इस प्रकार चेतना पर दो विपरीत दिशाओं से खिंचाव होता है। मोह, आसक्ति और इच्छाएँ मन को बलवती बना देती

हैं। इस प्रकार मन बलवान होकर, चेतना को दृढ़ता से बाँधे रखता है। इस दशा में मृत्यु की प्रक्रिया के दौरान शक्ति को सामान्य से ज्यादा दबाव की आवश्यकता होती है, ताकि चेतना से मन के इस बँध को तोड़ा जा सके और चेतना को मुक्त किया जा सके। वहीं बुद्ध के शरीर त्याग करने की घटना पर एक दृष्टि डालिए। बुद्ध शांति से लेटकर धीरे-धीरे अपनी चेतना को शरीर के बँधन से मुक्त कर लेते हैं। ज्ञान प्राप्ति की घटना ने उनके मन, बुद्धि और अहंकार से चेतना के सम्बन्ध को पहले ही तोड़ दिया था। इस कारण शक्ति को अत्यधिक दबाव डालने की आवश्यकता न थी। चेतना मात्र शरीर से जुड़ी हुई थी और इस बँधन का टूटना, सामान्य अवस्था से कहीं ज्यादा सुगम था।

❖❖

मन के पास अपनी कोई शक्ति नहीं होती। प्रकृति मन को उत्पन्न तो करती है परंतु उसे स्वतंत्र रूप से विकसित होने के लिए अधिकार नहीं देती। मन मात्र जीवात्मा से जुड़कर ही सक्रिय हो सकता है। मन को विकसित होने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता है परंतु ये ऊर्जा उसे प्रकृति से सीधे तौर पर नहीं मिलती।

कृष्ण बताते हैं कि जीवात्मा की ओर प्रकृति में उपस्थित मन, बुद्धि और अहंकार आकर्षित होते हैं। मन परजीवी के समान जीवात्मा से चिपक जाता है और जीवात्मा को प्राप्त शक्ति को ऊर्जा में परिवर्तित कर वो अपना अस्तित्व बचाए रखने का प्रयत्न करता रहता है। मनुष्य के शरीर में भी परजीवी वास करते हैं। जो शरीर से प्राप्त ऊर्जा पर ही अपना जीवन व्यतीत किया करते हैं और साथ ही साथ शरीर को नुकसान भी पहुँचाते हैं। मनुष्य की आँतों में पलने वाले कीड़े इन्हीं परजीवियों का एक उदाहरण है। विज्ञान ने हमें बताया कि ये कीड़े परजीवी हैं। साथ ही इसने उन से मुक्ति के लिए दवाई भी खोजी। लेकिन विज्ञान मन को परजीवी नहीं मानता। यह मन द्वारा उत्पन्न बीमारियों के इलाज में तो रुचि लेता है, उनके बारे में अनुसंधान करता है, उनके उपचार में तो रुचि लेता है, उनके बारे में अनुसंधान करता है, उनके उपचार हेतु दवाइयाँ खोजता है लेकिन अभी वो मन को परजीवी मानने को तैयार नहीं। यही एक कारण है कि मनुष्य को अपने वास्तविक परजीवी के बारे में ज्ञात ही नहीं। जब तक संक्रमण का पता न चले, तब तक उसके इलाज हेतु दवाइयाँ कैसे खोजी जा सकेंगी?

❖❖

जल जमाव की स्थिति में कई बार पम्प का उपयोग किया जाता है। पम्प पानी को खींचकर पाइप के माध्यम से उसे किसी दूसरे उपयुक्त स्थान पर पहुँचा देता है। जिससे किसी स्थान विशेष पर जमा पानी सूख जाता है और अब उस स्थान को फिर से काम में लाया जा सकेगा। प्राणायाम वह पम्प है जो विचारों को बाहर फेंकता है और अंतस की सफाई करता है। हमारे भीतर जमे विचार और उनपर किया गया क्रियान्वयन, हमारी शक्ति को ऊर्जा में परिवर्तित कर हमसे दूर करता रहता है। विचार रहित अंतस, मनुष्य को सरलता से ध्यान की तरफ, ज्ञान की ओर ले जाता है। इस प्रकार प्राणायाम से मनुष्य शांति लाभ करता है। साथ ही साथ प्राणायाम मनुष्य की आंतरिक शक्ति में वृद्धि करने का भी काम करता है। ये शक्ति ही मनुष्य को रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करती है। विज्ञान भी इस बात को मानता है कि प्राणायाम करने वाले व्यक्तियों में इम्युनिटी, प्राणायाम न करने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा ज्यादा होती है। तनाव का कारण विचार है इसलिए विचारों पर काम करके, उनकी सफाई करके, तनाव पर भी काम किया जा सकता है। किसी घटना से ज्यादा, उस घटना से सम्बन्धित विचार कष्टदायक होते हैं। घटना कुछ समय तक परेशान करती है और विचार लम्बे समय तक। अविरल विचार तनाव को जन्म देते हैं और अविरल तनाव, अवसाद को। इस प्रकार सभी मानसिक समस्याओं की जड़ एकमात्र मन ही है।

❖❖

'योग' अपना सॉफ्टवेयर बंद कर सेंट्रल सर्वर से जुड़ जाना है। किसी सॉफ्टवेयर सिटी की कल्पना किजीए; जहाँ पर सभी प्रोग्रामिंग जानते हों। सभी ने अपना-अपना सॉफ्टवेयर बनाया हो और उसी सॉफ्टवेयर पर वे अपना सारा काम करते हों। समय के साथ-साथ उसमें बदलाव यानी अपडेट करते हों। सभी एक-दूसरे से अपने सॉफ्टवेयर की चर्चा करते हों। तुलना करते हों कि किसका सॉफ्टवेयर ज्यादा उन्नत है। उसका सम्मान ज्यादा होता है और शेष सभी उस स्तर तक पहुँचने का प्रयास करते हों। सॉफ्टवेयर सिटी का अपना एक समाज हो और वह समाज ही उनकी पूरी दुनिया हो। हमारा समाज भी उसी सॉफ्टवेयर सिटी जैसा

ही है। हर एक व्यक्ति का व्यक्तित्व, उनका अलग सॉफ्टवेयर है। जिसके आधार पर वो अपना जीवन जीता है। अपने व्यक्तित्व पर आधारित जीवन जीने के कारण, हमारा समाज ही हमारी दुनियाँ बन जाता है। इस दुनियाँ से बाहर, न कभी हम जा पाते हैं और न ही उसके बारे में कभी जान ही पाते हैं। सॉफ्टवेयर सिटी में हर एक व्यक्ति को अपना सॉफ्टवेयर अलग इसलिए बनाना होता है क्योंकि वह नहीं जानता कि एक सेंट्रल सर्वर भी है और उस सर्वर से जुड़ने का विकल्प भी है। यही हाल समाज का है। हर एक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व पर इस कारण निर्भर है क्योंकि वो नहीं जानता कि व्यक्तित्व से ऊपर है प्रकृति और प्रकृति से ऊपर है अस्तित्व और दोनों से ही जुड़ने के विकल्प मौजूद हैं।

अपने व्यक्तित्व के मोह से छूटकर, स्वयं को अस्तित्व को समर्पित कर देना समर्पण है। इस समर्पण के पश्चात् सत्य से जुड़ जाना, योग कहलाता है। योग प्राप्ति के लिए अपने व्यक्तित्व के बँधन से छूटना आवश्यक है। सेंट्रल सर्वर से जुड़ने के लिए अपनी नेटवर्किंग को ध्वस्त करना आवश्यक है। योग प्राप्ति के पश्चात् व्यक्तिगत लक्ष्य समाप्त हो जाते हैं और व्यक्ति सत्य में स्थित हुआ प्रकृति के सतत् प्रवाह से परिपूर्ण हो जाता है।

❖❖

'चेतना' मन और बुद्धि के साथ बँध बनाती है। इस बँध में उपस्थित तनाव (बॉण्ड टेंशन) ही अहंकार है। मन और बुद्धि को जितनी ऊर्जा प्राप्त होती है, बँध तनाव अर्थात् बॉण्ड टेंशन भी उसी अनुपात में होता है। मन और बुद्धि को कम ऊर्जा प्राप्त होने की दशा में, अहंकार कम हो जाता है। वहीं इन्हें ज्यादा ऊर्जा प्राप्त होने की स्थिति में अहंकार बढ़ जाता है। मन और बुद्धि से जुड़कर ही चेतना, स्वयं को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व मानने लगती है और अहंकार के माध्यम से इसे पोषित व इसकी रक्षा करती है। जागी हुई अवस्था में व्यक्ति अहंकार से पीड़ित है परंतु नींद में मन और बुद्धि दोनों ही चेतना से अलग हो जाते हैं। बँध टूटने की अवस्था में बँध तनाव नहीं होता, इसी कारण बुद्ध अहंकार मुक्त अवस्था की अनुभूति प्राप्त करते हैं। इस अहंकार रूपी बँध के टूटने के पश्चात् ही मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप का दर्शन कर पाता है। वह स्वयं को जान पाता है। इसके पहले उसने अपने

व्यक्तित्व को ही देखा था। अब पहली बार वह स्वयं को व्यक्तित्व मुक्त अवस्था में पाता है।

❖❖

दिशाएँ तभी तक हैं, जब तक आवेश है। आवेश समाप्त तो दिशाएँ भी समाप्त। एक बल्ब के भीतर इलेक्ट्रॉनों का प्रवाह, कैथोड से एनोड की तरफ होता है। वहीं विद्युत का प्रवाह एनोड से कैथोड की ओर। इसी बल्ब में अक्रिय गैसें भी भरी होती हैं। इन्हें किसी भी दिशा की ओर नहीं जाना। इनकी तटस्थता और उदासीनता ही इन्हें किसी दिशाओं से नहीं बाँधती। आवेश सदैव द्विध्रुवीय व्यवस्था के कारण उपस्थित होते हैं। द्विध्रुवीय व्यवस्था अर्थात् एनोड और कैथोड। पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र भी उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव के कारण है। मनुष्य भी इसी कारण आवेशित है क्योंकि वह मन से बँधा है और मन शिव और शक्ति के मध्य है। जैसे ही द्विध्रुवीय व्यवस्था समाप्त होती है शिव और शक्ति का मिलन होता है, वैसे ही आवेश भी गिर जाता है।

❖❖

मनुष्य के लिए दुनियाँ के सबसे मुश्किल कार्यों में से एक है अपने मस्तिष्क पर नियंत्रण पाना। मस्तिष्क उस बिगड़े हाथी के समान है जो बहुत मुश्किल से नियंत्रण में आता है। विज्ञान भी मस्तिष्क को एक अति कठिन पहेली मानता है। अपने अनुसंधानों द्वारा वह मस्तिष्क को समझने का प्रयास कर रहा है। मस्तिष्क पर नियंत्रण उसी के वश में है, जो मस्तिष्क के विकास से पहले से उपस्थित है और जो मस्तिष्क से कहीं ज्यादा शक्तिशाली है। विज्ञान, जो मस्तिष्क का प्रतिनिधि है, प्रकृति से बचाव के, उससे रख-रखाव के तरीके बता सकता है लेकिन वह प्रकृति को अपने नियंत्रण में नहीं कर सकता। प्राचीन योगियों ने इसी कारण मस्तिष्क पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए शक्ति का आश्रय लिया। शक्ति पर कार्य करने के लिए उन्होंने तपस्या का मार्ग ढूँढा। अपने भीतर की अशुद्धियों को जलाकर स्वयं में शक्ति संघनित की। वे कदाचित् इस बात को जानते थे कि इस शरीर में शिव है तो शक्ति भी। स्वयं के भीतर की शक्ति को बढ़ाकर, शिव के माध्यम से उसे नियंत्रित कर, उसी शक्ति के माध्यम से आत्म अनुसंधान किया जा सकता है।

स्वयं की खोज मस्तिष्क विहीन वातावरण में ही की जा सकती है। आपके मस्तिष्क की सक्रियता, आपको स्वयं से दूर रखती है। भविष्य में आने वाले सभी साधक भी, शक्ति के माध्यम से ही स्वयं की खोज को पूर्ण करेंगे।

❖❖

उठना गुरुत्व के विरुद्ध होता है और गिरना गुरुत्व की ओर। मनुष्य की शक्ति अर्थात् ओज गुरुत्व के विपरीत उठती है। वहीं शक्ति द्वारा निर्मित बीज अर्थात् वीर्य सदैव गुरुत्व की दिशा में गिरता है। वृक्ष गुरुत्व के विपरीत उठते हैं, कारण है पृथ्वी की उर्वरा शक्ति। दिन में कई घण्टे मनुष्य को बैठने और सोने की आवश्यकता होती है। वहीं पौधे और वृक्ष थकान से परे हैं। पृथ्वी उन्हें निरंतर खड़े रहने की शक्ति प्रदान करती है। फसलें कुछ महीने, तो वृक्ष कुछ सैकड़ों वर्षों तक निरंतर खड़े रह सकते हैं। मनुष्य शरीर में, चेतना शक्ति से सीधी जुड़ी है। यदि चेतना को निरंतर शक्ति प्राप्त होती रहे तो वह मन के प्रभाव से निरंतर मुक्त रह सकती है। साथ ही साथ निरंतर पल्लवित और पुष्पित भी होती रह सकती है। पैदा होने के बाद बच्चा धरती की ओर गिरता है वहीं जन्म लेने के पश्चात् चेतना सदैव ऊपर की ओर उठती है।

चेतना और वृक्ष काफी हद तक एक समान हैं। दोनों से ही अनगिनत व्यक्तित्व लाभ ले सकते हैं। दोनों ही निष्पक्ष रूप से सभी के लिए उपलब्ध हैं। दोनों ही अपने स्रोत से जुड़े हुए होते हैं। दोनों ही आवश्यकतापूर्ति में संतुष्ट हैं। दोनों ही शांति लाभ करते हैं। वृक्ष जीवों को और चेतनाएँ व्यक्तित्वों को छाया प्रदान करती है। वृक्ष फल, औषधि, ऑक्सीजन इत्यादि प्रदान करते हैं और चेतनाएँ, जीवन सम्बन्धित स्पष्टीकरण और मार्गदर्शन।

अयस्क को तपाए बिना खनिज नहीं मिल सकता। ठीक उसी प्रकार व्यक्तित्व को तपाए बिना आत्मसाक्षात्कार नहीं मिल सकता। जिस प्रकार अयस्क में खनिज के साथ अशुद्धियाँ छुपी हैं, ठीक उसी प्रकार व्यक्तित्व में चेतना के साथ मन, बुद्धि और अहंकार छुपे हैं। अयस्क परिशोधन में तपाया जाता है और व्यक्तित्व तपस्या में। खनिज और चेतना दोनों ही सभ्यता के उपयोग में आते हैं। खनिज और चेतना दोनों ही व्यक्तिवों को सहायता प्रदान करते हैं। खनिज जड़ तत्व है, चेतना चैतन्य

तत्व। खनिज पदार्थ है और चेतना अपदार्थ। अयस्क को वैज्ञानिक की आवश्यकता है और चेतना को गुरु की। अयस्क भट्ठी में जलते हैं और व्यक्तित्व कर्मफल की भट्ठी में। अयस्क के परिशोधन हेतु कारखाने की आवश्यकता है, वहीं व्यक्तित्व के परिशोधन हेतु जीवन की आवश्यकता है। जीवन ही वो कारखाना है जहाँ पर व्यक्तित्व को तपाया जाता है। अयस्क को तपाने के लिए वैज्ञानिक उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। व्यक्तित्व को तपाने के लिए दैव उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण करता है। वैज्ञानिक के हाथ में अयस्क के आने के बाद वह उसे खनिज बनाकर ही मानेगा। उसी प्रकार जब कोई व्यक्तित्व परम् के सामने समर्पण कर देता है तब परम् व्यक्तित्व के परिशोधन की प्रक्रिया आरंभ कर देता है और यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक व्यक्तित्व की सारी अशुद्धियाँ गल कर समाप्त न हो जाएँ और चेतना सूर्य रूप में जन्म न ले ले।

❖❖

व्यक्तित्व ऊर्जा की प्रयोगशाला है और सन्यासी जीवन शक्ति की। एक व्यक्तित्व के निर्माण में बहुत सारी ऊर्जा की आवश्यकता होती है। उस बच्चे के माँ-बाप की, परिवार की, शिक्षकों की और समाज की सम्मिलित ऊर्जाएँ मिलकर एक व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं। वहीं सन्यासी जीवन 'शक्ति' की प्रयोगशाला है। जिसमें सन्यासी शक्ति के माध्यम से अपनी संतृप्ति पाने का प्रयास करता है। ईश्वर को पाने के छः मुख्य मार्ग - 'प्रेम, ज्ञान, भक्ति, योग, सेवा और विवेक' मनुष्य को उपलब्ध शक्ति पर ही कार्य करते हैं। सन्यासी की ये यात्रा नितांत निजी है।

समाज को सन्यासी की व्यक्तिगत यात्रा से कुछ लेना-देना नहीं है और न ही सन्यासी को अपनी यात्रा में समाज की ही सहायता की आवश्यकता है। व्यक्तित्व कब सन्यासी बनने का निर्णय ले, शायद ही समाज को इसके बारे में पता चले। सन्यास एक आंतरिक यज्ञ है जिसमें आहुति, अग्नि, वेदी और फल सभी व्यक्तिगत हैं। व्यक्तिगत निर्माण एक सामूहिक यज्ञ है और आत्माअनुसंधान एक व्यक्ति का यज्ञ। व्यक्तित्व इच्छाओं पर कार्य करता है और सन्यास स्वयं को मात्र आवश्यकताओं तक ही सीमित कर लेता है। कारण स्पष्ट है, सन्यासी ये नहीं चाहता कि उसकी

शक्ति एक आभासी व्यक्तित्व के निर्माण में व्यर्थ हो। वो अपनी शक्ति को अपने भीतर की ओर मोड़कर अपने प्रश्नों के उत्तर खोजने में और अपनी संतृप्ति प्राप्त करने में उपयोग करता है। ऊर्जा और शक्ति में एक मुख्य अंतर यही है कि शक्ति भीतर की ओर जाती है और ऊर्जा सदैव बाहर की ओर।

❖❖

शरीर और मशीन दोनों के ही विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र हैं। शरीर और मशीन दोनों ही प्रकृति से बने हैं। प्रकृति की व्यवस्था द्विध्रुवीय (बाईपोलर) है। एक परमाणु भी एक चुम्बक की भाँति कार्य करता है क्योंकि उसमें धनात्मक आवेश और ऋणात्मक आवेश दोनों ही हैं। ये दोनों विपरीत आवेश ही, दो विपरीत ध्रुवों का निर्माण करते हैं। स्पष्ट है कि शरीर प्रकृति के द्वारा बनाया गया एक यंत्र है। वह यंत्र जिसके माध्यम से व्यक्ति कर्म, अकर्म और विकर्म करता है। जिस प्रकार नदी पार करने के लिए एक नाव की आवश्यकता है। वैसे ही मनुष्य को दु:खों को पार करने के लिए इस शरीर की आवश्यकता है। हर यंत्र एक आविष्कार है और आविष्कार इसलिए है क्योंकि आवश्यकता है। ठीक उसी प्रकार ये शरीर भी प्रकृति का एक आविष्कार है और यह आविष्कार इसलिए है क्योंकि जीवात्मा को इसकी आवश्यकता है। जिस प्रकार हर मशीन को कोई चलाने वाला है, ठीक उसी प्रकार हर शरीर को चलाने वाली जीवात्मा है। चालक के नियंत्रण में मशीन है और जीवात्मा के नियंत्रण में शरीर है। एक कुशल नियंत्रक के हाथों में मशीन, अपने सभी कार्यों को पूर्ण करती है। वहीं एक अकुशल अनियंत्रक मशीन को खराब कर सकता है। जिससे लक्ष्य पूरे होने में बाधा पहुँच सकती है। हर व्यक्ति के अंदर कुशल नियंत्रक है 'विवेक' और अकुशल नियंत्रक है उसका 'मन'। विवेक सदैव इस शरीर से अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करेगा। वहीं मन प्रयास करेगा कि किस प्रकार लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में बाधाएँ खड़ी की जाए, दुविधा उत्पन्न की जाए, द्वंद और भ्रम की स्थिति पैदा हो। किसी प्रकार व्यक्ति अपने समय को व्यर्थ करे। अपने लक्ष्य को भी न जान पाए और यह प्रक्रिया तब तक चलती रहे, जब तक मशीन में सामर्थ्य है। कृष्ण कहते हैं कि ये शरीर एक क्षेत्र है लेकिन इस शरीर में एक क्षेत्रज्ञ भी है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों ही अलग-अलग हैं, जिस प्रकार मशीन और उसका ऑपरेटर दोनों ही अलग-अलग हैं।

❖❖

'चेतना' हबल टेलीस्कोप जैसी है। हबल अंतरिक्ष में स्थापित एक टेलिस्कोप है जो वैज्ञानिकों को अंतरिक्ष में दूर तक देखने की सहूलियत प्रदान करता है। उन जगहों पर जहाँ पर हम पृथ्वी से देख नहीं सकते, अंतरिक्ष में स्थापित ये टेलिस्कोप उन जगहों की फोटो लेकर पृथ्वी को भेज दिया करता है। ये टेलिस्कोप अंतरिक्ष में कोई उत्पादन नहीं कर रहा। ये मात्र एक बड़ी सी आँख है जो अंतरिक्ष में दूर तक देख सकती है। स्वयं द्वारा खींचे गए चित्रों में, यह कोई परिवर्तन भी नहीं कर सकता। उनकी वास्तविक दशा में ही उन्हें पृथ्वी पर भेज दिया करता है। वैज्ञानिक उसे ये निर्देश दे सकते हैं कि उस दिशा में देखो या अमुक ग्रह पर ध्यान लगाओ लेकिन उसके बाद ये जो देखेगा, उस पर वैज्ञानिकों का कोई नियंत्रण नहीं। वैज्ञानिक इस टेलिस्कोप के माध्यम से अंतरिक्ष की सूचनाओं को एकत्र करना चाहते हैं। ठीक उसी प्रकार मन, चेतना से अपने प्रश्न पूछ सकता है। उसे एक विशेष प्रश्न पर अपना ध्यान केन्द्रित करने को कह सकता है। इस प्रकार चेतना के माध्यम से मन वहाँ तक पहुँच पाता है, जहाँ तक उसकी पहुँच संभव नहीं।

व्यक्तित्व के बँधन से मुक्त चेतना अंतरिक्ष में स्थित एक टेलीस्कोप के समान है। जो अज्ञात में दूर तक देख सकती है और प्राप्त सूचनाओं को सभ्यता तक पहुँचा सकती है। जैसे वैज्ञानिक हबल के माध्यम से अज्ञात से जुड़ते हैं। ठीक उसी प्रकार 'मन' चेतना के माध्यम से अज्ञात से जुड़ता है। चेतना ही सद्गुरु है। जिनसे जिज्ञासु अपने प्रश्न पूछ सकता है। जैसे हबल को अपना कार्य पूर्ण करने के लिए अंतरिक्ष में दूर जाना पड़ा, वैसे ही चेतना अपने कार्य को पूर्ण करने के लिए व्यक्तित्व के बँधन से मुक्त होती है।

❖❖

उपग्रह और समाधि में समानता देखिए – समाधि अर्थात् समत्व के अधीन। समाधि में चेतना व्यक्तित्व के बँधन से मुक्त हो, शून्यत्व का लाभ प्राप्त करती है। वह शरीर में रहते हुए भी कर्तापन के भाव से मुक्त रहती है। भावनाएँ व मस्तिष्क की उथल-पुथल उसे परेशान नहीं करती। उपग्रह पृथ्वी से ऊपर उठकर शून्य में अर्थात् अंतरिक्ष में स्थित हो जाता है। इस दशा में वह पृथ्वी और शून्य

दोनों से ही जुड़ा हुआ है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से, अभी वह पूर्णतया मुक्त नहीं। उपग्रह की अपनी आवश्यकताएँ भी सीमित हैं। उसे मात्र इतनी ही ऊर्जा की आवश्यकता है, जिससे वह अपने कार्यों को पूर्ण कर सके।

पृथ्वी की कक्षा में घूमता हुआ उपग्रह, अभी भी उसके गुरुत्वाकर्षण से पूर्णतया मुक्त नहीं। ठीक उसी प्रकार व्यक्तित्व से अलग हुई चेतना, जब तक शांति में पूर्णतया स्थिर नहीं, मन की आवाजें पूर्णतया शांत नहीं व जब तक सभी विकल्प पूर्णतया लुप्त नहीं, तब तक चेतना चैतन्य में विलीन नहीं। जब तक वह शक्ति से पूर्णतया आवृत्त नहीं, जब तक वह प्रज्ञा में स्थिर नहीं तब तक उसकी यह अवस्था सबीज समाधि कही जाती है। इस अवस्था में चेतना व्यक्तित्व से मुक्त होने के बाद भी उसकी पहुँच से पूर्णतया दूर नहीं होती। अभी भी तपस्या शेष है।

वहीं निर्बीज समाधि की अवस्था में व्यक्तित्व द्वारा दिए गए, सभी विकल्प समाप्त हो जाते हैं। मन पूर्णतया शांत हो जाता है। समय ठहर जाता है। चेतना वर्तमान में पूर्णतया स्थिर हो जाती है। अतीत और भविष्य से पूर्णतया मुक्त चेतना, अपने चैतन्य स्वरूप को पूर्णतया पहचान लेती है। उसके और व्यक्तित्व के बीच में शक्ति की एक मोटी दीवार खड़ी हो जाती है। मन कितनी भी कोशिश क्यों न करे, वह शक्ति से पार नहीं पा सकता। इस अवस्था में चेतना पूर्णतया कामना मुक्त हो, आनंद में स्थिर हो जाती है। वे सभी प्रश्न जो व्यक्तित्व रूप में उसे सताते थे, अब विलुप्त हो जाते हैं। अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट हो चुका होता है। ब्रह्म से ओतप्रोत हो चेतना, स्वयं को चैतन्य में विसर्जित कर देती है।

वहीं उपग्रह जब स्वयं में संचित शक्ति का प्रयोग कर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से मुक्त हो जाता है तब पृथ्वी का उस पर कोई नियंत्रण नहीं रहता। अब वह शून्य का ही भाग है। पृथ्वी की पहुँच से दूर निकलने के लिए उसे अपने ईंधन को जलाना पड़ा। ईंधन रूपी शक्ति ही उसे बँधनों से मुक्त कर देती है। अब वह पृथ्वी का नहीं इस ब्रह्माण्ड का भाग है। उस पर पृथ्वी के नियम नहीं लागू होते हैं।

उपग्रह और चेतना में समानता देखें- उपग्रह रॉकेट में होता है और चेतना शरीर में। उपग्रह को धरती पर उपस्थित लैब में निर्मित कर रॉकेट के सबसे ऊपरी भाग में ले जाकर स्थित कर दिया जाता है। शरीर में स्थित चेतना भी मूलाधार से सहस्त्रार अर्थात् शीश तक का यात्रा तय करती है। उपग्रह को अंतरिक्ष में स्थित होने के लिए रॉकेट की शक्ति की आवश्यकता होती है। चेतना को शून्य में स्थित होने के लिए शरीर की शक्ति की आवश्यकता होती है। रॉकेट में विभिन्न भाग होते हैं जो क्रम से प्रज्ज्वलित हो उसे ऊपर की ओर ढकेलते हैं।

शरीर में विभिन्न चक्र होते हैं जो क्रमश: संतृप्त होते जाने पर चेतना को ऊपर की ओर धकेलने का कार्य करते हैं। अंतरिक्ष में पहुँचने पर उपग्रह रॉकेट से पूर्णतया अलग हो जाता है और अपनी कक्षा में स्थिर हो जाता है। ये घटना आत्मसाक्षात्कार जैसी है, जिसमें चेतना व्यक्तित्व से पूर्णतया अलग, शांति के भाव में स्थित हो जाती है। अपनी कक्षा में स्थित हुए उपग्रह को पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से मुक्त होने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। वहीं शांति में स्थित हुई चेतना को मायावी जगत् से पूर्णतया अलग होने के लिए शक्ति की आवश्यकता है। जिस प्रकार रॉकेट में उपग्रह एक चेम्बर में चारों ओर से ढका होता है, ठीक उसी प्रकार चेतना भी कर्मफल व संस्कारों से पूर्णतया ढकी होती है। अपने चेम्बर से निकलने पर ही उपग्रह मुक्त हो जाता है। वहीं अपने संस्कारों से पूर्णतया अलग होने पर ही चेतना मुक्त हो पाती है। ऊपर की ओर बढ़ते हुए रॉकेट अपने व्यर्थ भागों को पीछे छोड़ता चला जाता है, जो टूट-टूट कर अलग हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार शून्य की ओर बढ़ती हुई चेतना भी मोह को त्यागती है, अधिकारों को छोड़ती है तथा कामनाओं का त्याग करती है।

रॉकेट की उड़ान तभी सफल कहा जाता है जब वह निश्चित कक्षा में उपग्रह को स्थापित कर दे। यह घटना योग प्राप्ति जैसी है, जब चेतना का चैतन्य से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। रॉकेट और चेतना दोनों ही ऊपर की ओर उठते हैं। रॉकेट अपने निचले भाग से गैसों को और शरीर अपने निचले भाग से मल और मूत्र का त्याग करता है। रॉकेट और शरीर दोनों में ही उनके 'श्रेष्ठतम भाग' शीर्ष पर स्थित होते हैं।

❖❖

टेलीपैथी – व्यक्तित्व मुक्त चेतना एक रिसीवर की भाँति कार्य करती है। जब तक उसमें कामनाएँ होती हैं तब तक मन और बुद्धि उससे चिपके रहते हैं। मुक्त हो जाने पर शून्य में स्थित हो, स्वयं से सम्बन्धित सूचनाएँ वह ग्रहण करती रहती है। मुक्त चेतना संदेशों को प्रसारित व उन्हें ग्रहण भी कर सकती है। कुछ योगियों ने अपनी पुस्तक में इस बात का उल्लेख करते हुए कहा है कि किस प्रकार उनके गुरु चेतना की इसी विशेषता का उपयोग करते हुए, अपने शिष्यों को संदेश भेज दिया करते थे और वे शिष्य जो ज्यादा उन्नत अवस्था में होते थे, उन संदेशों को ग्रहण भी कर लिया करते थे। कामना रहित प्रार्थनाएँ इसी कारणवश ईश्वर तक ज्यादा सुगमता से पहुँचती हैं क्योंकि कामना रहित अवस्था में संदेश चेतना द्वारा प्रसारित किए जाते हैं, मन द्वारा नहीं।

मन ईश्वर तक नहीं पहुँच सकता। इसी कारणवश कृष्ण निष्काम होने की सलाह देते हैं ताकि चेतना मुक्त हो, स्वयं को ग्राही अवस्था में ला सकें। एक उपयुक्त स्तर तक पहुँचने पर चेतना को प्रकृति में उपस्थित वे सूचनाएँ प्राप्त होने लगती हैं, जो उसकी अपनी जिज्ञासा और कष्टों से जुड़ी होती हैं।

❖❖

परमाणु और मनुष्य की संरचना एक जैसी होती है। परमाणु के केंद्रक में न्यूट्रॉन और प्रोटॉन होते हैं तथा बाहरी कक्षा में इलेक्ट्रॉन चक्कर लगाते रहते हैं। ये परमाणु दूसरे परमाणुओं से क्रिया कर, अणु का निर्माण करते हैं और अणु दूसरे प्रकार के अणुओं से मिलकर पदार्थ का निर्माण करता है। मनुष्य की संरचना भी काफी कुछ परमाणुओं से मिलती है। आत्मा रूपी न्यूट्रॉन, जीव रूपी प्रोटॉन को आकर्षित कर, केन्द्र का निर्माण करता है। जिस प्रकार केन्द्रक ही एक परमाणु का कारण है। उसी प्रकार जीवात्मा एक शरीर के होने का कारण है। केन्द्रक इलेक्ट्रॉन को आकर्षित कर एक परमाणु की संरचना धारण करता है। ठीक उसी प्रकार जीवात्मा के चारों ओर एक मानव शरीर की रचना होती है। जिस प्रकार परमाणु दूसरे परमाणुओं से मिलकर अणु का निर्माण करता है। वैसे ही मनुष्य दूसरे मनुष्य के सानिध्य में आने पर अपने व्यक्तित्व को आकार देना प्रारंभ करता है। अणु के आकार ले लेने पर दूसरे प्रकार के अणु उससे मिलकर पदार्थ की संरचना पूर्ण करते हैं। ठीक वैसे ही व्यक्तित्व का निर्माण हो जाने पर, समाज में उपस्थित दूसरे

व्यक्तित्व उसके नजदीक आकर सम्बन्ध स्थापित करते हैं और इस प्रकार एक परिवार की संरचना पूर्ण होती है। जिस प्रकार परमाणु का केन्द्र दूसरे परमाणुओं से प्रतिक्रिया नहीं करता। ठीक वैसे ही एक जीवात्मा दूसरे शरीरों से सम्बन्ध स्थापित नहीं करती। ऐसा करने हेतु उसे एक शरीर की आवश्यकता होती है। ठीक वैसे ही जैसे एक केन्द्र को परमाणु की संरचना पूर्ण करने के लिए इलेक्ट्रॉन की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार न्यूट्रॉन्स की अनुपस्थिति में एक परमाणु की कल्पना नहीं की जा सकती वैसे ही आत्मा की अनुपस्थिति में एक शरीर की कल्पना नहीं की जा सकती।

❖❖

वीर्य वाह्य स्त्री के लिए, ओज आंतरिक स्त्री के लिए : प्रकृति हर शरीर को वायु, जल व भोजन के माध्यम से ओज से भर देती है। जिस प्रकार पृथ्वी में उर्वरा शक्ति होने के कारण, कृषि की प्रक्रिया चलती रहती है। ठीक वैसे ही शरीर में उपस्थित पर्याप्त ओज, शरीर की क्रियाओं को समुचित रूप से चलाए रखने के लिए उत्तरदायी हैं। शरीर में ओज द्वारा निर्मित तत्व शरीर की क्रियाविधि हेतु आवश्यक है। वहीं ओज स्वयं सूक्ष्म शरीर को सक्रिय करता है। आपने लोगों को कहते सुना होगा कि बाहर तो सब कुछ ठीक है लेकिन भीतर से प्रसन्नता नहीं है। आंतरिक प्रसन्नता का कारण यही ओज है। ओज द्वारा निर्मित वीर्य वाह्य स्त्री के लिए और स्वयं ओज आपके शरीर में स्थित आंतरिक स्त्री अर्थात् आपकी शक्ति के लिए।

वीर्य वाह्य स्त्री को संतुष्टि प्रदान करता है और ओज आंतरिक स्त्री को। आंतरिक स्त्री के प्रसन्न होने पर उसकी प्रसन्नता की अनुभूति आप कर सकते हैं। मन अवसरों को देखकर उत्तेजित होता है और आंतरिक स्त्री ओज को पाकर प्रसन्न। बच्चे किसी विपरीत लिंगी की तरफ आकर्षित नहीं लेकिन फिर भी उमंग से भरे होते हैं और वह बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते जाते हैं, जगत् के आकर्षणों की तरफ खिंचते चले जाते हैं। उनके भीतर की उमंग गायब होती जाती है। बच्चा अमीर का हो या गरीब का, लेकिन है वह सदैव प्रसन्न। कारण सिर्फ इतना सा है कि गर्भ से अर्थात् प्रकृति से सम्बन्ध टूटे अभी बहुत समय नहीं बीता और शरीर ओज से परिपूर्ण है। यह सम्पूर्ण ओज शरीर में उपस्थित शक्ति को निर्बाध रूप से प्राप्त होता रहता है और इसी कारण वह प्रसन्न है और आशान्वित भी कि इस शरीर में

उपस्थित शिव से मिलन पूर्ण होगा।

बच्चों की प्रसन्नता का एक और कारण है, उन्हें ये नहीं पता कि वे पुरुष हैं या स्त्री और इसी कारण वे इस द्विध्रुवीय शरीर के बँधनों और कर्तव्यों से मुक्त हैं। वे मात्र अपने होने में इसी कारण प्रसन्न है कि उन्हें पुरुष या स्त्री नहीं बनना पड़ रहा। जब तक कि उनकी बुद्धि इतनी विकसित न हो जाए कि उन्हें पुरुष और स्त्री के वर्गीकरण के बारे में बताने लगे और उनसे अपेक्षा करने लगे कि तुम्हें भी इस नए रूप को स्वीकार करना होगा।

❖❖

मनुष्य टू डायमेंशनल जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। हर मनुष्य का जीवन टू डायमेंशन की तरह सपाट है। उसमें थ्री-डी वाली गहराई नहीं। ये टू डायमेंशन है 'मन व बुद्धि'। सबसे दुख की बात यह है कि अपने पूरे जीवनकाल में हम अपना तीसरा आयाम अर्थात् थर्ड डायमेंशन ढूँढ नहीं पाते, जो है हमारी चेतना। इसी कारण मनुष्य जो थ्री-डी जीवन जी सकता है, वो एक टू-डी जीवन, जीवन जीने के लिए बाध्य है। अपना तीसरा आयाम न ढूँढ पाने के कारण, हम जीवन को कभी भी इसकी गहराई में जाकर समझ नहीं पाते। तीसरे आयाम से हमारी दूरी, हमें कभी अपने जीवन के चौथे आयाम को समझने का अवसर नहीं दे पाती। चौथा आयाम, जो है समय हीनता। स्वयं को समग्रता से जाने बिना, समय के बारे में जानना सम्भव नहीं।

समय के चार आयाम हैं - 'अतीत, वर्तमान, भविष्य और समय हीनता'। समय के आधार पर भी हमारा जीवन टू डामेंशनल ही है क्योंकि हम अपना समय मात्र अतीत और भविष्य में ही जीते हैं। जब तक व्यक्ति वर्तमान से दूर है तब तक वह जीवन की समझ से भी दूर है। वास्तव में हमारे तीसरे आयाम अर्थात् चेतना और वर्तमान दोनों एक ही है। चेतना ही वर्तमान में स्थित होती है। मात्र वो ही वर्तमान का लाभ ले सकती है। हर मनुष्य का चौथा आयाम है 'आत्मा', जो समय हीनता की अवस्था है। चौथे डायमेंशन को जानने के लिए, तीसरे डायमेंशन से होकर ही जाना होगा। उसी प्रकार आत्मा को जानने के लिए सबसे पहले आत्म अर्थात् स्वयं को जानना होगा। जीवन की समग्रता उसे पूर्ण रूप से पहचानने में है।

❖❖

ये मोह के धागे इलास्टिक के बने हैं। व्यक्ति एक दूसरे को मोह के सम्बन्ध में बाँधना पसंद करते हैं और जिस धागे का वे उपयोग करते हैं वे इलास्टिक जैसे हैं। दिखने में बिल्कुल सामान्य। लगता है कि बँधन बहुत मजबूत है। बँधन को और मजबूत करने के लिए धागों की संख्या बढ़ा दी जाती है। कई धागों को जोड़कर एक रस्सी बना ली जाती है ताकि सम्बन्ध और मजबूती से जुड़ जाएँ। अब जब रस्सी बँध गई है तो छोड़कर जाने का विकल्प नहीं होता। यदि दोनों की ओर से कोई समस्या न आए तो जीवनभर ये धागे अपना काम करते रहते हैं और तब टूटते हैं जब दोनों में से किसी एक की मृत्यु हो जाए। क्योंकि तब समाज शरीर को ले जाकर जला देता है और पहला व्यक्ति अपने हिस्से की डोरी देखकर दूसरे की यादों से मोह जोड़ लिया करता है। जीवित अवस्था में किसी कारणवश, किसी एक व्यक्ति द्वारा अथवा दोनों ही व्यक्तियों द्वारा जब इन धागों में खिंचाव की स्थिति उत्पन्न होती है तो एक सीमा तक ये धागे फैलकर सम्बन्धों में आए तनाव को थामने का प्रयत्न करते हैं। परंतु लम्बे समय तक तनाव रहने पर या फिर आवश्यकता से अधिक खींचे जाने पर ये धागे टूट जाते हैं। इस अवस्था में दोनों ही व्यक्ति लड़खड़ाते हैं। उनमें से कुछ एक तो संभल जाते हैं और कुछ स्वयं को संभाल नहीं पाते और गिर जाते हैं। ये घटना दोनों के लिए ही एक अनुभव बन जाती है और चोट दोनों के लिए ही कष्टकारी होती है।

समय बीतने के साथ कभी अपने और कभी किसी दूसरे के मन द्वारा समझाए जाने पर व्यक्ति पुन: अपने आप को तैयार करता है, इस मोह के सम्बन्ध को जोड़ने के लिए। किसी दूसरे व्यक्ति के साथ ये प्रयोग फिर से दोहराया जाता है और व्यक्ति अपने अगले अनुभव की ओर बढ़ जाता है। मोह सम्बन्धी ये प्रयोग जीव की व्यक्तित्व यात्रा का अनुभव है। किसी से भी किसी भी प्रकार का सम्बन्ध जोड़ने के लिए सबसे पहले अपनी सत्ता की उपस्थिति अनिवार्य है। जब व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को एक स्वतंत्र सत्ता मानता है, तभी वह दूसरे व्यक्तियों की ओर आकर्षित हो, उनसे सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास करता है। ईश्वर किसी को सम्बन्ध द्वारा नहीं जोड़ते लेकिन फिर भी देख-रेख वे सभी की करते हैं।

वहीं व्यक्ति जिनसे सम्बन्ध होता है, स्वयं को मात्र उनके प्रति उत्तरदायी मानता है और इस प्रकार वह स्वयं को एक बहुत छोटे दायरे में सिकोड़ लेता है। ये दायरा ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बना है जिनका नष्ट होना तय है। इस प्रकार सम्बन्धों का टूटना भी तय है।

❖❖

दुनियाँभर के बुद्धिमान मनुष्य और बुद्धिजीवी अंतत: उस व्यक्ति की ओर आकर्षित होते हैं जो बुद्धि की बातें बिल्कुल नहीं करता। दुनियाँ की सारी डिबेट बुद्धिजीवी ही किया करते हैं। अपने आसपास और टीवी पर होने वाले सभी डिबेट्स में आप बुद्धिमान और बुद्धिजीवियों का जमावड़ा पाएंगे। जो तर्कों द्वारा अपनी-अपनी विचारधारा को श्रेष्ठ साबित करने का प्रयास करते हैं। इन सारी डिबेट्स के मूल में व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व है और व्यक्तित्व आकर्षक या प्रतिकर्षक हो सकता है। कारण ये है कि हर व्यक्तित्व आवेशित है और जहाँ आवेश है वहाँ पर उत्तेजना है। इसी कारण हर वाद-विवाद में लोग आपको उत्तेजित होते हुए दिख जाएंगे। या तो अपनी विचारधारा को श्रेष्ठ साबित करने के लिए या फिर दूसरे की विचारधारा को निकृष्ट साबित करने के लिए।

हारना कोई पसंद नहीं करता क्योंकि ये उसकी नहीं उसके व्यक्तित्व की हार है। एकमात्र व्यक्तित्व ही तो उसके पास है। वह व्यक्तित्व हार कैसे सकता है? इसी कारण व्यक्ति अपनी गलत बातों को भी सही साबित करने का प्रयास करता है। बुद्धि के तल पर सर्वत्र उथल-पुथल है। अपने तर्कों में व्यक्ति हारे या जीते; दोनों ही दशाओं में वो उत्तेजित होता ही है। बुद्धि तर्क करती है क्योंकि उसे श्रेष्ठता चाहिए। बुद्धि अपनी समस्याओं के समाधान में मात्र सफलता या असफलता प्राप्त करती है। लेकिन उन घटनाओं का वो भी कभी स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं कर पाती। सफलता संतुष्टि तो देती है लेकिन अल्पकाल के लिए। सफलता कभी शांति नहीं लाती। इसी कारण व्यक्ति सफल होने के बाद भी लगातार अपने प्रयास करता रहता है। वो रूकना नहीं चाहता। वास्तव में उसे अपनी उद्विग्नता से मुक्ति चाहिए। इसी कारण अंतत: वह उस व्यक्ति की ओर आकर्षित होता है, जो बुद्धि की बातें बिल्कुल नहीं करता। करता भी है तो मात्र स्पष्टीकरण की बातें। जीवन को समझने

की बातें। घटना की नहीं, घटना के पीछे छिपे कारणों की बातें। सफलता की नहीं, संतुष्टि की बातें, संतृप्ति की बातें। हर बुद्धिजीवी जो ढूँढ रहा है, उसे वह बुद्धि के तल पर नहीं प्राप्त कर पाता। इसी कारण वह उस व्यक्ति को सुनना चाहता है, जो बुद्धि के तल के पार प्रकाश की बातें करता है। स्वयं को जानने की बातें करता है। जीवन को समझने की बातें करता है और जीवन जीने के नए तरीकों के बारे में बातें करता है। जीवन को एक नई दृष्टि से देखने के बारे में बातें करता है। सफलता और असफलता से आगे की बातें करता है।

पृथ्वी द्विध्रुवीय व्यवस्था के कारण ही गतिशील और कार्यशील है। यदि उत्तर और दक्षिण ध्रुव मिल जाएँ तो सभी संसाधन, जीवन और रचनाएँ समाप्त हो जाएँगी। पदार्थ द्विध्रुवीय व्यवस्था में ही उपयोगी है। पूरे ब्रह्माण्ड में फैला पदार्थिक जगत, द्विध्रुवीय व्यवस्था के अंतर्गत ही कार्य करता है। परमाणु से लेकर पृथ्वी तक और साथ ही साथ ये शरीर भी द्विध्रुवीय है। शरीर के दो ध्रुव हैं - 'उत्तर और दक्षिण'। उत्तरी ध्रुव कपाल के शीर्ष पर और दक्षिणी ध्रुव रीढ़-रज्जु के अंतिम कोने से कुछ आगे स्थित होता है। उत्तरी ध्रुव के स्वामी हैं 'शिव' और दक्षिण ध्रुव की स्वामिनी हैं 'शक्ति'। लेकिन शरीर में ये व्यवस्था भी है कि दक्षिणी ध्रुव के ऊपर की ओर उठकर, उत्तरी ध्रुव को छू सकता है। द्विध्रुवीय व्यवस्था के समाप्त होते ही चेतन, पदार्थ से मुक्त हो जाएगा परंतु यदि अभी जीवन शेष बचेगा तो वह चेतन प्रधान होगा न की द्विध्रुवीय। यह एक दुर्लभ अवसर है, जब चेतन अपने मूल स्वरूप में शरीर में स्थित हो कुछ कार्यों को आकार देता है। सामान्यतः शरीर का स्वामी व्यक्तित्व है और इस कारण शरीर के माध्यम से व्यक्तित्व स्वयं पर कार्य करता है लेकिन जब व्यक्तित्व के स्थान पर चेतना स्वयं इस शरीर से कार्य ले तो वह दिव्य होगा। इस घटना का मूल उद्देश्य चैतन्य के संदेशों का प्रसारण है ताकि व्यक्तित्व में बँधी चेतनाएँ आंदोलित हो सकें।

समय-समय पर परमात्मा ऐसी घटनाओं को आकार देते हैं, जिससे उन चेतनाओं को प्रेरणा मिल सके, जो एक नियत स्तर की संतुष्टि प्राप्त कर चुकी हैं व आगे का मार्ग तलाश रही हैं। ये मिट्टी में खेलते उन बच्चों की ओर हाथ बढ़ाने जैसा है, जो इस मिट्टी से अब बाहर निकलना चाहते हैं और सहायता के लिए चारों ओर देख रहे हैं। जो बच्चे अभी मिट्टी में ही खेलना चाहते हैं उनकी प्रेरणाएँ

वहीं पर मिल जाएगी लेकिन जो अब बाहर आना चाहते हैं उनके लिए भी सहायता की आवश्यकता है। ईश्वर का यह हाथ किसी माध्यम से ही सही, उन तक पहुँचता अवश्य है।

❖❖

मन को चाहिए विकास और चेतना को उद्विकास। दुनियाँभर का मन विकास चाहता है। इसलिए कहा जाता है कि बड़े सपने देखो क्योंकि जब तुम बड़े सपने देखोगे तो तुम्हारी बुद्धि उस पर कार्य करना प्रारंभ कर देगी और जब बुद्धि काम में लग गई तो तुम अवश्य कहीं न कहीं तो पहुँच ही जाओगे। यदि सपने ही न देखें, कोई इच्छा ही न की तो बुद्धि काम भी किस पर करेगी? हर परिवार को विकास चाहिए। अभिभावक पहले स्वयं और बाद में अपने बच्चों के माध्यम से विकास की इच्छा करते हैं क्योंकि उनके सामने समाज है और परिवार का विकास समाज के विकास से पिछड़ नहीं सकता। विद्या प्राप्ति के पीछे भी विकास की यही अवधारणा कार्य करती है क्योंकि विद्या विकास का साधन है। यदि पढ़ाई नहीं होगी तो विकसित होने की संभावनाएँ भी क्षीण हो जाएंगी। इसी कारण हर परिवार का लक्ष्य सिर्फ एक ही है और वो है विकास।

बुद्धि विकसित होकर उपाधियों और डिग्रियों को प्राप्त करती है। स्किल्स के माध्यम से काम और डिग्रियों के माध्यम से नौकरी मिलती है इसलिए पढ़ाई करो, गुण विकसित करो और विकास करो। स्किल्स और शिक्षा की अनुपस्थिति में मात्र विकल्प बचेगा तो सिर्फ एक, और वो है व्यापार। इसी कारण देश और दुनियाँ का संकलित मन, विकास की अपेक्षा करता है और इच्छा भी क्योंकि हर व्यक्तित्व को चाहिए तो बस विकास। हर प्रकार का विकास पदार्थ से जुड़ा है।

चेतना का विकास से कुछ लेना-देना नहीं क्योंकि चेतना स्वयं जड़ नहीं। वह व्यक्तित्व से अलग हटकर ऊपर उठकर शून्य में स्थित होना चाहती है ताकि वह अपने स्वरूप को पुनः पहचान सके, खुद को जान सके। विद्या पर अपनी निर्भरता समाप्त करे और स्वयं प्राप्त सूचनाओं के आधार पर स्वयं को उन्नत कर सके। व्यक्तित्व से टूटकर अलग होना और अपने मूल स्वरूप में स्थित होना ही उद्विकास है। मनुष्य विकास करता है और बुद्ध उद्विकास। चैतन्य स्वयंभू है। इसी कारण वह

अपने मूल स्वरूप को, स्वयं ही जान जाता है। किसी और द्वारा दी गई सूचनाओं पर उसकी निर्भरता नहीं होती।

जीवों ने भी उद्विकास किया। एक-कोशिकीय जीव से लेकर आज यात्रा सबसे विकसित जीव अर्थात् मनुष्य तक आ पहुँची है। प्रकृति सदैव उद्विकास में रत है। उसने हर जीव की सहायता की। मनुष्य को बुद्धि मिली और वो विकास में लग गया लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि प्रकृति ने मुँह मोड़ लिया। वो मनुष्य को विकास करते हुए तो देखती है लेकिन उसे संतुलन में भी रखती है। वो जानती है विकास अस्थाई है और उद्विकास स्थाई। इसी कारण वो हर उस मनुष्य की सहायता करती है जो विकास से ही संतुष्ट नहीं है। वो उसे उद्विकास का मार्ग दिखाती है। ये संयोग नहीं है कि बुद्ध को ज्ञान तब प्राप्त हुआ जब वो प्रकृति के मध्य एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। मनुष्य अंतत: जब प्रकृति के पास जाता है तभी वह उसकी सहायता कर सकती है। अपने कर्तव्य से न वो कभी पीछे हटी है और न ही कभी पीछे हटेगी। मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप का दर्शन भी प्रकृति ही कराती है और उसे मनुष्यत्व से आगे की ओर बढ़ाती भी है।

❖❖

सोशल नेटवर्किंग से सेल्फ नेटवर्किंग की ओर - सामाजिकता सोशल नेटवर्किंग है तो अध्यात्म सेल्फ नेटवर्किंग। पहले सामाजिकता निभाने हेतु स्वत: उपस्थित होना होता था लेकिन अब वर्चुअल दुनियाँ में भी अपने कमरे में बैठे-बैठे ही समाज से जुड़े रहा जा सकता है। तकनीक ने मनुष्य का सामाजिक दायरा बढ़ा दिया है। पहले संवाद के तरीके धीमे और सीमित थे। अब संवाद के तरीके तीव्र और विस्तृत हैं। पहले इच्छाओं की पूर्ति का समाधान एक सीमित समाज में उपलब्ध था। इसी कारण समाज अत्यंत शक्तिशाली भी था। उसके पास ज्यादा अधिकार थे। तकनीक में विकास के साथ मनुष्य की इच्छापूर्ति की संभावनाएँ और अवसरों का दायरा भी काफी बढ़ गया है। इसी कारण अपने आसपास के समाज पर आपकी निर्भरता कम हुई है।

वास्तविक हो या वर्चुअल, दोनों ही समाज हैं। दोनों से ही जुड़ने के लिए इच्छा, समय और ऊर्जा की आवश्यकता है। समाज से जुड़ना व्यक्ति के व्यक्तित्व

का विस्तार करता है। वह समाज के आईने में अपने व्यक्तित्व की छाया देखकर, कुछ समय की खुशी प्राप्त कर सकता है। समाज और व्यक्तित्व के मध्य की क्रियाएँ व्यक्ति को अनुभव सम्पन्न बनाती हैं। समाज एक स्तर तक व्यक्ति के अनुभवों को समृद्ध और इच्छाओं को संतुष्ट कर सकता है लेकिन व्यक्ति की खोज, समाज कभी पूरी नहीं कर सकता। समाज व्यक्तित्व को मान्यता देता है लेकिन मनुष्य की अपनी खोज अपने व्यक्तित्व से अत्यंत परे है। इसी कारण व्यक्ति सोशल नेटवर्किंग से सेल्फ नेटवर्किंग की ओर मुड़ जाता है। सोशल नेटवर्किंग जुड़ी है उत्कण्ठा और विभिन्नता से, वहीं सेल्फ नेटवर्किंग जुड़ी है अनेकता में उपस्थित समानता से और स्वयं की खोज से।

समस्याएँ तुलना से उत्पन्न होती हैं लेकिन जब तुलना करने हेतु कोई दूसरा उपस्थित ही न हो तो फिर समस्या कैसी? समस्याओं को खत्म करने हेतु विभिन्नताओं को समाप्त होना होगा और समाज तो विभिन्नता का उत्सव है। वहाँ समस्याएँ कैसे समाप्त होगी! इसी कारण समाधान खोजने के लिए सेल्फ नेटवर्किंग की ओर मुड़ना होगा। समाज के बाद अब खुद से जुड़ना होगा। जब हमारी समस्याएँ खुद से ही शुरू होती हैं तो उनका अंत भी खुद तक पहुँच कर ही होगा। खुद से जुड़कर ही दूसरों से भी जुड़ा जा सकेगा। उसके पहले तो मात्र सम्बन्धों का ही खेल चलता है। खुद को जानकर ही दूसरों को भी पहचाना जा सकेगा। उसके पहले तो मात्र भ्रम ही भ्रम है। खुद से जुड़कर ही अंश और अंशी अर्थात् जीव और परम् से जुड़ा जा सकेगा। खुद को जानना ही समस्याओं का हल है।

❖❖

मनुष्य आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस तो बना सकता है लेकिन आर्टिफिशियन सत्य नहीं क्योंकि सत्य बनाने की नहीं, पाने की अवस्था है। बुद्धि मनुष्य का ही एक आयाम है लेकिन सत्य मन से परे है। सत्य प्राप्त करने हेतु मनुष्य को बुद्धत्व प्राप्त करना होगा। गौतम बुद्ध दिखते तो मनुष्य जैसे ही थे लेकिन आंतरिक रूप से उनका उन्नयन हो चुका था। शरीर बाकी था लेकिन चेतना मुक्त हो चुकी थी। दिखने में सब कुछ सामान्य ही था लेकिन परम् जगत का मार्ग खुल चुका था। स्वयं की पहचान मिल चुकी थी और गुणों पर निर्भरता समाप्त हो चुकी थी।

वैज्ञानिक आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस बनाते हैं और उस के माध्यम से विज्ञान को भी एक नई ऊँचाई देते हैं। मनुष्य का जीवन सरल होता है लेकिन सहज तो वो तब भी नहीं हो पाता। जीवन का सरल होना और मनुष्य का स्वयं सरल होना, दो अलग-अलग बातें हैं। विज्ञान मनुष्य की संभावनाएँ तो बढ़ाता है लेकिन भावनाओं से दूर, भाव में मनुष्य को स्थिर नहीं कर सकता। भाव के लिए मनुष्य को पदार्थ का विज्ञान नहीं, अपना विज्ञान जानना होगा और अपना आंतरिक विज्ञान समझने के लिए उसे योग को समझना होगा।

❖❖

शक्ति एनरिच्ड यूरेनियम जैसी है और ऊर्जा सीएनजी, पीएनजी, पेट्रोल या डीजल जैसी। भोजन से हमें शक्ति और ऊर्जा दोनों ही प्राप्त होती हैं। ऊर्जा भोजन का वो भाग है जिससे शरीर एटीपी के रूप में संचित कर लेता है। जिससे जब और जैसे ऊर्जा की आवश्यकता हो, वैसे-वैसे एटीपी को एडीपी में बदलकर ऊर्जा प्राप्त की जा सके। शरीर को जब भी ऊर्जा की आवश्यकता होती है, ये भूख के रूप में संकेत भेजता है। भूख महसूस होते ही मनुष्य तुरंत भोजन की ओर लपकता है ताकि शरीर को लगातार ऊर्जा की आपूर्ति की जा सके। लेकिन शक्ति को ऊर्जा की तरह तुरंत नहीं प्राप्त किया जा सकता। जैसे ही यूरेनियम को तुरंत एनरिच नहीं किया जा सकता।

यूरेनियम के दो आइसोटोप्स होते हैं- 'यूरेनियम-२३५ और यूरेनियम-२३८'। यूरेनियम-२३५ का प्रतिशत अत्यंत कम होता है। वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा दोनों आइसोटोप्स का अलग-अलग करके यूरेनियम-२३५ की सांद्रता बढ़ाते हैं। शुद्ध यूरेनियम-२३५ को इनरिच्ड यूरेनियम कहते हैं। मिट्टी में उर्वरा शक्ति होती है। यही फल और अनाज पैदा करती है। भोजन के माध्यम से यही शक्ति शरीर को भी प्राप्त होती है। जिससे शरीर में सतत् नई कोशिकाएँ बनना, पुरानी और मृत कोशिकाओं की सफाई करना, रोगों से लड़ने की क्षमता बनाए रखना, प्रजनन शक्ति का निर्माण और उसका क्रियान्वयन होता रहता है। साथ ही साथ मनुष्य की चेतना का भोजन इसी शक्ति के माध्यम से प्राप्त होता है। योग ब्रह्मचर्य की सलाह देता है ताकि शक्ति को संघनित किया जा सके। जो शरीर और चेतना दोनों के ही काम आए।

शक्ति की अनुपस्थिति में जीवन संभव नहीं। जीवनीशक्ति के समाप्त होने पर चेतना शरीर का त्याग कर देती है। इस दशा में शरीर एक ऊर्जा का पिण्ड मात्र रह जाता है। अब न ही ये नई कोशिकाओं का निर्माण कर सकता है और ना ही रख-रखाव। न इम्यून सिस्टम काम करता है और न ही प्रजनन शक्ति।

हिन्दू धर्म साल में दो बार नवरात्रि के व्रत रखने की सलाह देता है। इस दौरान सलाह यह होती है कि अनाज का निषेध किया जाए। मात्र फल और दूध पर नौ दिन बिताए जाएँ। दोनों में ही अत्यधिक मात्रा में शक्ति होती है। जो शरीर और चेतना दोनों को ही पुष्ट करती है। नवरात्रि में इच्छाओं का निषेध करने से शक्ति के व्यय होने की दर कम हो जाती है। इस प्रकार शरीर में शक्ति का प्रतिशत बढ़ जाता है।

काम क्रिया के दौरान स्रावित होने वाले द्रवों का निर्माण भी इसी शक्ति के माध्यम से होता है। संयम और ब्रह्मचर्य की सलाह इसी कारण दी जाती है ताकि एनरिच्ड यूरेनियम जैसी कीमती शक्ति का व्यर्थ ह्रास रोका जा सके। काम को क्रीड़ा कहा जाता है और प्रजनन को शक्ति। इस प्रकार काम के द्वारा शक्ति का ह्रास कुछ वैसा ही है जैसे कोई प्लेटिनियम को चाँदी समझकर औने-पौने दाम में बेच दे और जैसे यूरेनियम का संग्रह अशिक्षित लोगों के हाथों में पहुँच जाए, जो उसे व्यर्थ समझकर नष्ट ही कर डालें। भोजन के रूप में प्रकृति प्रेम देती है तो शक्ति के रूप में वरदान। इस शक्ति का उपयोग मनुष्य समय के चक्र से बाहर निकलने के लिए भी कर सकता है और टाइम पास करने के लिए भी। निर्णय स्वयं उसे ही करना होगा क्योंकि भोजन और शक्ति दोनों ही हर मनुष्य को प्राप्त होते हैं।

❖❖

वैज्ञानिकों को जब तक उत्तर नहीं मिलेगा तब तक शांति नहीं मिलेगी। सत्यान्वेशियों को पहले शांति मिलती है फिर उत्तर। वैज्ञानिक जीवन रूपी इस पहेली को और सृष्टि रूपी इस राज को, जब तक सुलझा नहीं लेते तब तक वे व्यग्र रहेंगे तथा खोजते रहेंगे। उत्तर मिल जाने पर भी शांति मिल जाए ऐसा संभव नहीं क्योंकि उत्तर यदि बाहर से आएगा तो शांति भीतर से कैसे आ सकती है? हाँ, उत्तर के साथ संतुष्टि जरूर आ सकती है। वहीं सत्यान्वेशियों को अपनी खोज में पहले शांति

मिलती है और तत्पश्चात् उत्तर। सत्यान्वेशियों को एक ही दिशा से शांति और उत्तर दोनों प्राप्त होते हैं। प्राचीन भारत में जब विज्ञान का प्रसार हुआ तो सत्य की खोज का भी। क्योंकि कदाचित् वे जान चुके थे कि मनुष्य को जो चाहिए शायद विज्ञान से वो उन्हें प्राप्त न हो पाए इसलिए नई दिशाओं को खोजना होगा, नए मार्गों को टटोलना होगा। ज्ञान और विज्ञान मिलकर ही मनुष्य को संतुलन प्रदान कर सकते हैं। इस आधार पर भी विश्व द्विध्रुवीय है।

पश्चिम में विज्ञान ने प्रगति की, भारत में आत्मज्ञान पर काम हुआ। एक मनुष्य की समृद्धि पर आधारित है और दूसरा मनुष्य की संतृप्ति पर। पूरब और पश्चिम मिलकर मानवता को पूर्णता का रास्ता दिखाते हैं। विज्ञान संतुष्टि देगा तो ज्ञान संतृप्ति। एक बाहरी पक्ष को पुष्ट करेगा तो दूसरा भीतरी पक्ष को। पूर्वी सभ्यता के प्राणी अपने व्यक्तित्व की खोज में पश्चिम की ओर जाते हैं और पश्चिमी सभ्यता के लोग स्वयं की खोज में भारत की ओर आते हैं। पश्चिम से विज्ञान विश्व में जाता है और भारत से ज्ञान। विश्व में संतुष्टि और संतृप्ति मिलकर ही मनुष्य को पूर्णता देते हैं। हर मनुष्य पहले संतुष्टि ढूँढता है और फिर संतृप्ति तथा ये दुनियाँ दोनों की ही आवश्यकताओं को पूरा करती है।

दो ध्रुव वाली इस दुनियाँ की व्यवस्था भी द्विध्रुवीय है। जैसे पुरुष और स्त्री, काम और सोम, अच्छा और बुरा, काला और गोरा, सफलता और असफलता, सुख और दु:ख, पास और दूर, अपना और पराया, तेरा और मेरा, परिवार और समाज, अमीर और गरीब, सम्पन्न और विपन्न, समर्थ और असमर्थ, विख्यात और कुख्यात, पति और पत्नी। लेकिन ये व्यवस्था मात्र इसी दुनिया तक ही सीमित है। पदार्थ की दुनियाँ तक सीमित है। शून्य में दो ध्रुव नहीं हैं। अनंत तक फैला है तो मात्र शून्य। पदार्थ के परे कोई भी व्यवस्था द्विध्रुवीय नहीं है। परम् में दो ध्रुव नहीं, सत्य के दो ध्रुव नहीं, सत्य मात्र एक है और वही पूर्ण है। इस द्विध्रुवीय दुनियाँ का आधार एक ध्रुवीय दुनियाँ में स्थित है और यही इस सृष्टि की सफलता का कारण भी है। क्योंकि द्विध्रुवीय व्यवस्था में द्वंद है, विरोध है, प्रतिकार है, प्रतिरोध है, क्रिया और प्रतिक्रिया है। खेल में दो टीमें हैं जो एक दूसरे के विपक्ष में हैं लेकिन यदि एक एंपायर न हो तो खेल कैसे पूर्ण होगा? कदाचित् खेल हो ही न पाए। इस प्रकार द्विध्रुवीय व्यवस्था पर एक ध्रुव ही नियंत्रण रखता है। वास्तव में

द्विध्रुव गुणों के कारण है और इनका जन्म प्रकृति से है। इस प्रकार वर्गीकरण प्रकृति से ही प्रारंभ है लेकिन प्रकृति के परे कोई वर्गीकरण नहीं, मात्र एक सार्वभौमिक सत्ता है।

मनुष्य का आधा जीवन विकास के लिए और शेष आधा जीवन उद्विकास के लिए है। आश्रम व्यवस्था के वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम इसी उद्विकास के लिए रचे गए ताकि आधा जीवन व्यक्ति अपने व्यक्तित्व पर काम करे और शेष आधा जीवन स्वयं पर क्योंकि यदि वो सिर्फ व्यक्तित्व पर ही काम करता रहेगा तो स्वयं को कभी पा न सकेगा। अपने व्यक्तित्व की सफलता के माध्यम से व्यक्ति खुद को संतुष्ट करना चाहता है लेकिन संतुष्टि के चरम् पर पहुँचने के बाद भी उसकी खोज पूर्ण नहीं होती। वास्तव में वो कभी संतुष्ट हो भी नहीं पाता। सफलता पाने पर वो अगली सफलता की योजना बनाने लगता है। एक बाधा पार कर वो दूसरी बाधाओं को पार करने के बारे में सोचने लगता है। कारण सिर्फ इतना है कि कोई भी सफलता, उसकी संतुष्टि को पूर्ण नहीं करती। खोज फिर भी चलती रहती है और खोज तब तक पूर्ण भी न होगी जब तक व्यक्तित्व में ही वो अपने आयामों को ढूँढेगा।

वास्तव में अपने जिन आयामों को व्यक्ति ढूँढ रहा है वो व्यक्तित्व से परे है। व्यक्तित्व का उद्विकास नहीं होता, मात्र विकास ही होता है। उद्विकास स्वयं जीव का होगा। आधा जीवन धर्म और शेष जीवन अध्यात्म के लिए। आधा जीवन गुणों की वृद्धि और शेष जीवन गुणों से परे जाने के लिए। यदि व्यक्ति अपना पूरा जीवन विकसित होने में ही लगा देगा तो इस जीवन में उद्विकास की संभावना न बचेगी। इस कारण आवश्यक है कि वो खुद को समय दे। अपनी गहराइयों में उतर कर वो खुद को समझने का प्रयास करे। स्वयं को बाँधने की बजाय खोलना शुरू करे। अपने घर में और अपने काम करने के स्थान पर प्रकृति का साथ पाने की कोशिश करे। कोई भी सिर्फ विकास करके ईश्वर तक नहीं पहुँच सकता। यदि ऐसा होता तो संसार के सभी सफल और विकसित व्यक्ति सत्य को पा चुके होते। इसलिए इस सच्चाई को स्वीकार करना जरूरी है कि विकास में हमारे सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं छुपे हैं। विकास के परे जो दुनियाँ है, उस दुनियाँ को टटोलना होगा।

विकास मात्र कुछ हजार सालों में ही उपस्थित है लेकिन मनुष्य के प्रश्न तब से उपस्थित हैं जब से उसकी बुद्धि विकसित होनी प्रारंभ हुई। बुद्धि का विकास कुछ लाख सालों में हुआ लेकिन उत्तर तो समय के प्रारंभ से ही उपलब्ध है और उससे पहले से भी। हम अपनी पहचान बनाते हैं लेकिन खुद को खोजना होता है। अपनी पहचान को हम खोज नहीं सकते और खुद को बना नहीं सकते क्योंकि व्यक्तित्व उपस्थित नहीं है इसलिए उस पर काम करना होगा लेकिन जो सदैव से उपस्थित है उसे तो सिर्फ खोजा जा सकता है। इसलिए पहले निर्माण और फिर खोज।

समय का प्रभाव इस सृष्टि के बहुत छोटे से भाग पर है। मात्र उस भाग पर जिस भाग में पदार्थ है और यह पूरी सृष्टि का मात्र १ गुणे $१०^{-२३}$ भाग है। शेष भाग है निर्वात, जहाँ पर पदार्थ नहीं। जहाँ पर कुछ भी नहीं। एक बहुत बड़ा खाली स्थल। शून्य में पदार्थ उतना ही होगा, जितना की एक बड़ी सी दीवार पर, कहीं एक छोटा सा बिन्दु। समय का तात्पर्य है परिवर्तन। जिस चीज में परिवर्तन नहीं आता, वो समय से नहीं बँधी। शून्य एक निर्वात की स्थिति है और पदार्थ नहीं तो परिवर्तन नहीं।

वैज्ञानिक जगत् की भी शून्य में कुछ खास रुचि नहीं। उनका ध्यान पदार्थिक दुनियाँ पर है। ग्रह, उपग्रह, धूमकेतु, आकाशगंगाएँ उन्हें खींचती हैं। शून्य में घटने वाले किसी परिवर्तन को हम अपनी दृष्टि द्वारा नहीं माप सकते। इस प्रकार हमारी सृष्टि का ही एक भाग है जो समय के साथ परिवर्तनशील है और एक दूसरा बहुत बड़ा भाग जो किसी भी दृष्टिगोचर परिवर्तन से अछूता है। इसलिए समय को एकमात्र पैरामीटर मान लेना उचित नहीं होगा। समय का प्रभाव अलग-अलग अवस्थाओं में, सृष्टि के अलग-अलग भागों में अलग-अलग है। घड़ी प्राकृतिक परिवर्तनों को नोट करती है। इस प्रकार यह प्रकृति पर आधारित है और समय भी। प्रकृति हर साल अपनी यात्रा पुन: शुरू करती है लेकिन मनुष्य की यात्रा आगे की ओर बढ़ती है। हर साल प्रकृति उन्हीं मौसमों को दोहराती है। प्रकृति हर साल स्वयं को नया कर लेती है। ग्लेशियर से निकला जल नदियों से होता हुआ समुद्र तक और समुद्र से बादलों के रूप में पुन: ग्लेशियर तक पहुँच जाता है। चक्र पुन: शुरू हो जाता है लेकिन मनुष्य हर साल बूढ़ा होता जाता है।

❖❖

मशीन को दूसरी मशीन की आवश्यकता होती है। एक मशीन बाई-प्रोडक्ट के रूप में ऊष्मा उत्सर्जित करती है। इस ऊष्मा को दूर करने और तापमान नियंत्रित करने के लिए एक दूसरी मशीन की आवश्यकता होती है। ये दूसरी मशीन भी ऊष्मा उत्पन्न करती है। एयर कंडीशन शरीरों की ऊष्मा को खींचकर उन्हें ठंडक प्रदान करता है। कार्बन डाइऑक्साइड के साथ जो वाष्प निकलती है, इसी वाष्प को खींचकर वह कमरे से बाहर कर देता है। इस प्रकार कमरे के तापमान में गिरावट आती है। कमरे का तापमान कम होने पर शरीर स्वत: ही ठण्डा होने लगता है लेकिन एयर कंडीशन भी ऊष्मा का उत्सर्जन करता है। इस प्रकार ये हमारे लिए तो अच्छा है लेकिन पर्यावरण के लिए नहीं।

मनुष्य शरीर स्वत: एक यंत्र है और इस यंत्र की सहायता के लिए मनुष्य समय-समय पर नए यंत्र बनाता रहता है लेकिन मनुष्य का शरीर और मनुष्य द्वारा बनाए गए यंत्र दोनों ही ऊष्मा का उत्सर्जन करते हैं। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। आवश्कता मन से निकलती है और आविष्कार बुद्धि से। इस प्रकार मन ही आवश्कता भी पैदा करता है और साथ ही उन्हें पूरी करने वाले आविष्कार भी। मनुष्य के उलट प्रकृति को किसी मशीन की आवश्यकता नहीं। विभिन्न चक्रों द्वारा वह परिस्थितियों को नियंत्रित करती है लेकिन मनुष्य की सत्ता प्रकृति की सत्ता से अलग है। इसी कारण अपनी समस्याओं के समाधान, वह स्वयं ही ढूँढता है। ये सभी समस्याएँ उसके व्यक्तित्व द्वारा उत्पन्न की गई होती हैं। व्यक्तित्व विकास को बढ़ाता है। विकास आवश्यकताओं को, आवश्यकताएँ आविष्कार का, आविष्कार शोध को, शोध व्यापार को और व्यापार पुन: आवश्यकताओं को बढ़ाता है। व्यापार का एक सूत्र कहता है कि पहले आवश्यकताएँ पैदा करो और फिर उत्पाद। विज्ञापन के माध्यम से नई-नई आवश्यकताएँ पैदा की जाती हैं और फिर उन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नए-नए उत्पाद आते हैं। इस प्रकार व्यक्तित्व की निर्भरता मशीनों पर बढ़ती चली जाती है। जितना ही वो मशीनों के पास जाता है, उतना ही प्रकृति से दूर भी जाता है। इसी कारण आज का मनुष्य व्यक्तित्व निर्मित समस्याओं का सामना ज्यादा करता है।

लाइफ स्टाइल सम्बन्धित बीमारियाँ व्यक्तित्व से ही उपजती हैं और इन बीमारियों से लड़ने के लिए मनुष्य पुन: मशीनों पर निर्भर हो जाया करता है। इस प्रकार वह प्रकृति के साथ ही स्वयं से भी दूर हटता चला जाता है। उसके शरीर की निर्भरता तो मशीनों से सम्बन्धित हो सकती हैं लेकिन स्वयं उसे प्रकृति की ओर जाना चाहिए। शरीर की समस्याएँ मशीनें काफी हद तक दूर कर देंगी लेकिन उसकी स्वयं की समस्या प्रकृति ही सुलझा सकती है।

इंटेलेक्चुअल और एक्चुअल : इंटेलेक्चुअल अर्थात् बुद्धिजीवी, एक्चुअल अर्थात् वास्तविकता। व्यक्तित्व जब व्यक्तित्व से जुड़ता है तो बुद्धि के माध्यम से और यह समझ में भी आता है क्योंकि व्यक्तित्व को बुद्धि ही पैदा करती है। लेकिन व्यक्तित्व जब वास्तविकता अर्थात् प्रकृति से बुद्धि के माध्यम से जुड़ता है तो वह गलती कर बैठता है। प्रकृति को बुद्धि से नहीं समझा जा सकता। प्रकृति अरबों साल से अस्तित्व में है किन्तु बुद्धि विकसित हुई कुछ लाख सालों में ही। प्रकृति का अस्तित्व बुद्धि से कहीं पहले से है। इस प्रकार बुद्धि द्वारा प्रकृति का निर्माण नहीं हुआ। इसी कारणवश बुद्धि से प्रकृति को समझना संभव नहीं।

ईश्वर को पाने के सभी मार्ग प्रकृति से होते हुए जाते हैं। इसी कारण सत्य की खोज की यात्रा में पहले आप प्रकृति से जुड़ते हैं और तब सत्य से। ध्यान द्वारा प्रकृति को समझा जा सकता है। दैवीय कृपा से उसे जाना जा सकता है। भक्ति प्रकृति के नजदीक ले जाती है। प्रेम में प्रकृति की झलक है। ज्ञान प्रकृति के मध्य उपलब्ध होता है। विवेक पर प्रकृति की छाया है। योग प्रकृति पर आधारित जीवन जीने को प्रोत्साहित करता है। सेवा प्रकृति के निकट ले जाती है। जब कभी भी हम बुद्धि के माध्यम से प्रकृति से जुड़ेंगे तो प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करेंगे। बुद्धि हमें बताएगी कि प्रकृति में भी व्यापार की संभावना है। मनुष्य प्रकृति का दोहन करता है लेकिन उसका खामियाजा पूरे जंतु जगत् को भुगतना पड़ता है। धर्म प्रकृति की इस विशेषता को समझते हैं। इसी कारण धर्मों ने प्रकृति को आधार बनाया ताकि मनुष्य व्यक्तित्व के चंगुल से निकलकर प्रकृति के माध्यम से स्वयं तक पहुँच सके।

❖❖

इंजन के आविष्कार के बाद, बड़े इंजन बनाए गए। तकनीक के बढ़ते जाने के साथ माइक्रो इंजन और फिर नैनो इंजन बनाए जाने के प्रयास होने लगे। बुद्धि भी कुछ इंजन जैसी है। विकसित होने के साथ ये विस्तृत होती है और अंतत: सूक्ष्म बुद्धि के रूप में परिपूर्णता को प्राप्त करती है। प्रारंभिक कम्प्यूटर एक कमरे के आकार के हुआ करते थे। तकनीक और विज्ञान के बढ़ते जाने के साथ कम्प्यूटर का आकार घटता चला गया और आज वे पतली किताब के रूप में उपलब्ध हैं। दूसरे ग्रहों की यात्रा व उनकी जानकारी जुटाने के लिए पहले बड़े यानों की कल्पना की गई। जिसमें बहुत सारे ईंधन की खपत होती थी। तकनीक के उन्नत होते जाने के साथ इनका आकार घटता गया और अब वर्तमान में एक पेज या पन्ने के आकार के अंतरिक्ष यानों की कल्पना हो रही है, जो ज्यादा तेजी से और सटीकता से दूसरे ग्रहों तक पहुँचकर वहाँ से सूचनाएँ भेज सकें। इंजन के समान ही बुद्धि भी परिष्कृत और उन्नत होते जाने के साथ-साथ सूक्ष्म होती जाती है। सूक्ष्म बुद्धि के माध्यम से ही मनुष्य जीवन सम्बन्धित अपनी जिज्ञासाओं के स्पष्टीकरण को प्राप्त करता है। सूक्ष्म बुद्धि मनुष्य के होने के कारणों, उसके व्यवहार, प्रकृति, गुणधर्म, आंतरिक विज्ञान, समय, आत्मस्वरूप इत्यादि के बारे में सूचनाएँ उपलब्ध करवाती है। कृष्ण इसे 'शुद्ध-बुद्धि' करते हैं। आंतरिक शुद्धिकरण की प्रक्रिया द्वारा मनुष्य शुद्ध-बुद्धि प्राप्त कर, अपनी जिज्ञासाओं की तह में और उन जिज्ञासाओं के समाधान की तह तक पहुँचता है और वह कारण और निवारण दोनों को इस माध्यम से जान पाता है। इस प्रकार मनुष्य अपनी जिज्ञासाओं के साथ-साथ समाज की जिज्ञासाओं के समाधान भी प्रस्तुत करता है।

❖❖

विज्ञान बुद्धि से उत्पत्ति प्राप्त करता है और ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से समझा और समझाया जाता है। इस प्रकार ज्ञानेंद्रियाँ एक माध्यम की भाँति कार्य करती हैं। मनुष्य इंद्रिय रूपी सीमित संसाधन के माध्यम से पदार्थ रूपी सीमित जगत् से जुड़ता है। इस प्रकार विज्ञान से जुड़ने के लिए मनुष्य को अपनी इंद्रियों की आवश्यकता होगी। इंद्रियाँ सीमित हैं क्योंकि ये यूनी-डायरेक्शनल हैं। ये मात्र एक ही दिशा में, सिर्फ बाहर की ओर ही कार्य कर सकती हैं। नेत्र 'मन और आत्मा में' नहीं झाँक सकते हैं। कान बाहर अनाहत नाद नहीं सुन सकते। त्वचा छूकर सत्य को नहीं

पहचान सकती। नाक प्राकृतिक सुगंधों को तो पहचान सकता है किन्तु प्रकृति के परे इसका कोई बस नहीं चलता। जीभ पर वे स्वाद कलिकाएँ नहीं होतीं जो सत्य का स्वाद दे दें। हर सत्यान्वेशी अपने भीतर ही सत्य को प्राप्त करता है। इसी कारण मात्र विज्ञान से मनुष्य की प्यास नहीं बुझती और न ही उसकी बेचैनी शांत होती है। मनुष्य की चेतना उस शून्य में जाकर शांत होती है जहाँ पर ऐसा कुछ भी नहीं। वहाँ पर विज्ञान भी नहीं।

बुद्ध पुरुष प्राय: ये बात कहते हैं कि कुछ भी नहीं, वहाँ पर कुछ भी नहीं है। है तो मात्र शांति। मैं स्वयं भी हूँ या नहीं, ये भी नहीं पता क्योंकि वहाँ पर कोई पहचान भी नहीं। जो भी है इसे महसूस नहीं किया जा सकता क्योंकि महसूस तो इंद्रियों के माध्यम से किया जाता है। इस की मात्र अनुभूति ही की जा सकती है। अनुभूतियाँ चेतना को प्राप्त होती है।

❖❖

दिन में फैने उजियारे के बीच अपने घर में हम पूरे आराम से हैं और रात में फैले अँधेरे के कारण अपने ही घर में हम सशंकित और घबराए हुए से। हमारे अपने ही घर में फैले अँधेरे का उपयोग, हमारा मन हमारे भीतर ही डर पैदा करने के लिए करता है। वहीं प्रकाश की उपस्थिति में मन चुप है। प्रकाश के कारण वह अज्ञात भय पैदा नहीं कर सकता। हमें डरा नहीं सकता। ये ही बात मृत्यु के साथ भी है। जब हम जीवन में ही मृत्यु के पार फैली शांति का अनुभव कर लेते हैं तब हमारा मन शांत होकर बैठ जाता है क्योंकि वो जानता है कि प्रकाश की उपस्थिति के कारण अब अज्ञात का भय पैदा नहीं किया जा सकता।

❖❖

आंतरिक शक्ति की उपस्थिति में अकेलापन अत्यंत आनंद दायक है और इसी शक्ति की अनुपस्थिति में अकेलापन अभिशाप बन जाता है। यही कारण है कि अनंत शक्तियों के स्वामी परमात्मा, सभी प्राणियों में रहने के बाद भी उनसे पूर्णतया निर्लिप्त रहना पसंद करते हैं। अपनी शक्तियों को बढ़ाकर मनुष्य भी आत्मा की उसी निर्लिप्तता की झलक, उसका स्वाद प्राप्त कर सकता है। अपनी ऊर्जा को शक्ति में परिवर्तित करने की प्रक्रिया का नाम ही साधना है।

❖❖

ढलना दो प्रकार का होता है। पहला जैसे बच्चे को उसका समाज और उसका परिवेश, एक नियत रहन-सहन, बोलचाल, व्यवहार, कपड़े और सोच में ढाल देता है। बच्चे को इस बारे में कुछ भी पता नहीं होता कि वो इन चीजों को क्यों कर रहा है? आप उससे पूछेंगे तो वो उन सवालों का जवाब नहीं दे पाएगा। उन कारणों को नहीं बता पाएगा, जिन कारणों से वो एक विशेष तौर का जीवन जी रहा है।

वहीं दूसरा ढलना है, खुद ही जान के ढलना। जब आप तथ्यों के पीछे का कारण समझ लेते हैं और उन कारणों को जानने के बाद आप एक विशेष तौर तरीके में ढल जाते हैं। इस दशा में आप से कोई भी उसका कारण पूछे तो आपके पास पूरा स्पष्टीकरण होता है, उसे देने के लिए।

❖❖

किसी प्रोजेक्ट या किसी काम को हम असाइनमेंट की तरह एक नियत समय पर पूरा करना चाहते हैं लेकिन ये जीवन के लिए हम कोई नियत समय निर्धारित नहीं करते। असाइनमेंट के लिए बनाई गई डेड-लाइन को हम कभी क्रॉस नहीं करना चाहते और जीवन की डेड लाइन को कभी हम मीट नहीं करना चाहते। चाहते हैं कि वो सदैव एक्सटेंड होती रहे। मतलब साफ है जीवन कोई असाइनमेंट नहीं और इसे असाइनमेंट की तरह जीने का कोई मतलब भी नहीं है।

❖❖

स्विमिंग पूल में उतरने के दो तरीके हैं, पहला ये कि आप पानी में पैर डालें और धीरे-धीरे शरीर के तापमान को पानी के साथ सामंजस्य बैठाने दें और फिर धीरे से उस तरफ से पानी में उतर जाएँ, जिस तरफ गहराई सबसे कम हो। दूसरा तरीका है कि आप ऊँचे बोर्ड पर जाकर छलाँग मारें। इस दशा में चोट लगने की संभावना भी होती है। शरीर के तापमान को तुरंत पानी के तापमान के साथ सामंजस्य बिठाना पड़ता है और जो डर है वो अलग। डैश बोर्ड पर खड़े रहकर आप पानी से दूर रहते हैं।

आप अपनी एक अलग ही दुनियाँ में खोए होते हैं। पानी से कोई सम्पर्क भी नहीं होता और फिर एकाएक छलाँग लेनी होती है। वायु से पानी में छलाँग अर्थात् एक दुनियाँ से दूसरी दुनियाँ में छलाँग। ऊँचाई से कूदने पर एक दुनियाँ से जुड़े सभी सम्बन्ध एक झटके में टूटते हैं और जिस दुनियाँ में जा रहे होते हैं उसकी भी कोई अनुभूति नहीं होती। क्योंकि हम मग्न रहते हैं पहली ही दुनियाँ में अर्थात् एक ऐसी जगह पर जाना जहाँ पर कुछ भी परिचित न हो। मृत्यु भी कुछ ऐसी ही है। या तो आप धीरे-धीरे आत्मसात होकर इसमें प्रवेश करें या फिर एक दुनियाँ में मग्न रहते हुए, एक झटके से दूसरी दुनियाँ में कूद गए।

❖❖

निधिवन को सूर्य ढलने के पश्चात् खाली करा लिए जाने का तात्पर्य है, एकांत में अर्थात् अंधकार में चेतन और चैतन्य का मिलन, यही है रास। क्योंकि इसे आँखें नहीं देख सकती इसलिए मनुष्य जो अपनी दृष्टि के लिए अपनी आँखों पर निर्भर है, इन आँखों के द्वारा वे इस दृश्य को नहीं देख सकते और जिनके पास आंतरिक दृष्टि है उन्हें निधिवन में जाने की कोई जरूरत ही नहीं है। वे अपने भीतर ही एक निधिवन का सृजन कर राधा और कृष्ण अर्थात् चेतन और चैतन्य का मिलन देख सकते हैं।

❖❖

साधुओं द्वारा कपाल के मध्य में जूड़ा बाँधे जाने का एक विशेष कारण है। जैसे सभी मनुष्य अपने आंतरिक अंगों को ढकने और उन्हें सुरक्षा देने के लिए अंत:वस्त्र पहनते हैं। वैसे ही साधु अपने कपाल के मध्य भाग को सुरक्षा देने के लिए इस पर जूड़ा बाँधते हैं। ठीक वैसे ही जैसे यज्ञवेदी के मध्य में अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है। यज्ञ की वेदी अग्नि की रक्षा करती है। इसी प्रकार कपाल के मध्य में जूडा बाँधे जाने का तात्पर्य यही है कि अपने उस भाग की रक्षा करना जहाँ पर जीव चैतन्य से मिलेगा।

❖❖

बुद्धि से परे जगत् की यात्रा है 'ध्यान'। यही वह कालखण्ड है, जब बुद्धिमान व्यक्ति बुद्धि के कार्यक्षेत्र और उसकी परिधि से बाहर निकल जाता है। बुद्धि से परे जगत् का स्वाद लेता है और पूर्णतया नए जगत् से परिचित होता है। ध्यान अपनी परिधि के उल्लंघन करने जैसा है। इस माध्यम से वो व्यक्ति विस्तार की ओर बढ़ता है। उसे एक नई दुनियाँ के बारे में पता चलता है जहाँ पर बुद्धि का अतिक्रमण नहीं है। इस प्रकार वह बुद्धिमान और बुद्धि रहित दोनों जगत् के अनुभव और अनुभूतियों का मिलान कर सकता है। वो पहली बार जान पाता है कि उसका अपना दायरा अपने विचारों से कहीं ज्यादा बड़ा है। इस प्रकार ध्यान के माध्यम से पहली बार मनुष्य अपने विचार से परिचित होता है।

❖❖

हिप्पी कल्चर, बुद्धि के विरोध में खड़ा हुआ एक मूवमेंट था। वियतनाम युद्ध में बुद्धि का अत्यधिक उपयोग किया गया, अपनी अहंकार तुष्टि के लिए। युद्ध में बहुत सारे अमेरिकी युवाओं को सिर्फ इसलिए झोंक दिया गया ताकि राष्ट्रवाद की आड़ में अपने अहंकार की तुष्टि की जा सके। राष्ट्रवाद रक्षा के लिए है, अहंकार जनित हिंसा के लिए नहीं। उन्हीं युवाओं ने बुद्धि के अत्यधिक उपयोग के परिणाम देख लिए थे इसलिए वे विद्रोह पर उतर आए और इससे जन्म हुआ हिप्पी मूवमेंट का। वे सभी हिप्पी वास्तव में बुद्धि के पार जाने का प्रयास कर रहे थे। वे एक नया मार्ग ढूँढ रहे थे। भारत में और विश्व के अन्य देशों में अध्यात्मिक प्रसार के साथ ही हिप्पी मूवमेंट अध्यात्म के सागर में धीरे-धीरे समा गया।

❖❖

विज्ञान और अध्यात्म में एक भेद देखिए। जहाँ विज्ञान की तकनीक हर दस सालों बाद बदल जाया करती है और कुछ सालों पुरानी तकनीक आज के इंसान की मदद नहीं कर पाती। वहीं सात हजार साल पहले ब्रह्मर्षि वशिष्ठ द्वारा दी गई 'योगवशिष्ठ' आज भी सत्यान्वेशियों की उसी प्रकार मदद कर रही है जैसा कि वो दो हजार साल या पाँच हजार साल पहले के लोगों की करती रही होगी। विज्ञान परिवर्तनशील है; अध्यात्म आपका अपना स्वरूप है, जो सनातन है।

❖❖

एक नदी पहाड़ से उतरते हुए सीधे अपनी दिशा में समुद्र की ओर बढ़ती है। मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को पीछे छोड़ते हुए या उन्हें किनारे करते हुए। पुराने मार्ग में बाधाएँ आने पर, नए मार्ग बनाते हुए, वह सीधे समुद्र से जा मिलना चाहती है। इस क्रम में मार्ग में आने वाली बाधाओं के प्रति उसकी कोई हिंसा नहीं है। वो अपना मार्ग जानती है। अपना गन्तव्य जानती है और बस उस तक पहुँचना चाहती है। मार्ग में आने वाली बाधाओं के साथ रूककर वो झगड़ती नहीं, वाद-विवाद करती नहीं, वो तो बस आगे बढ़ना चाहती है। रास्ते में कोई उस नदी का मार्ग रोकना चाहे तो ये उसकी समस्या है। उसके रोकने से वो रूकेगी नहीं।

प्रकृति में सभी अपना-अपना नियत कार्य जानते हैं। नदी जानती है कि उसे समुद्र से मिलना है। वृक्ष जानते हैं कि उन्हें ऑक्सीजन का उत्सर्जन करना है, छाया देनी है, फल बनाने हैं। जल जानता है कि उसे मैदानों की सिंचाई करनी है, लोगों की प्यास बुझानी है। अन्न जानता है कि उसे प्राणियों को ऊर्जा प्रदान करनी है। पृथ्वी जानती है कि मुझे संरक्षण देना है, पर्वत जानते हैं कि मुझे ग्लेशियर बनाने हैं। प्रकृति को पुत्री के रूप में, खुद पर धारण करना है। बादल जानते हैं कि या तो उन्हें छाया देनी है या फिर बरसना है। वायु जानती है कि मुझे जीवन देना है, तापमान नियंत्रित करना है। समुद्र जानता है कि मुझे वाष्पीकृत होना है तथा वापस धरती से आकाश में लौट जाना है। साथ ही साथ मछलियों और दूसरे जंतुओं को आश्रय भी प्रदान करना है। पूरी प्रकृति अपने-अपने लक्ष्य जानती है और उसी के प्रति समर्पित है। बस मनुष्य ही अपना लक्ष्य नहीं जानता।

❖❖

जीवन एक चौकोर कमरा है, जिस कमरे की दो दीवारों पर खिड़कियाँ बनी हैं। ये दोनों ही दीवारें एक-दूसरे के बिल्कुल आमने-सामने हैं। एक दीवार पर नौ खिड़कियाँ हैं। इन्हीं खिड़कियों के माध्यम से मनुष्य बाहरी दुनियाँ से अपना सम्पर्क बनाता है। खिड़कियों के माध्यम से वो बाहरी दुनियाँ को देख सकता है, सुन सकता है, छू सकता है, सूँघ सकता है, उसका स्वाद ले सकता है और उसी दुनियाँ में वो मल और मूत्र का उत्सर्जन भी कर सकता है। दिनभर के सोलह-सतरह घण्टे ये खिड़कियाँ खुली रहती हैं, जिससे मनुष्य लगातार बाहरी दुनियाँ के

सम्पर्क में बना रहता है। बस सात-आठ घंटे, जब वह सो जाता है तब वो बाहरी दुनियाँ से कट जाता है। जागने के साथ ही उसका ये सम्पर्क फिर शुरू हो जाता है। इन नौ खिड़कियों के दूसरी ओर बहुत सारे आकर्षण हैं, जो मनुष्य को बाहर की ओर खींचते हैं। ये आकर्षण इतने ज्यादा प्रबल हैं कि सोलह-सतरह घण्टे जब तक वो जागा रहता है तब तक इनमें व्यस्त रह सकता है।

इस दीवार के ठीक विपरीत दिशा में एक और दीवार है, जिसमें भी एक खिड़की खुलती है लेकिन ये खिड़की कुछ इस प्रकार की है कि इसे दीवार के रंग में रंगा गया है इसलिए मनुष्य भीतर रहता हुआ भी ये जान नहीं पाता कि एक खिड़की को न जानने के कारण, उसके पास एक ही रास्ता होता है कि वो सिर्फ बाहर ही देखे। ये जो इकलौती खिड़की है, ये छिपी हुई भी है और सामान्यत: खुलती भी नहीं क्योंकि ये बहुत ही ज्यादा टाइट है। अब एक दीवार पर नौ दरवाजे हैं, जो बाहरी दुनियाँ की चमक-दमक से ओतप्रोत हैं और इसके ठीक विपरीत दीवार पर एक खिड़की है जो पहले तो दिखाई ही नहीं देती। अत्यंत रहस्यमय है और यदि मनुष्य इस खिड़की के बारे में, किसी दूसरे मनुष्य से सुन भी ले तो उसे ये नहीं पता कि ये खुलेगी कैसे और जब खुलेगी तो उस पार दिखेगा क्या?

इस प्रकार एक तरफ आकर्षण है तो दूसरी ओर रहस्य। एक ओर चमक-दमक है तो दूसरी ओर कुछ भी नहीं। एक ओर सब कुछ ज्ञात है और दूसरी ओर पूर्णतया अज्ञात। जीवन नामक पूरा खेल इतना सा है कि इन नौ खिड़कियों के बाहर जो दुनियाँ है, ये मनुष्य को इन्हीं खिड़कियों के माध्यम से बाहर खींच लेना चाहती है। ये दुनियाँ आकर्षित तो करती है लेकिन साथ में बाहर की ओर खींचती भी है। मनुष्य की शक्ति उसे घर में बनाए रखती है, जिसे इच्छाशक्ति भी कहते हैं और जीवनीशक्ति भी। ये शक्तियाँ ही मनुष्य को घर के भीतर स्थिर रखती हैं और उसे बाहर की ओर खींच लिए जाने से रोकती हैं। इन नौ खिड़कियों के दूसरी ओर जिस रानी का राज्य है उसे कहते हैं 'माया'। उसका पूरा का पूरा काम बस इतना है कि वो मनुष्य को इन्हीं खिड़कियों के रास्ते से अंतत: बाहर की ओर खींच ले और इसके लिए वो विभिन्न प्रलोभन लालच, उकसावे, कर्तव्य, मोह और न जाने कितने हथियारों और आकर्षणों का इस्तेमाल करती है।

वहीं दूसरी दीवार पर जो छिपी हुई खिड़की है क्योंकि वो बहुत ही ज्यादा मजबूत है, उसे खोलने के लिए अपनी शक्तियों को बढ़ाना पड़ता है। माया के रहते हुए ये काम करना अत्यंत कठिन है क्योंकि माया का सारा काम ही इस शक्ति को ऊर्जा में बदलकर मनुष्य के नियंत्रण से बाहर कर देना है। इन शक्तियों में मुख्यत: विवेक, इच्छाशक्ति, सहनशक्ति और प्रेम है। इन्हीं शक्तियों को बढ़ाकर मनुष्य इस खिड़की को खोलने के नजदीक पहुँचता जाता है। कभी-कभी इस जन्म में विशेष प्रयास न करने के बाद भी मनुष्य के दैव और उसके पिछले जन्म के कर्मों के फलस्वरूप ये खिड़की स्वत: ही खुल जाया करती है। तात्पर्य यह है कि यदि आप इस जन्म में अपनी शक्ति का संवर्धन करते हैं और इस जन्म में यदि यह खिड़की न भी खुल पाई तो इस सम्बन्ध में किए गए सभी प्रयास आपके साथ अगले जन्म में भी चले जाते हैं। विभिन्न जन्मों में किए गए प्रयास धीरे-धीरे संग्रहित होते-होते, उस नियत स्तर पर पहुँच जाते हैं, जिस स्तर पर आने पर ये खिड़की खुल जाया करती है। इसी कारण कई मनुष्यों में ये खिड़की दैव योग के कारण भी खुल जाया करती है। दैव अर्थात् पिछले जन्मों के संचित कर्मफल जो इस जन्म में प्राप्त होते ही हैं। इसी दैव को लेकर हर एक मनुष्य पैदा होता है। इसी कारण हर एक मनुष्य का जीवन अलग-अलग दिशाओं में बढ़ता है। इस एक खिड़की के पार जो जगत् है उसके बारे में मात्र वो ही मनुष्य जान पाता है जो उस खिड़की के पार देखने में समर्थ हो पाता है। इस खिड़की के पार की जो दुनियाँ है वो दुनियाँ उन नौ खिड़कियों के दूसरी तरफ स्थित दुनियाँ से बिल्कुल अलग है। इस खिड़की के पार वास्तव में आँखों से देखा भी नहीं जा सकता लेकिन मनुष्य जितनी देर तक इस खिड़की में खड़ा रहता है उतनी देर तक वो उसकी अनुभूतियों को प्राप्त कर सकता है।

ऐसा मनुष्य जिसकी दोनों ही खिड़कियाँ खुली हुई हों वो एक खिड़की से प्राप्त अनुभूतियों को एकत्र कर इन नौ द्वारों के माध्यम से माया की दुनियाँ में रहने वाले अपने दूसरे साथियों को दे सकता है। इसका तात्पर्य यह भी है कि अब माया की दुनियाँ से वो मात्र ग्रहण ही नहीं कर रहा है, अब वह उसी दुनियाँ को कुछ देने की स्थिति में आ गया है। उस खिड़की में वह जो कुछ भी देखता है मायावी दुनियाँ में रहने वाले अपने दोस्तों तक, वह सारी बातें पहुँचा दिया करता है। अपना

सम्पर्क मायावी दुनियाँ से सीमित कर लेता है। मात्र अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वो मायावी दुनियाँ के सम्पर्क में बना रहता है और बाकी समय दूसरी खिड़की के पास बैठकर अपनी अनुभूतियों को एकत्र कर, उन्हें बटोरकर इस दुनियाँ में रहने वाले मनुष्यों तक पहुँचा देता है। ये जो एक छोटी-सी रहस्यमय खिड़की है इसे प्रकाश की खिड़की कहते हैं। एक इसी खिड़की मात्र से प्रकाश उसके घर में आ सकता है। बाकी की नौ खिड़कियाँ प्रकाश को भीतर की ओर नहीं भेजतीं। भीतर अँधेरे में रहते हुए उन खिड़कियों के पार उपस्थित चमक-दमक को अवश्य देखा जा सकता है। इस प्रकार मनुष्य के पास बस एक खिड़की होती है, जिससे रोशनी भीतर आ सके। बाकी नौ खिड़कियों पर जो शीशा लगा है उसकी विशेषता यही है कि वो प्रकाश को परावर्तित कर देता है। प्रकाश इन शीशों को भेद कर भीतर तक नहीं पहुँच सकता।

भेष, जगह, देश बदल जाया करते हैं लेकिन सभी लोगों के जीवन में घटने वाली घटनाओं का पैटर्न एक जैसा ही रहता है। हमारे और हमारे पूर्वजों के जीवन में भी घटने वाली घटनाएँ, लगभग एक जैसी ही रहीं। हमारे इस जन्म और पूर्व के जन्मों में घटने वाली घटनाएँ भी काफी कुछ एक नियत स्तर की होती हैं। जीवन की शुरूआत, पढ़ाई, नौकरी, व्यवसाय, धन-लाभ, परिवार, बच्चे, सम्बन्ध, सम्बन्धों में सुख-दु:ख, कष्ट, भावनाओं का ज्वार, सफलताएँ और असफलताएँ, जीवन-मृत्यु, डर, भय, असुरक्षा की भावना, कामुकता, मोह, अहंकार ये सभी चीजें हर व्यक्ति के जीवन में लगभग एक जैसी ही होती हैं। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध की लड़ाइयाँ और उन लड़ाइयों के पीछे के कारण, घृणा, द्वेष, हिंसा, नुकसान, दर्द ये सभी कुछ, आज भी दुनियाँ के किसी दूसरे हिस्से में चल रहे हैं। बस युद्ध का नाम, घटनाएँ, उनकी जगह और उन्हें लड़ने वाले लोग बदल चुके हैं। लेकिन घटनाएँ सब एक जैसी ही हैं। इस प्रकार महत्वपूर्ण लोग या जगह नहीं, अपितु महत्वपूर्ण हैं इन घटनाओं को तटस्थ रूप से देखना। इन्हें देखकर अपने लिए निष्कर्ष निकालना और उन निष्कर्षों को खुद में समाहित करना। हर एक व्यक्ति अपने जीवन में इन घटनाओं से दो-चार होता ही है। बस कुछ लोग इनमें पूरे तरीके से रम जाते हैं और कुछ लोग इनमें भाग लेते हुए भी इनसे जुड़ाव नहीं रखते। वास्तव में घटनाएँ भी उतनी महत्वपूर्ण नहीं, महत्वपूर्ण है घटनाओं के पीछे छुपे हुए

संदेश। ये संदेश आपको तभी उपलब्ध हो सकते हैं जब घटनाओं से आप अछूते रहें।

माँ-बाप और ईश्वर में एक समानता है, दोनों ही हमपर अपनी दृष्टि रखते हैं। माँ-बाप हमारी गलतियों को हमें बता देते हैं और कभी-कभी गुस्सा करते हैं और दण्ड भी देते हैं। ईश्वर हमें गलतियाँ करने की पूरी स्वतंत्रता देते हैं। वे हमें दण्ड नहीं देते अपितु हमारे कर्मफल खुद ही हमारे लिए दण्ड का निर्धारण कर देते हैं। वे हमें सलाह भी नहीं देते अपितु अपनी गलतियों से सीखने को प्रेरित करते हैं।

❖❖

ध्यान में बैठा व्यक्ति चाहे कुछ भी हो, बस वह कर्ता नहीं है। कर्ता बनने की सभी संभावनाओं को समाप्त करने के लिए ही वो ध्यान में बैठा है।

❖❖

सामाजिक व्यक्ति चाहते हैं कि बुद्ध आएँ, उपदेश दें, अपनी बातों का प्रचार करें, भोजन करें, उनकी तस्वीरें और मूर्तियाँ बनाई जाएँ और उन्हें अपने कमरों में सजाया जाए। बस वे किसी स्थापित मान्यताओं को तोड़ने की बातें न करें। वे बुद्ध हैं, उन्हें तो जोड़ने की बात करनी चाहिए, तोड़ने से उनका क्या अभिप्राय?

❖❖

जिन बिन्दु पर आप द्वंद में होते हैं, उन बिन्दुओं पर आपको समझाया जा सकता है लेकिन जिन बिन्दुओं पर आप बिल्कुल निश्चित हैं, उन बिन्दुओं पर आपको समझाया नहीं जा सकता। कितना भी एक्स्ट्रा प्रेशर हो आप उसे झेल जाएंगे। जीवन में जिन बिन्दुओं पर आप बिल्कुल निश्चित होते हैं, वे बिन्दु ही आपकी लाइफ के पिलर बन जाते हैं। बाद में जब आप पीछे मुड़कर देखेंगे तब आपको कुछ याद रहे या न रहे लेकिन ये पिलर जरूर याद आएंगे और तब आप समझ पाएँगे कि जब-जब आपने एक फर्म स्टैण्ड लिया। उस स्टैण्ड ने आपकी जिन्दगी को किस तरीके से एक नियत दिशा में मोड़ दिया। अगर उस समय आपने स्टैण्ड नहीं लिया होता तो आप आज जिस स्तर पर खड़े हैं, वहाँ पर कभी न खड़े होते।

❖❖

पुरानी और नई दोनों पीढ़ियाँ ही एक दूसरे से कुछ न कुछ सीख सकती हैं। नई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी से उनके अनुभवों को सीख सकती है और पुरानी पीढ़ी, नई पीढ़ी से उनके जीवन जीने के नजरिए को। नई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी से ज्यादा उन्नत है इसलिए वो पुरानी पीढ़ी के नियमों पर आँख मूँदकर चल नहीं सकती। वो अपना एक नया रास्ता बनाएगी। पुरानी पीढ़ी भी अपने अगले जन्म में अपने पुराने विचारों को छोड़कर आगे बढ़ जाएगी। कोई भी कहीं रूकता नहीं। वो चरम् पर पहुँचना ही चाहता है।

❖❖

पाना तब तक पूरा नहीं माना जाता, जब तक उसकी सूचना को दूसरों के साथ बाँट न लिया जाए। पाने के साथ जो उत्साह और उमंग जुड़ी है, वो तब तक शांत नहीं होती जब तक दूसरे इस बात को जान न लें। हर वो वस्तु जिसके पाने के साथ उत्साह और उमंग जुड़ी है वो मेरे अपने अस्तित्व का भाग नहीं हो सकती।

वास्तविक पाना तो वो पाना है कि जब पा लिया तो दूसरे को बताने की आवश्यकता भी महसूस न हुई। गूँगे ने गुड़ खा लिया और गूँगा व गुड़ एक दूसरे से मिलकर पूरे हुए। अब ज़बान को इससे क्या और यदि इस बात को किसी को बता भी दिया जाए तो उसे इस सूचना में क्या रुचि होगी।

❖❖

आनंद को परिभाषित नहीं किया जा सकता क्योंकि परिभाषित करने के लिए मन की आवश्यकता होगी। आनंद, मन की परिधि से बाहर है। मन, आनंद को नहीं जानता। दोनों में कोई सम्बन्ध ही नहीं। आनंद को मात्र चेतना समझती है। आनंद वह है जिसे पाकर चेतना जान जाती है कि उसे कुछ अपना मिल गया। जब तक चेतना आनंद में रहती है वो जानती है कि वो अपने घर में है, परदेस में नहीं।

❖❖

हमारे जीवन में पल-पल बदलती भावनाओं का प्रभाव कुछ वैसा ही है जैसे एक पाल वाली नौका नदी में। जहाँ पर हवा के प्रवाह की दिशा, पल-पल बदल

जाया करती है। इस प्रकार नाव किसी भी एक दिशा में बढ़ नहीं पाती तथा इधर-उधर चक्कर काटकर, लगभग वहीं पर ठहरी रहती है जहाँ से उसने यात्रा प्रारंभ की थी। इस प्रकार यदि हम अपना जीवन भावना प्रधान रूप से जिएंगे तो जहाँ पर ये शुरू हुआ था, लगभग वहीं पर या उसके कहीं आस-पास खत्म भी हो जाएगा। भाव प्रधान जीवन जीना कुछ उसी प्रकार से है जैसे नदी के ऊपर हवा का प्रवाह एक नियत दिशा में होना। जिससे नाव उस नियत दिशा में आगे बढ़ती चली जाए। इस प्रकार भाव में स्थित हुआ व्यक्ति, अपने जीवनकाल में ही प्रगति करता है। वो एक नियत दिशा में आगे की ओर बढ़ता चला जाता है, जिधर उसका भाव उसे ले जा रहा है। मौनभाव की सूचना है भाव की अभिव्यक्ति।

❖❖

अनाहत नाद, वह नाद है जिसको हमारा वही भाग सुन सकता है जिसे आहत न किया जा सके। जिस क्षण आप अनाहत नाद सुनते हैं आप का एक भाग सदा के लिए मर जाता है और उसी क्षण जन्म लेता है आपका एक दूसरा भाग। जिससे आप अभी तक परिचित नहीं थे। अनाहत नाद के सुनने का तात्पर्य ही यह है कि आपका वह भाग अब जाग उठा है जो इस नाद को सुन सके।

❖❖

हम अक्सर ये बातें करते हैं कि हमारा मन बेचैन है या हमारा मन घबरा रहा है। अब मन घबरा रहा है तो इसे घबराने दीजिए। आप क्यों घबरा रहे हैं? उसके साथ जब भी मन बेचैन होता है, तब उसके साथ हमें भी बेचैन होना पड़ता है। कारण सिर्फ इतना सा है कि मन और हमारे बीच में एक सम्बन्ध जुड़ा हुआ है, कड़ी जुड़ी हुई है। हम बँधे हुए हैं, पुल बना हुआ है। इसी कारण जब पुल के उस भाग में कम्पन्न होता है तो कम्पन्न पुल के माध्यम से इस भाग तक भी आ जाता है।

❖❖

जीवन का सर्वश्रेष्ठ स्वाद है एकांत का स्वाद। इस स्वाद की प्राप्ति होते ही आप मृत्यु सम्बन्धित भय को पार कर जाते हैं। यह ऐसा स्वाद है जो स्थिर है। जो तब तक स्थिर है जब तक एकांत स्थित है। एकांत का तात्पर्य ही है, जो

एकमात्र है, उसी के पास जाकर अंत होना और जो एकमात्र है यदि उसमें समाकर अंत होता है तो फिर वह अंत कहाँ?

❖❖

धरती पर जीवन कुछ उतने ही क्रूड फॉर्म में चलता है जितने की क्रूड फॉर्म में हमें धरती के नीचे से तेल प्राप्त होता है। इस क्रूड ऑयल का प्यूरीफिकेशन करके, इसके अवयवों को अलग-अलग किया जाता है। पेट्रोल, डीजल, पैराफिन वैक्स इत्यादि इसी क्रूड ऑयल से ही जन्म लेते हैं। चेतना, मन, बुद्धि, शरीर और चैतन्य मिलकर जिस एक रचना को आकार देते हैं उसे मनुष्य कहते हैं। मनुष्य जब अपने विभिन्न भागों को अलग करने में सफलता प्राप्त करता है। तब उसे अपने भी भीतर समाए हुए इस वर्गीकरण का पता चलता है। इन सभी अवयवों को अलग कर लेने के बाद वो अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेता है।

❖❖

सीखना और पढ़ना बिल्कुल अलग-अलग है। किसी को देखकर दूर रहकर भी आप उससे सीख सकते हैं। उससे सीखने के लिए आप को उसके नजदीक जाने की आवश्यकता नहीं। उसके सम्पर्क में आने की भी आवश्यकता नहीं। बस उसका अवलोकन करके ही उससे सीखा जा सकता है लेकिन किसी से पढ़ने के लिए आपको उसके सम्पर्क में आना पड़ेगा। उसके मन पर निर्भर करेगा कि वह आपको क्या-क्या पढ़ाना चाहेगा? कैसे पढ़ाना चाहेगा? सीखने की इसी विशेषता का उपयोग धर्म ने भी किया। उससे मूर्तियों के रूप में हमें प्रतीक प्रदान किए। हर मूर्ति में कुछ रहस्य छुपाए गए, ताकि कभी एक ऐसा अवसर आए जब आप इन रहस्यों को इन मूर्तियों के माध्यम से सीख सकें।

❖❖

आपके एकांत का साथी कोई शरीर नहीं बल्कि आपके शरीर में रहने वाली स्त्री रूप शक्ति है। आपकी शक्ति जब तक शिव से मिलती रहेगी तब तक एकांत का स्वाद मिलता रहेगा। हर सन्यासी की साथी यही सूक्ष्म स्त्री है।

❖❖

फ्री अर्थात् 'फिर-ई' फिर से मेरी शक्तियाँ मुझे वापस कर दो। शक्ति तभी वापस मिल सकती है जब व्यक्ति मन के नियंत्रण से मुक्त हो जाए। फ्री अर्थात् अपने मन का प्रभाव मेरे ऊपर से हटाओ और मुझे मुक्त करो।

❖❖

ज्ञान बुद्ध व्यक्तियों को ईश्वर द्वारा दिया हुआ उपहार है और इस उपहार को बुद्ध व्यक्ति सभ्यता तक आगे पहुँचाते हैं। इस उपहार को स्वयं तक सीमित रखने का कोई तात्पर्य भी नहीं है। उपहार, उपहार तभी तक है जब तक वह आगे की ओर बढ़ता रहे। नहीं तो वो सम्पत्ति बन जाता है।

❖❖

नशा सिर्फ शराब और शबाब में है, ये बात तो सभ्यता जानती है। इसी कारण से वह इन दोनों के नशे में व्यस्त है लेकिन शबाब को नशा देता कौन है? नशा देती है शक्ति। जिस प्रकार गंगा मैदानी इलाकों में आकर शांत हो जाती है लेकिन पहाड़ों पर वह तीव्रता से बहती है। उसी प्रकार शबाब भी मैदानी इलाकों में आई हुई नदी है, जिसका वेग काफी कुछ थम जाता है। वहीं शक्ति पहाड़ों से उतरने वाली द्रुतगामी नदी है। सन्यासी शक्ति से काम चला लेते हैं और मनुष्य ठहरे हुए जल को पाकर ही संतुष्ट हो जाता है।

❖❖

मूत्र का पीला रंग यह इंगित करता है कि शरीर का कोई भाग है जो सदैव समाप्त हो रहा है। इसी विघटित भाग को मूत्र के माध्यम से शरीर से बाहर निकाला जाता है। ठीक उसी प्रकार जैसे पेड़ पर लगे पत्ते, पीले हो जाने के पश्चात् हल्की हवा के झोंके से भी, पेड़ों से अलग हो जमीन पर आ गिरते हैं। जिस प्रकार पेड़ों पर नए पत्ते आते रहते हैं उसी प्रकार शरीर में नई सेल्स पैदा होती रहती है। यदि मूत्र प्रवाह किसी कारण से अवरुद्ध हो जाए तो शरीर में इस विघटित भाग की सांद्रता बढ़ने लगती है। जिसका असर निश्चित तौर पर शरीर की क्रियाविधि पर पड़ता है। एक ही समय में इस शरीर में समाप्ति और सृजन दोनों चलता रहता है। पीले पत्तों का पेड़ से अलग हो जाना और मूत्र का शरीर से विसर्जित हो जाना, लगभग एक ही प्रकार की क्रियाविधि की ओर इंगित करता है। मूत्र का पीला रंग

यह इंगित करता है कि देखो शरीर का कुछ भाग सदैव समाप्त हो रहा है इसलिए तुम्हारी जीवनचर्या कुछ इस प्रकार की होनी चाहिए कि शरीर में होने वाले सृजन को लगातार बल मिलता रहे।

❖❖

आपका अपना वास्तविक स्वरूप अचिंत्य है और अचिंत्य अवस्था में ही आप इसे प्राप्त करते हैं। इस अचिंत्य अवस्था का नाम ही समाधि है। समाधि की महत्ता स्वयं को पाने के लिए है।

❖❖

जागृत पुरुष और अवतारों में अंतर– जागृत पुरुष एक सामान्य पुरुष की तरह जन्म लेते हैं और अपने जीवनकाल में अपनी चेतन अवस्था को प्राप्त कर जागृत हो उठते हैं। स्वयं की जागृति प्राप्त होने के पश्चात् वे सभ्यता को जागृत करने में अपना योगदान देते हैं। साथ ही साथ अपने चैतन्य स्वरूप की ओर, उत्तरोत्तर आगे बढ़ने की प्रक्रिया को भी घटित होते देखते रहते हैं। इनका कार्य ही जीवन की आपाधापी से निराश लोगों को एक नई अवधारणा से परिचित करवाना है। वहीं अवतार अपने पूर्ण चैतन्य स्वरूप में जन्म लेते हैं। चैतन्य के शरीर लेने के पीछे कुछ सुस्पष्ट कारण होते हैं। जैसा कि कृष्ण गीता में कहते भी हैं कि जब–जब धर्म की हानि होगी। तब–तब मुझे शरीर लेना ही होगा। अवतार अपने जीवनकाल में धर्म की स्थापना भी करते हैं। माया को दण्ड भी देते हैं और साधु–साध्वियों का उद्धार भी करते हैं।

❖❖

चेतना के निम्नतम स्तरों पर इज्जत लेने का खेल चलता है और मध्य स्तर में इज्जत देने का। इज्जत लेने का सबसे क्रूर तरीका है बलात्कार। अन्य तरीकों में हिंसा, घृणा, व्यंग्य, चुगली, ताने इत्यादि आते हैं। मध्य स्तरों में ये प्रक्रिया उलट जाती है। अब बारी है इज्जत या सम्मान देने की क्योंकि एक सुस्थापित तथ्य यह है कि जब तक इज्जत दी नहीं जाएगी तब तक वापस नहीं मिलेगी। स्वयं की इज्जत करवाने के लिए लोगों को पहले इज्जत देना जरूरी है। इसलिए व्यक्ति अपनी तरफ से ही पहल कर देता है। वह लोगों को इज्जत देना शुरु कर देता है

ताकि बदले में लोग उसे भी इज्जत देना शुरू करें। यदि किसी का सम्मान समारोह आयोजित किया जाता है तो उसके पीछे अपेक्षा यही होती है कि बदले में वह व्यक्ति भी हमारी प्रशंसा के कुछ शब्द बोल दे और जैसे ही वे शब्द उसके मुँह से निकलते हैं उस वक्त ऐसा प्रतीत होता है कि पूरे आयोजन पर किया गया खर्च और समय व्यर्थ नहीं गया। जिनका सम्मान समारोह आयोजित किया जाता है बदले में यदि वे आयोजक के प्रति आभार व्यक्त न करें उनके गुणों का बखान न करें, उनकी दरियादिली और आंतरिक गहराई की सार्वजनिक रूप से चर्चा न करें तो सम्मान समारोह के समाप्त होते ही भीतर ही भीतर निंदा समारोह प्रारंभ हो जाएगा। जिसके लिए इतना पैसा और समय खर्च किया, उसने तो मेरी चर्चा तक न की। दो शब्द कहने लायक भी नहीं समझा। अब क्या मैंने ही उसके गुणों को समझने का ठेका ले रखा है? उसे भी तो दूसरों के गुणों को और उनके कार्यों को सराहना देनी चाहिए। नहीं यह व्यक्ति सम्मान के योग्य नहीं। अगली बार जब भी सम्मान समारोह आयोजित हो, बस इन्हें न बुलाना क्योंकि इनकी योग्यता को पढ़ने में चूक कर दी थी मैंने। और वहीं यदि प्रशंसा के बदले प्रशंसा मिल जाए तो फिर कहना ही क्या। जितनी लाइनें मैंने इनकी प्रशंसा में खर्च कीं, उतनी ही लाइनें यदि मेरी प्रशंसा में खर्च कर दी तो आयोजन पर किया गया खर्च निकल गया। यह व्यक्ति गुणी ही नहीं अत्यंत उदार भी है। वे व्यक्ति जिनके सम्मान समारोह निरंतर रूप से हुआ करते हैं वे इस खेल की गहरी समझ रखते हैं। इसी कारण वे अपने आयोजकों के प्रति कुछ ज्यादा ही उदार रहते हैं। उन्हें प्रशंसा ही नहीं कभी-कभी वे उन्हें उपाधियाँ भी दे दिया करते हैं। इतने बड़े व्यक्तित्व के मुख से यदि आयोजकों को कोई उपाधि प्राप्त हो जाए तो फिर चारों धाम और गंगा नहाने का पुण्य तो उसे वहीं प्राप्त हो जाता है। आयोजन रूपी ये प्रयोग पूर्णतया सफल रहा। लेन-देन का क्रम पूरा हुआ। अब चलो अगले सम्मान समारोह की भूमिका तैयार करने के लिए, कुछ काम किए जाएँ क्योंकि जब तक कुछ काम नहीं किया जाएगा तब तक समारोह किस बात का आयोजित होगा? अर्थात् पहले भूमिका बनाओ, निष्कर्ष तो उसके बाद ही लिखा जा सकेगा।

❖❖❖❖

About the author:

Shunyo's birth name is kishlay. He is a dentist possessing qualifications from India and south Africa. He got trained at army establishment. Currently he works for the government and sustains a private practice in india. One fine day he found a gate and a lane connected with it, and a journey begun. He feels this journey is all about this name 'shunyo', that is being zero.